नोबेल पुरस्कृत
डॉ. हरगोविंद खुराना

नोबेल पुरस्कृत
डॉ. हरगोविंद खुराना

डॉ. दिनेश मणि

ज्ञान विज्ञान एजूकेयर

प्रकाशक • **ज्ञान विज्ञान एजूकेयर**
3639, प्रथम तल
नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110002
सर्वाधिकार • सुरक्षित
संस्करण • 2022
मूल्य • तीन सौ रुपए
मुद्रक • आर-टेक ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

NOBEL PURASKRIT DR. HAR GOBIND KHORANA
by Dr. Dinesh Mani ₹ 300.00
Published by **GYAN VIGYAN EDUCARE**
3639 Netaji Subhash Marg, Darya Ganj, New Delhi-110002
ISBN 978-93-84344-95-5

भूमिका

डॉ. हरगोविंद खुराना एक सुप्रसिद्ध जीवविज्ञानी के रूप में जाने जाते हैं। डॉ. खुराना का जीवन पूर्ण रूप से विज्ञान को समर्पित रहा है, जो किसी भी युवा वैज्ञानिक के लिए प्रेरणास्रोत है। डॉ. खुराना ने दुनिया को बताया कि माता-पिता के गुण संतान में उनके शरीर की कोशिकाओं के केंद्र में स्थित क्रोमोसोम अर्थात् गुणसूत्र के जरिए आ जाते हैं। उन्होंने अपने सहयोगी वैज्ञानिकों के साथ मिलकर प्रयोगशाला में एक ऐसे जीन का निर्माण भी कर डाला, जिसमें परिवर्तन करके संतान के गुणों में बदलाव लाया जा सकता है।

डॉ. खुराना और उनके सहयोगियों ने 1960-65 के बीच चार न्यूक्लियोटाइड को परस्पर क्रमबद्ध कर देने के लिए विलक्षण रासायनिक विधियों का आविष्कार किया। इस आविष्कार से डॉ. खुराना के हाथों में अभूतपूर्व एवं चमत्कारिक शक्ति आ गई। अब उन्होंने चारों न्यूक्लियोटाइडों को मनचाहे क्रमों में संलग्न करके भिन्न-भिन्न न्यूक्लियोटाइड-क्रम वाले डी.एन.ए. अणुओं का परखनली में संश्लेषण किया। उसके बाद सूक्ष्मजीवियों (बैक्टीरिया) में पाए जानेवाले डी.एन.ए. संश्लेषक नामक एंजाइम की सहायता से रासायनिक विधियों द्वारा बनाए गए प्रत्येक डी.एन.ए. अणु की कई प्रतिलिपियाँ तैयार कीं। इन्हीं डी.एन.ए. अणुओं के आधार पर उन्होंने आनुवंशिक कूट (जेनेटिक कोड) जैसी आधारभूत और चुनौतीपूर्ण समस्या का मौलिक विधियों द्वारा समाधान किया। इस सफलता के कारण ही उन्हें नोबेल समिति ने 1968 में मार्शल नीरेनबर्ग और रॉबर्ट हॉली के साथ नोबेल पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया। डॉ. खुराना विज्ञान के सदुपयोग पर विशेष बल देते थे। उनका मानना था कि सभ्यता को बचाने हेतु विज्ञान के सदुपयोग पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। उनके अनुसार विज्ञान के सदुपयोग द्वारा ही हम अपनी सभ्यता को बचा पाएँगे।

वर्तमान पीढ़ी को डॉ. खुराना के जीवन से प्रेरणा प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रस्तुत पुस्तक का प्रणयन किया गया है। विज्ञान परिषद् के प्रधानमंत्री आदरणीय डॉ. शिवगोपाल मिश्रजी की प्रेरणा द्वारा इस पुस्तक की योजना क्रियान्वित हुई, एतदर्थ मैं उनके प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। 'विज्ञान' पत्रिका के पूर्व संपादक श्री प्रेमचंद्र श्रीवास्तव ने पुस्तक की पांडुलिपि तैयार करने में महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध कराई, अत: मैं उनके प्रति भी अपना आभार व्यक्त करता हूँ। पुस्तक को पूर्ण करने में जिन-जिन लेखकों/संपादकों/वैज्ञानिकों की सामग्री का उपयोग किया गया, उन सबके प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक सभी वर्ग के पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

—डॉ. दिनेश मणि
डी.फिल.,डी.एस-सी.
प्रोफेसर, रसायन विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

अनुक्रम

	भूमिका	*5*
1.	विषय-प्रवेश	9
2.	जीवन-वृत्त एवं शिक्षा	24
3.	डॉ. खुराना का अनुसंधान	34
4.	आनुवंशिकी और डॉ. खुराना	46
5.	आनुवंशिक कूट (जेनेटिक कोड) और डॉ. खुराना	59
6.	डी.एन.ए. की व्याख्या में डॉ. खुराना का योगदान	68
7.	गुणसूत्र संबद्धता और डॉ. खुराना	81
8.	आणविक जैविकी और डॉ. खुराना	91
9.	जीनोमिकी और डॉ. खुराना	104
10.	मानव जीनोम परियोजना और डॉ. खुराना का शोधकार्य	114
11.	आनुवंशिक अभियांत्रिकी और डॉ. खुराना	142
12.	उपसंहार	155

1

विषय-प्रवेश

वर्तमान युग को विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का युग कहा जाता है। विज्ञान के सहारे मानव ने प्रकृति के अनेक रहस्यों का पता लगाकर अद्‌भुत सफलताएँ प्राप्त की हैं। जिज्ञासा के वशीभूत मानव ने न जाने कितने अन्वेषण और आविष्कार कर डाले हैं। फलस्वरूप आज वह अपने जीवन को सुखमय और समृद्धिशाली बना सका है।

सभ्यता के विकास के आरंभ से ही मनुष्य की यह जिज्ञासा रही है कि इस प्रकार की सृष्टि कैसे हुई? जीव कहाँ से आया है? सृष्टि का क्रम किस प्रकार चल रहा है एवं इसका नियंत्रण किस प्रकार है? जीव की उत्पत्ति से अभिप्राय पृथ्वी पर सर्वप्रथम सरलतम जीवित वस्तुओं के निर्माण से है तथा जीवों में धीरे-धीरे परिवर्तन होकर जटिलतम रचना रखनेवाले जीवों जैसे मनुष्य एवं पशु-पक्षियों का उद्‌भव जीव का विकास या उद्‌विकास कहलाता है।

पुनरुत्पादन की क्रिया में संतति प्रायः पितरों के समान ही मिलती है तथा संतान में माता-पिता का गुण प्रकट होना वंशानुगति (Heridity or Inheritance) कहलाता है। कभी-कभी संतान में माता-पिता से भिन्न गुण भी प्रकट हो जाते हैं तथा भिन्न गुण प्रकट होना विभिन्नता (Variation) कहलाता है। वह विज्ञान, जिसमें हम वंशानुगति तथा विभिन्नता का अध्ययन करते हैं अर्थात् यह पता लगाते हैं कि लक्षण माता-पिता से संतान में कैसे पहुँचते हैं तथा किस प्रकार उनमें भिन्नता आती है, आनुवंशिकी कहलाता है। कोशिका के अध्ययन से यह पाया गया कि न्यूक्लियस में विद्यमान धागेनुमा रचनाएँ अर्थात् 'क्रोमोसोम' कुछ कण जैसे पदार्थों के लंबवत् रूप में प्रबंधित होने से बने होते हैं। ये कणनुमा रचनाएँ, जिन्हें पहले 'क्रोमोमियर' नाम दिया गया था, आजकल 'जीन' के नाम से जानी जाती हैं तथा ये न्यूक्लियोप्रोटीन अणुओं के रूप में होती हैं। ये जीन ही लक्षणों को पैदा करने के लिए उत्तरदायी

माने गए हैं। किसी जीव की दैहिक क्रियाएँ उसमें विद्यमान जीनों के व्यवहार पर ही निर्भर करती हैं तथा इन महत्त्वपूर्ण जीनों को रखनेवाले क्रोमोसोम द्वारा 'जीन' माता-पिता से संतान में पहुँचते हैं। इस प्रकार जो लक्षण माता-पिता में पाए जाते हैं, वे संतान में प्रकट होते हैं। जब किसी प्रकार जीन में परिवर्तन हो जाता है तो उससे संबंधित लक्षण भी भिन्न प्रकार से प्रकट होता है। इस प्रकार आनुवंशिकी समस्या के समाधान के लिए कोशिका का अध्ययन आवश्यक है। अत: आनुवंशिकी अब एक स्वतंत्र विज्ञान न होकर कोशिकी (Cytology) का सहविज्ञान है तथा इसे कोशिकानुवंशिकी (Cytogenetics) के नाम से जाना जाता है।

सभी जीव कोशिकाओं द्वारा निर्मित होते हैं। कोशिकाओं को जीवन की आधारभूत इकाई कहा गया है। R.N.A. संपूर्ण कोशिका में विद्यमान होता है, परंतु डी.एन.ए. केवल केंद्रक में ही सीमित रहता है। क्रोमोसोम के जींस में इनकी प्रमुखता होती है। डी.एन.ए. तथा आर.एन.ए. प्रत्येक कोशिका में जीव संबंधी विशिष्ट तथा महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। जिस प्रकार तार (telegram) की सांकेतिक भाषा-बिंदु (dots) तथा डेस (dash) से अनेक शब्द बनते हैं, उसी प्रकार रासायनिक संघटन की हेरा-फेरी से अनगिनत D.N.A. तथा R.N.A. का निर्माण कोशिकाओं के अंदर होता है। कोशिका में ये अत्यंत विशिष्ट कार्य करते हैं।

डॉ. हरगोविंद खुराना ने रासायनिक द्रव्यों द्वारा कृत्रिम जीन का निर्माण करके विश्व को चकित कर दिया। उन्होंने 77 न्यूक्लियोटाइडों को ठीक उसी क्रम में गठित कर दिया, जिस क्रम में ये यीस्ट कोशिका के एक विशिष्ट जीन में पाए जाते हैं। जीन के इस गठन में उन्होंने सूक्ष्म जीवों में पाए जानेवाले डी.एन.ए. संयोजक नामक एंजाइम का प्रयोग किया। डॉ. खुराना की यह सनसनीखेज खोज अत्यंत महत्त्वपूर्ण समझी जाती है। डॉ. खुराना ने अन्य बहुत से पदार्थों के संश्लेषण के साथ-साथ कोइंजाइम-ए (Co-enzyme-A) तथा अन्य न्यूक्लियोटाइड एंजाइम का संश्लेषण कार्बोडिमाइड (Carbodemide) प्रतिकारक की सहायता से किया। डॉ. खुराना तथा उनके सहयोगियों ने एक निश्चित किए हुए क्रम में न्यूक्लियोटाइड जोड़कर कृत्रिम डी.एन.ए. का निर्माण किया तथा इस प्रकार आनुवंशिक कोड (Genetic Code) का रहस्य खोला, जिससे आनुवंशिक रोगों को ठीक करने तथा जीवों में इच्छानुसार परिवर्तन का मार्ग खुला। इस कार्य के लिए मार्शल निरेनबर्ग, रॉबर्ट हॉली तथा डॉ. खुराना को 1968 में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

डॉ. खुराना ने खमीर (Yeast) के एक ऐसे जीन के 77 न्यूक्लियोटाइड उसी क्रम में जोड़ने में सफलता प्राप्त की, जिससे एलेनिन नामक अमीनो अम्ल

को जोड़ने वाले ट्रांसफर आर.एन.ए., (t- R.N.A.) का संश्लेषण होता है। बाद में उन्होंने जीवाणु इशर्चिया कोलाई (Escherchia coli) के 126 न्यूक्लियोटाइड युग्म रखनेवाले जटिल जीन का भी संश्लेषण किया, जो टाइरोसिन अमीनो अम्ल को जोड़ने में सहायक है। डॉ. खुराना की खोजों के अनुसार m- R.N.A. अणु के तीन-तीन न्यूक्लियोटाइड मिलकर स्वतंत्र ट्रिप्लेट बनाते हैं, जो इसकी सहायता से अमीनो अम्लों को जोड़ने का कार्य करते हैं। प्रत्येक अमीनो अम्ल के लिए अलग-अलग ट्रिप्लेट होते हैं तथा दो ट्रिप्लेट ऐसे पाए गए हैं, जो प्रोटीन अणु का संश्लेषण आरंभ करने और समाप्त करने का कार्य करते हैं। आणविक जीव विज्ञान में जीन का कृत्रिम निर्माण इतिहास की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना है। परंतु जिस प्रकार आणविक विखंडन से आणविक शक्ति का जन्म हुआ है, उसी प्रकार आगे चलकर इस आविष्कार से भी मानव जाति को लाभ और हानि दोनों हो सकते हैं। लाभप्रद जीन्स को वाइरस के माध्यम से शरीर में प्रविष्ट कर असाध्य रोगों पर नियंत्रण किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, मधुमेह का रोग मनुष्य की कोशिकाओं में इंसुलिन न बनने के कारण होता है। यदि मनुष्य की कोशिकाओं में इंसुलिन संश्लेषित करनेवाले जींस पहुँचाए जा सकें, तो इस रोग से हमेशा के लिए छुटकारा पाया जा सकता है। कैंसर के रोग का कारण है—कोशिकाओं की अनियमित वृद्धि। यदि कुछ ऐसे लाभप्रद जींस मनुष्य में डाले जा सकें, जो इस वृद्धि को रोकने में सफल हों तो मनुष्य कैंसर जैसे घातक रोग से बच सकता है। लेकिन इस खोज के श्याम पक्ष भी हैं। हानिकारक कल्पनाएँ भी संभव हैं। अत: जैव-प्रौद्योगिकीविदों का यह प्रमुख कर्तव्य बन जाता है कि वे इस खोज को अभिशाप न बनने दें, क्योंकि मानवता सर्वोपरि है।

पृथ्वी पर कई अरब वर्षों तक चले जीवन के विकास-काल में अंतत: वे ही जीव बच सके, जो अस्तित्व के कठिन संघर्ष में विजयी रहे। इनमें भी मनुष्य जाति ने अपने प्रादुर्भाव के साथ ही वर्चस्व स्थापित करने में सफलता पाई। इसका एक कारण शायद यह हो सकता है कि किसी भी अन्य जीव स्वरूप का मस्तिष्क, मानव की बुद्धिमत्ता में बराबरी नहीं कर सकता। पर ऐसा क्यों है कि मनुष्य और पशु ही नहीं, बुद्धिमत्ता या अन्य गुणों में दो मनुष्य भी समान नहीं होते हैं। ऐसा समझा गया था कि हर मनुष्य का जीनोम अनुक्रम दूसरे से भिन्न होगा, पर ठीक उसी तरह जैसे हर कोशिका की मूल संरचना एक जैसी होती है, जीनोम अनुक्रम भी सभी मनुष्यों में लगभग एक जैसा होता है। मानव जीनोम अनुक्रम परियोजना का एक उद्देश्य यही पता लगाना था कि जीनोम कैसे दो व्यक्तियों को भिन्न बनाता है? दूसरा उद्देश्य यह भी देखना था कि क्या इस अनुक्रम में ही समस्त स्वास्थ्य संबंधित समस्याओं

का निदान/उपचार भी मिल सकता है ? एक कोशिका/जीव की वृद्धि, प्रजनन, जीवन के लिए आवश्यक सभी निर्देशों/सूचनाओं की सूक्ति जीनोम अनुक्रम में पाई जा सकती है। कोशिका का आनुवंशिक पदार्थ गुणसूत्रों में समाहित डी.एन.ए. से बनता है और गुणसूत्र का वह भाग, जिसके अनुक्रम में एक सार्थक कूट निहित है, जीन कहलाता है। किसी भी कोशिका के सामान्य कार्य के लिए सभी जीनों का एक समय में कार्यरत रहना आवश्यक नहीं।

विभिन्न जीनें भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में, जीवन-चक्र की अलग स्थितियों में असामान्य स्वास्थ्य दशाओं में और शरीर के विभिन्न अंगों में अलग-अलग समय पर कार्यरत हो सकती हैं। यथा-एक समय में सभी कार्यरत जीनों की जानकारी किसी भी कोशिका की विशिष्ट कार्यदशा की सूचक हो सकती है। किसी भी जीन की कार्यदशा को उसमें बननेवाले आर.एन.ए. अणु द्वारा मापा जा सकता है। आर.एन.ए. पॉलीमरेज नामक एंजाइम किसी डी.एन.ए. अनुक्रम की एक प्रतिलिपि आर.एन.ए. के रूप में अनुलिखित कर सकते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा तीन विभिन्न एंजाइम एक ही प्रकार के डी.एन.ए. से तीन प्रकार के आर. एन. ए. अनुलेख, जिसके भिन्न-भिन्न कार्य होते हैं, बना सकते हैं। ट्रांसक्रिप्टोम कोशिका में यह अनुलेखन प्रक्रिया बड़ी बारीकी के साथ नियंत्रित होती है। इस नियंत्रण द्वारा एक समय में सिर्फ वांछित डी.एन.ए. अनुक्रमों का अनुलेखन किया जा सकता है, जिससे अंत में, किसी एक अवस्था में समस्त आर.एन.ए. अणुओं (अनुलेखों) की विविधता विशिष्ट होती है। इस एक समय में पाए जानेवाले अनुलेखों के आर.एन.ए. समूह को उस कोशिका का ट्रांसक्रिप्टोम (अनुलेख समूह) कहते हैं। ट्रांसक्रिप्टोम कोशिका के दृश्य गतिविधियों और उसके जीनोम में अदृश्य कूट निर्देशों के बीच की गतिमान कड़ी बनाता है। कोई भी प्राणी बदलती परिस्थितियों के साथ कैसे और कितना सांमजस्य स्थापित कर पाता है, इसका पूरा कच्चा चिट्ठा उसके ट्रांसक्रिप्टोम में मिल सकता है। नई आधुनिक तकनीकों और विधियों के साथ व्यापक स्तर पर कोशिका के समस्त अनुलेखों का आकलन किया जा सकता है।

जैकब पहले वैज्ञानिक थे, जिन्होंने मैसेंजर (संदेशवाहक) आर.एन.ए. या एम—आर.एन.ए. का अस्तित्व सुझाया। यह एक सूत्र वाला अणु होता है, जिसके अंदर समाधारों का क्रम कोशिका में डी.एन.ए. का पूरक होता है। उन्होंने परिकल्पित किया कि आनुवंशिक कूट के अनुवाद के दौरान, संदेशवाहक आर.एन.ए., डी.एन.ए. के समाधार-क्रम में निहित कूटबद्ध 'सूचना' को राइबोसोम में पहुँचाता है। इन राइबोसोमों में ही प्रोटीनों का संश्लेषण होता है।

प्रस्ताविक प्रक्रिया बड़ी सरल थी। जब डी.एन.ए. का अणु खुलता है, तो जैसा कि वॉटसन और क्रिक ने सुझाव दिया था, उसके दो सूत्रों में से एक सूत्र उसकी संरचना की नकल कर लेता है, लेकिन यह डी.एन.ए. अणु को बनाने वाले न्यूक्लियोटाइडों के क्रम की अनुकृति नहीं होती, बल्कि आर.एन.ए. को बनानेवाले न्यूक्लियोटाइडों के क्रम की अनुकृति होती है। इस प्रकार डी.एन.ए—सूत्र का एडेनीन अपना जोड़ा थाइमिन के साथ नहीं बनाता, बल्कि यूरेसिल के साथ बनाता है। (यह प्रक्रम डी.एन.ए. की प्रतिकृति बनने से अलग होता है, जब डी.एन.ए. के दो पूरक सूत्र बनते हैं) इस तरह जो एम—आर.एन.ए. अणु बनता है, वह अपने न्यूक्लियोटाइड—क्रम में निहित आनुवंशिक कूट को लेकर केंद्रक से बाहर आता है और कोशिकाद्रव्य में एम-आर.एन.ए. का समाधार-क्रम अनूदित होकर एक एंजाइम के अमीनो अम्ल-क्रम में बदल जाता है, जोकि वास्तव में एक प्रोटीन होता है। इस प्रकार एम-आर.एन.ए. को हम डी.एन.ए. में निहित सूचना के गुणसूत्र के रूप में संचित 'मास्टर कॉपी' की 'वर्किंग कॉपी' कह सकते हैं।

अब इस शोध का अगला चरण यह पता करना था कि आनुवंशिक कूट किस तरह टी-आर.एन.ए. और अमीनो अम्लों को अनुदेश देता है कि वे प्रोटीन बनाएँ? पहले यह अटकल लगाई गई थी कि राइबोसोम आर.एन.ए. या आर-आर.एन.ए. ही वह 'टेम्पलेट' या फरमा है, जिस पर प्रोटीन बनते हैं। लेकिन जल्दी ही यह महसूस किया गया कि आर-आर.एन.ए. में इसके लिए जरूरी खूबियाँ होती ही नहीं।

आर.एन.ए के तीन मुख्य प्रकार होते हैं : मैसेंजर आर.एन.ए. या एम-आर.एन.ए. (संदेशवाहक आर.एन.ए), ट्रांसफर या टी-आर.एन.ए. और राइबोसोम या आर-आर.एन.ए.। प्रोटीन-संश्लेषण के समय एम-आर.एन.ए. केंद्रक में स्थित डी.एन.ए. से आनुवंशिक कूट को लेकर कोशिका द्रव्य में उन राइबोसोम आर-आर.एन.ए. और प्रोटीनों के बने होते हैं, वे एम-आर.एन.ए. द्वारा ले जाए गए संदेश को 'पढ़' सकते हैं। चार में से किन्हीं तीन नाइट्रोजनी समाधारों (जिन्हें कोडोन कहते हैं) में एक अमीनो एसिड की सूचना निहित होती है। टी-आर.एन.ए. अमीनो एसिडों को ढोकर राइबोसोमों में पहुँचाता है, जहाँ एक क्रम में लगाकर पॉलीपेप्टाइड की लंबी शृंखला, यानी प्रोटीन का निर्माण होता है।

जैकब ओर मोनोद ने सन् 1960 के बाद के दशक के आरंभ में अपना सुप्रसिद्ध 'ओपेरोन' सिद्धांत प्रतिपादित किया। उन्होंने अपने प्रतिष्ठित शोध प्रबंध में इशर्चिया कोलाइ जीवाणु के एल.ए.सी. ओपरोन की नियामक प्रक्रिया का विवरण दिया। जब माध्यम में लैक्टोस होता है, तो उन्होंने देखा कि यह जीवाणु शर्करा का उपापचय

करने के लिए एंजाइमों का निर्माण करता है, जिसके लिए वंशाणु की पूरी संजाति को 'ऑन' कर देता है। अगर माध्यम में लैक्टोस नहीं होता तो ये तमाम वंशाणु 'ऑफ' हो जाते हैं। लैक्टोस डालने के बाद ही क्रियाओं का पीछा करने पर जैकब और मोनोद ने पता लगाया कि लैक्टोस डालने पर उसने डी.एन.ए. से एक संदमक निकाल दिया, जो कुछ खास वंशाणुओं की क्रिया का दमन करता था। जब उनकी जरूरत नहीं पड़ती तो कुछ वंशाणुओं को 'बंद' करके अणु ऊर्जा का संरक्षण करता है। आपेरोन की धारणा को प्रस्तुत करने में, दोनों वैज्ञानिकों ने परिकल्पना की कि वंशाणुओं का एक ऐसा वर्ग होता है, जो एम-आर.एन.ए. के संश्लेषण का नियंत्रण करके अन्य वंशाणुओं की क्रिया का नियमन करता है।

ओपरोन सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक जीवाणु-जीव के निकट एक डी.एन.ए.-'खंड होता है, जो 'प्रमोटर' कहलाता है। यही वह बिंदु होता है, जहाँ एम-आर.एन.ए. के उत्पादन के लिए उत्तरदायी एंजाइम आर.एन.ए—पॉलीमरेस डी.एन.ए. से चिपका रहता है और अनुलेखन प्रारंभ करता है। प्रमोटर और वंशाणु के बीच प्राय: एक और डी.एन.ए-खंड होता है, जिसे 'ऑपरेटर' कहते हैं। यहाँ एक और प्रोटीन-दमककर (रिप्रेसर) चिपक सकता है। जब दमककर ऑपरेटर से जुड़ता है, तो यह आर.एन.ए. पॉलीमरेस को डी.एन.ए.—शृंखला के साथ-साथ गति करने से और एम-आर.एन.ए. बनाने से रोकता है। इसके फलस्वरूप वंशाणु निष्क्रिय हो जाता है। जब वंशाणु सक्रिय होता है, तो एम-आर.एन.ए. की एक इकाई का लिप्यंतरण होता है और उसके बाद उस संदेश का अनुवाद एक पृथक् प्रोटीन में हो जाता है। सन् 1967 में एक दमककर प्रोटीन विलगित किया गया और पाया गया कि वह तो बड़ा छोटा सा अणु है। इस प्रकार जैकब और मोनोद यह प्रदर्शित कर सके कि वंशाणुओं के अंदर मौजूद सूचना के आधार पर रासायनिक अभिक्रिया से प्रोटीनों का संश्लेषण होता है। उनकी खोज से पहले वंशाणुओं का 'ऑपरेटर' वर्ग अज्ञात था, जोकि संरचनात्मक वंशाणुओं का नियंत्रण करता है। अत: इन दोनों फ्रांसीसी वैज्ञानिकों की खोज बड़ी क्रांतिकारी उपलब्धि थी।

ल्वोफ ने बैक्टीरियोफाज नामक विषाणुओं पर अनुसंधान किया। ये विषाणु जीवाणु को ही संक्रमित करते हैं। ल्वोफ ने पता लगाया कि विषाणु की आनुवंशिक सामग्री को संक्रमित करने के बाद वे उसे असंक्रामक रूप से जीवाणु की अगली पीढ़ियों में पारेषित कर देते हैं। लेकिन कुछ मामलों में आनुवंशिक सामग्री संक्रामक रूप धारण कर लेती है और जीवाणु—कोशिका का विघटन कर देती है, जिसे फाड़कर संक्रामक विषाणुओं की भारी भीड़ बाहर निकल पड़ती है।

इन तीनों वैज्ञानिकों, कोशिकीय आनुवंशिकीविद् जैकब, जीव रसायन विज्ञानी मोनोद और सूक्ष्म जीव विज्ञानी ल्वोफ ने अनुसंधान का एक नया क्षेत्र प्रशस्त किया, जिसे वास्तविक अर्थों में 'अणु जीव विज्ञानी' कहा जा सकता है। वंशाणु की क्रिया का रहस्य खोजने के इस उत्कृष्ट अनुसंधान के लिए जैकब, मोनोद और ल्वोफ को सन् 1965 का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

सत्तरादिक के प्रारंभ तक गुणसूत्रों के डी.एन.ए. द्वारा आनुवंशिक विशेषकों (ट्रेट्स) के पारेषण की समग्र प्रक्रिया काफी अच्छी तरह समझ ली गई थी। यह पता चल गया था कि प्रत्येक गुणसूत्र असल में डीएनए के बहुत लंबे समूचे सूत्र का पैकेज है। एक कोशिका के केंद्रक में पैक किया हुआ डी.एन.ए. दो मीटर तक लंबा हो सकता है। उच्च श्रेणी के जीवों में संरचनात्मक प्रोटीन हिस्टोन होते हैं, जो एक तरह से वे ढाँचे होते हैं, जिनके चारों ओर डी.एन.ए. पहचाने गए हैं। डी.एन.ए.—हिस्टोन सम्मिश्र दुहरा कोइल बनाता है। यह दोहरा कोइल गुणसूत्रों की शक्ल में होता है। इस प्रकार 'हिस्टोन' गुणसूत्रों में डी.एन.ए. को पैक करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी से देखने पर किसी भी कोशिका के कोशिकाद्रव्य में तैरते हुए राइबोसोम भरे हुए दिखाई देते हैं। इसके साथ उसमें आर.एन.ए. पॉलीमरेस, टी-आर.एन.ए. और एम-आर.एन.ए. तथा एंजाइम होते हैं। ये सब-के-सब एक-दूसरे से स्वतंत्र अपना-अपना दायित्व निभाते रहते हैं। डी.एन.ए. से आनुवंशिक सूचना का प्रोटीन तक पारेषण दो चरणों में होता है। जब कोई वंशाणु 'ऑन' होता है, तो डी.एन.ए. हिस्टोन के ढाँचे पर से एक जिपर की तरह उधड़ जाता है। पहले चरण को 'अनुलेखन' (ट्रांसक्रिप्शन) कहते हैं। इसमें आर.एन.ए. पॉलीमरेस एंजाइम डी.एन.ए. के सूत्र से विभिन्न वंशाणुओं के आरंभ-बिंदु पर जुड़ जाते हैं और डी.एन.ए. के वंशाणु की नकल करके एम-आर.एन.ए. में डाल देते हैं। अब एम-आर.एन.ए. केंद्रीय झिल्ली के पार तैरता हुआ राइबोसोम तक पहुँच जाता है। राइबोसोम 'कूट' को पढ़कर उसी के अनुसार अमीनो अम्लों को एक नियत क्रम में जोड़ता जाता है, जोकि प्रोटीन-अणु बनाते हैं। इस प्रक्रम को स्थानांतरण कहा जाता है।

स्मरण रहे, प्रोटीन के संश्लेषण का स्थान राइबोसोम है। यह प्रोटीनों की बनी बड़ी जटिल संरचना है और इसके साथ आर-आर.एन.ए. के मिलने से और भी जटिल आणविक यंत्र बन जाता है। राइबोसोम की सहायता एक रसायन करता है, जिसे एटीपी, यानी एडिनोसिन ट्राइ फॉस्फेट कहते हैं। यह संदेशवाहक आर.एन.ए. के साथ-साथ 'गति' करता हुआ, उसे ऊर्जा प्रदान करता है और अमीनो अम्लों को आपस में तुरपा देता है। टी—आर.एन.ए. भी इसकी सहायता करता है। यह

20 विशेष अणुओं का एक संकलन होता है, जो 20 भिन्न-भिन्न अमीनो अम्लों के वाहक का काम करते हैं। जैसे ही राइबोसोम एम-आर.एन.ए. अगले कोडोन तक पहुँचता है, तो सही टी—आर.एन.ए. अणु सही अमीनो अम्ल का वहन करते हुए उस जगह में आ पहुँचता है। राइबोसोम टी-आर.एन.ए. से अमीनो एसिड को ले लेता है और उसे पॉलीपेप्टाइड की विकसित हो रही शृंखला में सही जगह पर तुरपा देता है। राइबोसोम इसके बाद 'खाली' हुए टी-आर.एन.ए. अणु को बाहर निकाल देता है, ताकि वह वापस जाकर सही अमीनो अम्ल को लादकर ले आए। यही प्रक्रम एम-आर.एन.ए. के सभी कोडोनों के लिए काम करता है।

हालाँकि अणु जीव विज्ञान का यह 'सेंट्रल डोग्मा' अधिकतर मामलों में इसी तरह सही काम करता है, लेकिन कुछ विषाणुओं के मामले में यह सही नहीं 'ठहरता। दो अमेरिकी विषाणु विज्ञानी डेविड बाल्टीमूर और होवार्ड टेमिन तथा इतालवी विषाणु विज्ञानी रेनाटो डलबेको जब विषाणु से दूसरी कोशिका में आनुवंशिक सूचना के पारेषण पर अनुसंधान कर रहे थे, तो एक आश्चर्यजनक निष्कर्ष पर पहुँचे। 'मूल हठधर्म' (सेंट्रल डोग्मा) के अनुसार आनुवंशिक सूचना केवल डी.एन.ए. से आर.एन.ए. में पारेषित हो सकती है और वापस आर.एन.ए. से डी.एन.ए. में नहीं आ सकती। लेकिन बाल्टीमूर, टेमिन और डलबेको के शोधकार्य ने यह सिद्ध कर दिया कि आनुवंशिक सूचना वस्तुतः आर.एन.ए. में भी पारेषित हो सकती है। यह अर्बुद पैदा करनेवाले कुछ खास विषाणुओं में देखा गया। उन्होंने यह भी खोज की कि जब कोई विषाणु किसी कोशिका को संक्रमित करता है, तो वह या तो उस कोशिका को उसके अंदर अपनी असंख्य प्रतिलिपियाँ बनाकर मार देता है, या फिर संक्रमित कोशिका में अपनी आनुवंशिक सामग्री डालकर उस कोशिका की आनुवंशिक सामग्री को रूपांतरित कर देता है। रूपांतरित कोशिका में फिर विषाणु की प्रतिलिपियाँ नहीं बनतीं।

बाल्टीमूर ओर टेमिन ने सन् 1970 में एक और क्रांतिकारी खोज की, जब उन्होंने अर्बुद बनानेवाले आर.एन.ए.—विषाणुओं में एक विशिष्ट एंजाइम का पता लगाया, जो आर.एन.ए. से डी.एन.ए. की कॉपी बना सकता था। इस एंजाइम का नाम 'रिवर्स ट्रांसक्रिप्टेज' रखा गया, क्योंकि सामान्य तौर पर डी.एन.ए. से आर.एन.ए. में अनुलेखन होता है, जबकि यह एंजाइम इसके उलट आर.एन.ए. से डी.एन.ए. में अनुलेखन करता था। इस खोज के बाद प्रकृति में आर.एन.ए.—अर्बुद-विषाणुओं जैसी ही आनुवंशिक सामग्री के हमारे ज्ञान में विस्फोटक वृद्धि हुई। अर्बुदीय विषाणुओं और कोशिका की आनुवंशिक सामग्री के बीच अंत:क्रिया से संबंधित उनकी उत्कृष्ट

खोजों के लिए बाल्टीमूर, डलबेको और टेमिन को सन् 1975 का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

जैसे-जैसे आनुवंशिक प्रक्रिया स्पष्ट होती गई, वैसे-वैसे इसने वंशाणुओं में हेर-फेर करने की संभावनाएँ भी खोल दीं। इस तकनीक को आनुवंशिक अभियांत्रिकी 'जेनेटिक इंजीनियरिंग' नाम दिया गया अब जैवप्रोद्योगिकी वैज्ञानिक अनेक भिन्न-भिन्न जरूरतों को पूरा करने के लिए पूर्वनिर्धारित मार्ग से जीवों के वंशागत अभिलक्षणों को बदलने की सोचने लगे। उदाहरण के लिए सूखारोधी जंगली पौधों के वंशाणु फसल वाले पौधों में डालकर फसलें कम पानी में उगाई जा सकेंगी। इसी प्रकार मानव-वंशाणुओं को जीवाणु में प्रविष्ट करके जीवाणुओं को इस बात के लिए विवश किया जा सकता है कि वे मानव हार्मोन तथा अन्य वंशाणु-उत्पाद बनाने लगें। इस तरह की संभावनाएँ अपार हैं।

लेकिन इससे पहले कि इन संभावनाओं को वास्तविकता में बदला जाता, यह जरूरी था कि वंशाणुओं की कतरन एवं समबंधन की तकनीकें तैयार हो जातीं। एक खोज, जिसने अणुजैविकी के साधन के रूप में आनुवंशिक अभियांत्रिकी के विकास पर दूरगामी प्रभाव डाला, वह थी, विशेष प्रकार के एंजाइम, रेस्ट्रिक्शन एंजाइम यानी प्रतिबंधक एंजाइम की खोज। प्रतिबंधक एंजाइम जीवाणु से विलगित किए जाते हैं। वहाँ ये एंजाइम प्रतिरक्षा का काम करते हैं, यानी वे जीवाणु के अंदर किसी बाहरी स्रोत, विषाणु या जीवाणु के अन्य विभेद से डी.एन.ए. का प्रवेश प्रतिबंधित कर देते हैं। प्रतिबंधक एंजाइम 'आणविक चाकू' का काम करते हैं, जिनका इस्तेमाल करके अणु जीव विज्ञानी डी.एन.ए. के सूत्रों को काटकर, कटे हुए डी.एन.ए.-खंडों को सुपरिभाषित खंडों के रूप में इस्तेमाल कर सकते हैं। फिर इन खंडों को गुणसूत्रों पर वंशाणुओं का क्रम निर्धारित करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। इस तरह डी.एन.ए. के उन भागों को पहचाना जा सकता है, जो वंशाणु-क्रिया का नियमन करते हैं और वंशाणुओं के नए संयोजन बनाए जा सकते हैं। इस नए एंजाइम के कार्य की व्याख्या करने में जिन तीन वैज्ञानिकों ने बराबर की भूमिका निभाई, वे थे : स्विस सूक्ष्मजैविकीविद् वर्नर आर्बर और अमेरिकी सूक्ष्म जैविकीविद् डेनियल नाथांस जो वैज्ञानिक लूरिया के काम को ही आगे बढ़ा रहे थे, जिसने यह प्रेक्षित किया था कि बैक्टीरियोफाज अपने परपोषी जीवाणु में वंशागत उत्परिवर्तन तो पैदा कर ही रहे थे, वे उसी समय अपने अंदर भी वंशागत उत्परिवर्तन ला रहे थे। आर्बर का अनुसंधान उन सुरक्षक एंजाइमों पर केंद्रित था, जो जीवाणु में मौजूद रहकर संक्रमणकारी विषाणु का डी.एन.ए. रूपांतरित करते हैं। प्रतिबंधक एंजाइमों की खोज के बाद आर्बर ने यह

अभिधारणा रखी कि ये एंजाइम विशिष्ट स्थानों पर बंधित होते हैं, जहाँ पर विशिष्ट समाधार-युग्म के अनुक्रमों से बने आवर्ती संरचनात्मक तत्त्व होते हैं।

अब तो यह पता चल चुका है कि प्रत्येक प्रतिबंधक एंजाइम न्यूक्लियोटाइड समाधारों के एक विशेष छोटे अनुक्रम को पहचानता है। इन विशिष्ट भागों को 'पहचान-अनुक्रम' (रिकोग्नीशन सिक्वेंस) कहा जाता है और ये पूरे डी.एन.ए. पर यादृच्छिक रूप से वितरित रहते हैं। जीवाणुओं की भिन्न-भिन्न प्रजातियाँ भिन्न-भिन्न प्रतिबंधक एंजाइम बनाती हैं, जोकि भिन्न-भिन्न न्यूक्लियोटाइड अनुक्रमों को पहचानते हैं। जब कोई प्रतिबंधक एंजाइम किसी अनुक्रम को पहचान लेता है, तो यह पास-पास स्थित न्यूक्लियोटाइडों के बीच के बंध को, अपघटित करने की क्रिया को उत्प्रेरित करके डी.एन.ए. के अणु को उस स्थान से कतर देता है। तीन प्रकार के प्रतिबंधक एंजाइम मालूम हो चुके हैं। टाइप-I के प्रतिबंधक एंजाइम लक्षित डी.एन.ए.-अणु को यादृच्छिक स्थान से विच्छेदित करते हैं, टाइप-II डी.एन.ए. अणु को केवल पहचानी गई जगह से कतरते हैं, जबकि टाइप-III वाले प्रतिबंधक एंजाइम पहचानी गई जगह से एक नपी-तुली दूरी पर से कतरते हैं। डी.एन.ए. अणुओं में समाधारों के अनुक्रमों के विशदीकरण में टाइप-II और टाइप-III प्रतिबंधक एंजाइमों की भूमिका बड़ी बलवती होती है। वे पुनर्संयोजी डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी (रिकम्बाइनेंट डी.एन.ए. टेक्नोलॉजी) में बड़ी मूलभूत भूमिका निभाते हैं।

हीमोफिलस इंफ्लुएंजी जीवाणु पर काम करते हुए मिल्टन स्मिथ और उनके सहकर्मियों ने टाइप-II के पहले प्रतिबंधक एंजाइम की खोज की थी। ये एंजाइम डी.एन.ए. के अनुक्रम को कतर देते हैं। टाइप-II प्रतिबंधक एंजाइमों का यह व्यवहार पहले से बताया जा सकता है और इस कारण ये एंजाइम डी.एन.ए. की संरचना के अध्ययन तथा पुनर्संयोजी डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी में बड़े काम के साबित हुए।

डेनियल नाथांस ने प्रतिबंधक एंजाइमों को आनुवंशिकी में इस्तेमाल करने में महारत हासिल की। उन्होंने स्मिथ द्वारा एच. इंफ्लुएंजी जीवाणु से विलगित प्रतिबंधक एंजाइम का उपयोग बंदर में कैंसरी अर्बुद पैदा करनेवाले एक विषाणु के डी.एन.ए. की संरचना ज्ञात करने में किया। इस तरह उन्होंने विषाणु का पूरा आनुवंशिक-मानचित्र बना डाला, जोकि बहुत महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी और कैंसर के आणविक आधार को पहचानने की समस्या से निपटने में यह पहला मौका था, जब प्रतिबंधक एंजाइम का उपयोग किया गया। उनके इस शोधकार्य ने सिस्टिक फाइब्रोसिस (पुटीय तंतुमयता) और सिकिल-सेल एनीमिया (दात्र कोशिका अवरक्तता) जैसे आनुवंशिक रोगों के प्रसवपूर्व निदान के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इस प्रकार सन् 1969 में आर्बर, नाथांस और स्मिथ द्वारा प्रतिबंधक एंजाइमों की खोज एक बड़ी सार्थक क्रांतिकारी खोज थी, जिसने आनुवंशिकी के विज्ञान पर बड़ा दूरगामी प्रभाव डाला। इस खोज ने एक नए विषय की नींव रखी, जिसे 'मोलीक्यूलर जेनेटिक्स', जेनेटिक इंजीनियरिंग या रिकंबाइनेंट डी.एन.ए. टेक्नोलॉजी कहा गया। इन नए जैव प्रौद्योगिक साधनों ने उच्च श्रेणी के जंतुओं में वंशाणुओं के संघटन और अभिव्यक्ति के अध्ययन के नए रास्ते खोले और परिवर्धनात्मक जैविकी की मूलभूत समस्याओं को सुलझाने का मार्ग प्रशस्त किया। प्रतिबंधक एंजाइमों की खोज और आणविक आनुवंशिकी की समस्याओं में उनके अनुप्रयोग के लिए आर्बर, नाथंस और स्मिथ को सन् 1978 का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

डी.एन.ए. अणु को अलग-अलग खंडों में बाँटने और उसके खंडों को वापस जोड़ने के काम में सबसे पहले अमेरिकी जीव रसायन विज्ञानी पॉलबर्ग, ब्रिटिश जीव रसायन विज्ञानी फ्रेडरिक सांगर और अमेरिकी अणुजीव विज्ञानी वाल्टर गिल्बर्ट ने महारत हासिल की। सन् 1968 के आसपास की बात है, जब पॉलबर्ग ने स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी में जीवाणु से अधिक जटिल जीवों में वंशाणु अभिव्यक्ति पर अनुसंधान शुरू किए। पॉल बर्ग और कुछ अन्य जीव रसायन विज्ञानी ने देखा कि जब कुछ विषाणुओं ने अर्बुद पैदा किए तो परपोषी की कोशिकाओं में विषाणु का वंशाणु ही अभिव्यक्त होता है। उन्होंने निर्णय किया कि इस परिघटना का अध्ययन करने के लिए न्यूक्लिक अम्लों में रासायनिक तरीकों से हेर-फेर करने की तकनीकों का उपयोग किया जाए। इसकी एक सरल विधि यह चुनी गई कि डी.एन.ए. के छोटे खंड काटकर चुने हुए एकल खंडों-अर्थात् वंशाणुओं-को डी.एन.ए. के एक हिस्से में जोड़ दिया जाए और फिर नए गुणसूत्र-परिवेश में उन वंशाणु की अभिव्यक्ति परखी जाए। काटने का काम प्रतिबंधक एंजाइम कर देगा, जबकि डी.एन.ए. के दो कटे हिस्सों को जोड़ने का काम एक अन्य एंजाइम-डी.एन.ए. लाइगेस से लिया गया। पॉल बर्ग ने इन दोनों एंजाइमों का उपयोग उस तकनीक के लिए किया, जिसे अब 'जीन स्पिलसिंग' यानी 'वंशाणु विच्छेदन' कहते हैं। इसमें विभिन्न जीवों के डी.एन.ए. खंडों में जोड़-तोड़ की जाती है, जिसे 'पुनर्संयोजन' (रिंकबीनेशन) कहते हैं।

लंदन की कैंब्रिज यूनिवर्सिटी में शोध करते हुए फ्रेडरिक सांगर ने वंशाणु-अभिव्यक्ति के अध्ययन के लिए दूसरा कोण चुना। उन्होंने न्यूक्लिक अम्ल में न्यूक्लियोटाइडों के अनुक्रम पता करने की तकनीक विकसित की और जिन प्रोटीनों को वे कूटित करते थे, उनसे उनका सहसंबंध स्थापित किया। न्यूक्लियोटाइडों का अनुक्रम ज्ञात करने की सांगर ने एक अनूठी विधि खोजी। इस विधि में सबसे

पहले प्रतिबंधक एंजाइमों का उपयोग करके न्यूक्लीक अम्ल को न्यूक्लियोटाइडों के सैकड़ों खंडों में काटा और सभी खंड अलग कर लिये। इसके बाद इन खंडों को न्यूक्लियोटाइडों के भिन्न-भिन्न मिश्रणों से छोटे पूरक पॉलीन्यूक्लियोटाइड बनाने के लिए टेंपलेट के रूप में इस्तेमाल किया। इन रूपांतरित पॉलीन्यूक्लियोटाइडों को अलग-अलग करके उनका विश्लेषण करने पर मूल न्यूक्लिक अम्ल की शृंखला में विशिष्ट समाधारों (बेसेज) की स्थिति पता की गई। सांगर की इस विधि से जीवाणु को संक्रमित करनेवाले विषाणु के डी.एन.ए. को बनाने वाले लगभग पूरे 5,400 न्यूक्लियोटाइडों का अनुक्रम मालूम किया गया। इससे उस विषाणु की क्रिया के लिए आवश्यक प्रोटीनों को कूटित करनेवाले नौ वंशाणुओं को ज्ञात किया गया।

अमेरिका की हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के वाल्टर गिलबर्ट का अनुसंधान भी डी.एन.ए. में न्यूक्लियोटाइडों के अनुक्रम का पता लगाने से ही संबंधित था, लेकिन गिलबर्ट 'ने डी.एन.ए. शृंखला को विशिष्ट स्थानों पर काटनेवाले विशेष रासायनिक अभिरंजकों के लिए् उपयोग किया। सन् सत्तरादिक में गिलबर्ट ने प्रतिबंधक एंजाइमों की क्रिया से छोटे खंडों में काटे गए डी.एन.ए. खंडों में न्यूक्लियोटाइड-अनुक्रमों को 'पढ़ने' के लिए 'जेल इलेक्ट्रोफोरेसिस' नामक व्यापक रूप से इस्तेमाल हो रही तकनीक का उपयोग किया। न्यूक्लिक एसिड पर इस उत्कृष्ट शोधकार्य के लिए पॉल बर्ग, फ्रेडरिक सांग्र और वाल्टर गिलबर्ट को सन् 1980 का रसायन विज्ञान का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

इशर्चिया कोलाइ पुनर्संयोजी डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी में सबसे अधिक उपयोग आँतों में पाए जानेवाले सामान्य जीवाणु का किया जाता है। किसी भी जीव में अजनबी वंशाणु को प्रविष्ट कराने की आम तकनीक यह है कि जिस वंशाणु का अध्ययन करना है, उसे विषाणु के डी.एन.ए. में या प्लास्मिड में पिरो दिया जाए। ये जंतुओं या जीवाणु की कोशिकाओं में घुसकर वहाँ पिरोए गए वंशाणु की अभिव्यक्ति करा सकते हैं। ई. कोलाइ में अजनबी वंशाणु को प्रविष्ट कराने के लिए पहले उस जीवाणु के प्लास्मिड को चुने हुए स्थानों पर प्रतिबंधक एंजाइमों की मदद से काटते हैं। इसी तरह जो अजनबी वंशाणु डालना है, उसे भी काटकर अलग कर लेते हैं जिसके लिए डी.एन.ए. लाइगेज नामक एंजाइम इस्तेमाल किया जाता है। इससे रूपांतरित प्लास्मिड बन जाता है, जिसमें अजनबी वंशाणु होता है। अब जीनांतरित प्लास्मिड को संवर्धन-माध्यम में सवंर्धित करते हैं। इस तरह उस प्लास्मिड वाले जितने भी जीवाणु होते हैं, उन सब में उस अजनबी वंशाणु की अभिव्यक्ति हो जाती है। यह वंशाणु उस उत्पाद को बनाता है, जिसके लिए वह कूटित है।

विभिन्न स्तनधारी प्राणियों और जीवाणु में स्तनधारियों के वंशाणुओं की अभिव्यक्ति लाने के लिए यह तरकीब बड़े पैमाने पर इस्तेमाल की गई है। उदाहरण के लिए इंसुलिन एक सादा-सा प्रोटीन है, जो सामान्य तौर पर अग्न्याशय द्वारा पैदा किया जाता है। जिन लोगों को डायबिटीज की बीमारी होती है, उनमें अग्न्याशय क्षतिग्रस्त हो जाता है और इंसुलिन का निर्माण नहीं कर पाता। देह में ग्लूकोज को पचाने के लिए इंसुलिन होना जरूरी है। डायबिटीज एक बहुत बड़ी समस्या है। डायबिटीज के कुछ रोगियों को तो हर रोज अपनी देह में इंसुलिन के इंजेक्शन लेने पड़ते हैं। सन् 1980 के दशक से पहले इंसुलिन सूअरों से निकाला जाता था और बहुत महँगा पड़ता था। पशु से प्राप्त इंसुलिन मानव-इंसुलिन से थोड़ा भिन्न था और कुछ रोगियों को उससे एलर्जी थी।

इंसुलिन अधिक सस्ता बने, इसके लिए जो वंशाणु मानव-इंसुलिन बनाता है, उसे सामान्य ई. कोलाइ जीवाणु के प्लास्मिड में पिरो दिया गया। एक बार जब प्लास्मिड में वह वंशाणु पहुँच गया तो फिर जीवाणुओं ने किसी अन्य एंजाइम की तरह इसको भी बनाना शुरू कर दिया। जीनांतरित जीवाणुओं को बड़ी मात्रा में संवर्धित किया गया और फिर इन जीवाणु को मारकर उनके अंदर बना इंसुलिन निकालकर प्रशोधित किया गया और इस तरह जो इंसुलिन बना, वह सस्ता पड़ा।

इस तरह पहली बार सन् 1978 में बनाया गया मानव इंसुलिन पुनर्संयोजी डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी से निर्मित पहला औषधीय उत्पाद बन गया। आजकल तो जीवाणु-संवर्धन से अनेक प्रकार के उत्पाद बनाए जा रहे हैं। इनमें मानव-वृद्धि हॉर्मोन भी शामिल है। यह हॉर्मोन उन बच्चों के उपचार में इस्तेमाल किया जाता है, जो ठिगने रह गए हैं और उनका ठिगनापन पिट्यूटरी ग्रंथि में किसी दोष की वजह से पैदा हुआ है। जब तक पुनर्संयोजी डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी विकसित नहीं की गई थी, तो मुर्दों के शरीर से मानव-वृद्धि हॉर्मोन निकालने की परंपरागत विधि का उपयोग किया जाता था। एक वर्ष तक एक ठिगने बच्चे का उपचार करने लायक मानव-वृद्धि हार्मोन 50 मुर्दो से निकालना होता था। जब पुनर्संयोजी डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी से मानव-वृद्धि-हॉर्मोन बनाया जाने लगा तो यह सब बदल गया। इस समय जो उत्पाद बाजार में उपलब्ध हैं, वे अधिक शुद्ध हैं और उनकी कीमत मुर्दो से प्राप्त उत्पाद से बहुत कम है।

जब हम यह मानकर चलते हैं कि हमारे शरीर की हर कोशिका आनुवंशिक रूप से समरूप होती है, तो अनेक आनुवंशिक समस्याओं को सुलझाने में कठिनाई आती है। इनमें से एक समस्या है एंटीबॉडी बनने की। जैसाकि हम जानते हैं, एंटीबॉडी

रोगप्रतिरक्षा-प्रणाली की सबसे आश्चर्यजनक विशेषता यह है कि जब उसका नए एंटीजनों से सामना होता है, तो यह प्रणाली असंख्य प्रकार के एंटीबॉडी बना देती है। यही हमारी रोग प्रतिरक्षा-प्रणाली की इस क्षमता की कुँजी है, जिसके आधार पर वह उन रोगों से लड़ सकती है, जिनका इससे पहले उसका कभी सामना नहीं हुआ था। मानव की रोग प्रतिरक्षा-प्रणाली जितनी तरह के एंटीबॉडी प्रोटीन बना सकती है, उनकी संख्या एक लाख से दस लाख तक हो सकती है। मानव शरीर यह कैसे कर पाता है?

हम यह जानते हैं कि कोशिकाओं में प्रोटीनों का निर्माण एम-आर.एन.ए. करते हैं। इन एम-आर.एन.ए. का गुणसूत्रों में स्थित वंशाणु लिप्यंतरण करते हैं। इसलिए 100,000 एंटीबॉडी पैदा करने के लिए मानव-कोशिका में कम-से-कम 100,000 ही वंशाणु होने चाहिए, जो एंटीबॉडी पैदा करने में सक्षम हों। लेकिन यह असंभव है, क्योंकि यदि ऐसा होता तो संपूर्ण मानव जीनोम केवल एंडीबॉडी बनाने वाले वंशाणुओं में ही खप जाता, जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है। अब सवाल उठता है कि तब ये कैसे होता है? अगर हम यह मान लें कि गुणसूत्रों पर वंशाणु एक स्थान पर जमे होते हैं, तो यह पहेली सुलझ ही नहीं सकती।

इस समस्या का सुलझाने के लिए सन् 1976 में एक जापानी शोधकर्ता सुसुमू तोनेगावा ने एक कदम उठाया। उस समय तोनेगावा अमेरिका में मेसाचुशेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी में काम कर रहे थे। उन्होंने चूहे के भ्रूण-कोशिकाओं में मौजूद एंटीबॉडी वंशाणु-अनुक्रम के विविध भागों की स्थिति की तुलना वयस्क चूहे की कोशिकाओं में मौजूद विविध भागों से की। उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वयस्क कोशिकाओं में वंशाणु के जो भाग एक साथ थे, एंटीबॉडी वंशाणुओं के वे भाग भ्रूण-कोशिकाओं में अलग-अलग थे! ऐसा क्यों था?

इसका उत्तर खोजने के लिए तोनेगावा ने बड़ी बारीक किस्म के प्रयोग किए और पता लगाया कि एंटीबॉडी बनानेवाले 'परिपक्व' वंशाणु वयस्क में ही थे, भ्रूण-कोशिकाओं में नहीं थे। उनकी जगह भ्रूण-कोशिकाओं में एंटीबॉडी-वंशाणुओं के सैकड़ों वैकल्पिक भाग थे। यानी ये सब एक साथ मिलकर परिपक्व सक्रिय वंशाणु बनाते थे। इसी से हमारे शरीर में इतनी तरह के भिन्न-भिन्न एंटीबॉडी-प्रोटीन बन पाते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो भ्रूण कोशिकाओं में वंशाणुओं के ऐसे अंश होते हैं, जिन्हें तरह-तरह से जोड़कर एंटीबॉडी को कूटित करनेवाले असंख्य वंशाणु बनाए जाते हैं।

रोग प्रतिरक्षा प्रणाली की लाखों-करोड़ों कोशिकाओं में से प्रत्येक में गुणसूत्रों पर डी.एन.ए. की चिंदियाँ और टुकड़े एक जगह से दूसरी जगह फुदकते रहते हैं

और इस तरह सक्रिय वंशाणु बनते चले जाते हैं, क्योंकि ये चिंदिया और टुकड़े किसी पूर्व निर्धारित व्यवस्था के बिना यादृच्छिक रूप से चुने जाते हैं, इसलिए हर कोशिका में असेंबल किया गया वंशाणु थोड़ा-सा अलग होता है। वस्तुत: प्रत्येक कोशिका में एंटीबॉडी के भिन्न-भिन्न हिस्सों को अलग तरह से 'फेंटा' जाता है। इसी के फलस्वरूप रोग प्रतिरक्षा प्रणाली की लाखों-करोड़ों कोशिकाओं में लाखों-करोड़ों एंटीबॉडी-उत्पादक वंशाणुओं की सेना किसी भी हमलावर एंटीजन पर हमले के लिए एंटीबॉडी के सैनिक भेजने के लिए तैयार रहती है।

जीवविज्ञान के इतिहास में डी.एन.ए. की दोहरी कुंडलीनुमा संरचना की खोज से एक ऐतिहासिक मोड़ आया। इससे हमें जीवन की प्रकृति को समझने में तो सहायता मिली ही, साथ ही जीवन को कृत्रिम रूप से नियंत्रित करने का मार्ग भी प्रशस्त हुआ। ठीक-ठीक कहें तो यह इस क्षेत्र की अनेक खोजों में से एक बड़ी सार्थक खोज थी। अनेक वर्षों में वैज्ञानिकों की एक प्रतिबद्ध टीम ने अनेक खोजें कीं, जिनसे अंतत: जीवन के आंतरिक प्रक्रिया के हमारे ज्ञान का विस्तार हुआ। पचास वर्षों में हुई क्रांतिकारी खोजों पर निगाह डालने से पता चलता है कि डी.एन.ए. का रहस्य खुलने से सबकुछ बदल गया। एक दशक के अंदर ही यह पता चल गया कि जीन, यानी वंशाणु से चार रासायनिक अक्षरों की भाषा में किस तरह आनुवंशिक सूचना संग्रहीत होती है, कैसे परिवर्द्धन संचालित किया जाता है और किस तरह डी.एन.ए. अपनी प्रतिलिपियाँ बनाता है और कोशिका के कार्यकलाप नियंत्रित करता है। वंशागति और विकास के भी भेद खुले। एक नई अंतर्दृष्टि मिली और नई संभावनाओं के द्वारा खुले तथा अंत में पुनर्संयोजी डी.एन.ए. की प्रौद्योगिकी विकसित हुई, जिसे 'आनुवंशिक अभियांत्रिकी' भी कहते हैं। इसने कृषि विज्ञान, स्वास्थ्य-कल्याण और रसायनों तथा औषधियों के औद्योगिक उत्पादन में क्रांति ला दी। ऐसी जीनांतरित फसलें विकसित की गईं, जो कीटव्याधियों के प्रति सहनशील हैं और अधिक पैदावार देती हैं। परंपरागत तरीकों की तुलना में पुनर्संयोजी डी.एन.ए. पर आधारित निदान-किटों से रोगों का तेजी से पता लगाने में मदद मिलने लगी। मानव-जीनोम का संपूर्ण मानचित्रण होने के बाद मल्टीपल स्क्लेरोसिस तथा कैंसर जैसे दु:साध्य रोगों के शीघ्र निदान तथा उपचार की अपार संभावनाएँ सामने आईं। यह सूची लगातार लंबी होती जा रही है। इन खोजों ने हमारे जीवन को गहराई तक स्पर्श किया है।

□

2

जीवन-वृत्त एवं शिक्षा

जीवन विज्ञान, विशेष रूप से, आनुवंशिकी के क्षेत्र में मानवोपयोगी अनुसंधान करनेवाले हरगोविंद खुराना का जन्म अविभाजित भारत के पश्चिमी पंजाब के मुलतान जिले में रायपुर नामक एक छोटे से गाँव में 9 जनवरी, 1922 को हुआ था। इनके पिता श्री गणपतराय खुराना ब्रिटिश राज में गाँव के पटवारी के पद पर काम करते थे, जो अपने गाँव के एकमात्र पढ़े-लिखे व्यक्ति थे। इनके पिता पटवारी होने के नाते ब्रिटिश भारत की प्रशासनिक व्यवस्था के अंतर्गत कृषि-राजस्व का हिसाब-किताब रखते थे। उस समय के हर भारतीय की तरह उनका परिवार भी गरीबी से पीड़ित था। आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के बावजूद इनके पिता अपने बच्चों को शिक्षित बनाने के लिए कृतसंकल्प थे। हरगोविंद खुराना एक बहन और चार भाइयों वाले परिवार में सबसे छोटे थे।

इनके पिता की व्यक्तिगत रुचि के कारण गाँव में ही एक बड़े पेड़ के नीचे एक छोटी सी पाठशाला शुरू की गई। हरगोविंद खुराना ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा यहीं से आरंभ की, बाद में उन्होंने डी.ए.वी. स्कूल, मुलतान से हाईस्कूल किया। हरगोविंद खुराना अपने एक स्कूल शिक्षक रतनलाल को बड़े आदर से स्मरण करते हैं, जिन्होंने उस दौरान उन्हें विशेष रूप से प्रेरित किया था। डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर से वर्ष 1945 में कार्बनिक रसायन में एम.एस-सी. की। स्नातकोत्तर शोध प्रबंध के लिए उनके निरीक्षक एक महान् शिक्षक और विशुद्ध प्रयोगधर्मी प्रो. महान् सिंह थे। पिता की मृत्यु बचपन में ही हो जाने के कारण हरगोविंद खुराना को बहुत संघर्ष करना पड़ा। शिक्षा के दौरान मिलनेवाली छात्रवृत्ति के सहारे उन्होंने बी.एस-सी. एवं एम.एस-सी. आकर्षक परीक्षा परिणामों के साथ उत्तीर्ण कीं। पंजाब विश्वविद्यालय के भौतिक रसायनशास्त्र के प्रोफेसर बी.आर. पुरी से उन्हें समय-समय पर काफी प्रोत्साहन एवं प्रेरणा मिली।

हरगोविंद वर्ष 1945 तक भारत में रहे। इसी वर्ष उन्हें विदेश में पढ़ने के लिए भारत सरकार की ओर से दी जानेवाली छात्रवृत्ति (स्कॉलरशिप) मिली, जिससे वे इंग्लैंड जाने और लिवरपूल यूनिवर्सिटी में पी-एच.डी. की शिक्षा ग्रहण करने में समर्थ हो सके। उन्होंने वायलेसिन नामक बैक्टीरिया पिगमेंट और संबंधित अल्क्लायड की संरचना पर शोधकार्य किया। 1948 में उन्हें यहाँ से कार्बनिक रसायन में पी-एच.डी. की डिग्री प्राप्त हुई। उनके परामर्शदाता डॉ. जे.एस. बेयर ने शोधकार्य में उनकी सहायता की और साथ ही उनका पूरा ध्यान भी रखा। लिवरपूल में रहकर पश्चिम सभ्यता और संस्कृति से वे परिचित हुए।

इस बीच देश स्वतंत्र हो गया पर उसका विभाजन भी हो चुका था। हरगोविंद खुराना की माँ और बड़े भाई शरणार्थी बनकर दिल्ली आ गए थे। स्वतंत्र भारत सरकार ने उन्हें पोस्टडॉक्टरेट शोधकार्य के लिए आगे फेलोशिप दी। वे आगे की पढ़ाई व शोध के लिए ज्यूरिख चले गए। डॉक्टरेट की उपाधि पाने के उपरांत डॉ. खुराना ने पोस्टडॉक्टरेट (1948-49) ज्यूरिख स्थित इडिग्नोसीशे टेक्निशे हॉशश्युले में प्रोफेसर व्लादिमिर प्रिलॉग के साहचर्य में की। प्रोफेसर प्रिलॉग के साहचर्य ने विज्ञान के प्रति उनके विचारों और दर्शन को जिस रूप में आकार दिया, उसे मापा नहीं जा सकता। सच कहा जाए तो जो काल उन्होंने प्रो. प्रिलॉग के साथ बिताया, उसने उनके भविष्य के चिंतन एवं शोध की दिशा तय कर दी। वर्ष 1949 के अंत में कुछ समय भारत में बिताने और काम का उपयुक्त अवसर न मिल पाने के कारण खुराना इंग्लैंड वापस चले गए, जहाँ उन्हें डॉ. जी.डब्ल्यू. केन्नर और प्रो. ए.आर. टॉड के साथ काम करने के लिए फेलोशिप मिल गई। वे वर्ष 1950 से लेकर 1952 तक कैंब्रिज में रहे। एक बार फिर यह प्रवास खुराना के लिए निर्णायक महत्त्व का सिद्ध हुआ। इसी काल में प्रोटीन और न्यूक्लिक एसिड में उनकी जिज्ञासा ने विस्तार प्राप्त किया था।

देश अभी स्वतंत्र हुआ ही था और डॉ. खुराना जानते थे कि यहाँ अभी शोध की अधिक सुविधाएँ नहीं हैं, पर फिर भी वे अपने देश में रहकर ही विज्ञान के माध्यम से देश की सेवा करना चाहते थे। इसलिए 1949 में वे भारत लौटे। लेकिन विडंबना यही रही कि यहाँ उनको सहायक प्रोफेसर स्तर का कार्य पाने में भी कठिनाई हुई। इसलिए वे इंग्लैंड वापस लौट गए। इंग्लैंड में बिताए गए 1950-52 के दो वर्षों में वे पूरी तरह शोध के प्रति समर्पित हो गए और उनके शोध का मुख्य विषय निश्चित हुआ प्रोटीन एवं न्यूक्लिक एसिड। डॉ. खुराना को इंग्लैंड में नस्ल-भेद और पक्षपात का अनुभव हुआ और उन्हें उनके कार्यक्षेत्र में आगे बढ़ने

से रोका गया, जिससे इस युवा वैज्ञानिक को निराशा का सामना करना पड़ा। वर्ष 1952 में उन्होंने डॉ. गॉर्डन एम. टेनर द्वारा दिए गए एक अनुसंधान वैज्ञानिक पद के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। इसके लिए उन्हें वेंकूबर, कनाडा जाना पड़ा। ब्रिटिश कोलंबिया रिसर्च काउंसिल उस समय उनके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई, लेकिन एक अनुसंधानकर्ता जो कुछ भी करना चाहता है, उसे करने की उन्हें पूरी छूट थी। डॉ. जैक कैंपबेल के वैज्ञानिक परामर्श के चलते जीव विज्ञान में रुचिकर फॉस्फेट ईस्टर और न्यूक्लिक एसिड के क्षेत्र में काम करने के लिए एक दल स्थापित हो गया। यहाँ डॉ. खुराना के समर्पित और निष्ठावान सहकर्मियों में से विशेषकर डॉ. गॉर्डन एम. टेनर का उल्लेख करना आवश्यक है, जिन्होंने इस दल को आध्यात्मिक और बौद्धिक स्वस्ति उपलब्ध करवाई और उनके मन में वैज्ञानिक रचनात्मकता पैदा की। डॉ. खुराना लगभग आठ साल कनाडा में रहे और डॉ. जॉन मॉफ्फेट को वैज्ञानिक सहयोग दिया व उनके साथ मिलकर जैव-रासायनिक अनुसंधान में प्रयुक्त एसिटिल कोएंजाइम-ए नामक एक महत्त्वपूर्ण यौगिक के संश्लेषण की विधि ढूँढ़ निकाली। वह यौगिक प्रोटीन, वसा और शर्करा के प्रसंस्करण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसकी संरचना बहुत ही जटिल होती है। पहले यह यीस्ट से रासायनिक विधि द्वारा अलग करके प्राप्त किया जाता था, जो बहुत महँगा पड़ता था। खुराना द्वारा संश्लेषित इस कोएंजाइम-ए की कीमत बहुत कम पड़ती थी। इस महत्त्वपूर्ण उपलब्धि के कारण डॉ. खुराना अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिक समुदाय में बहुचर्चित हो गए। उन्हें एक उत्कृष्ट जीव विज्ञानी के रूप में माना जाने लगा।

कैंब्रिज से वेंकूबर और फिर कनाडा। उनके शोध को मान्यता मिलने लगी और उनके मित्रों, सहयोगियों तथा प्रशंसकों की संख्या बढ़ने लगी। 1953 में वे कॉमनवेल्थ समूह शोध संगठन में कार्बनिक रसायन विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किए गए। लेकिन उनके युगांतरकारी शोध की असली शुरुआत 1960 में, विस्कांसिन विश्वविद्यालय के एंजाइम शोध संस्थान से हुई।

वर्ष 1960 में डॉ. खुराना ने विस्कांसिन यूनिवर्सिटी के इंस्टीट्यूट फॉर एंजाइम रिसर्च में जाने का निर्णय किया और सहनिदेशक नियुक्त हुए। यूनिवर्सिटी ऑफ विस्कांसिन मेडिसिन में डॉ. खुराना ने डी.एन.ए. न्यूक्लिक एसिड और जेनेटिक कोड की व्याख्या संबंधी प्रयोग किए। 1962 में डॉ. खुराना जैव-रसायन के प्रोफेसर नियुक्त हुए। इस दौरान उन्होंने अपना अनुसंधान जीन विज्ञान, विशेषकर न्यूक्लिक अम्ल का जैव-रसायन, एंजाइम जैव संश्लेषण और आनुवंशिक गुप्त लिपि (जेनेटिक कोड) के क्षेत्र में केंद्रित किया।

1961 में डॉ. मार्शल डब्ल्यू. नीरेनबर्ग ने इस कोड को पहले ढूँढ़ा। उन्होंने साधारण आर.एन.ए. पॉलीमर को जोड़ा, जोकि यूरेसिल न्यूक्लियोटाइड्स की चेन होता है। उन्होंने एक परखनली में कृत्रिम आर.एन.ए., जिसमें राइबोसोम तथा 20 अमीनो एसिड थे, मिलाया और रेडियोधर्मी कार्बन का प्रयोग करके 63 संभावित न्यूक्लियोटाइड्स यौगिकों में ज्यादातर का पता लगा लिया।

नीरेनबर्ग की खोज के बाद 1964 तक डॉ. खुराना ने कृत्रिम रूप से तैयार न्यूक्लियोटाइड्स तैयार कर लिया। उसके बाद नीरेनबर्ग की खोज को प्रमाणित करते हुए 64 ट्राई न्यूक्लियोटाइड्स में एक-एक को दोबारा तैयार करने की प्रक्रिया प्रारंभ की। उन्होंने अन्य विवरण भी ज्ञात किए, जैसे न्यूक्लियोटाइड्स की हर तिकड़ी में कैसा क्रम होता है। उन्होंने यह भी बताया कि कुछ अमीनो एसिड में एक से ज्यादा तिकड़ी होती है।

यह भी पता लगा लिया गया कि कुछ ट्राईन्यूक्योटाइड्स प्रोटीन के निर्माण के प्रारंभ करने और रोकने में सहायक होते हैं। कार्नियेल विश्वविद्यालय के डॉ. रॉबर्ट हॉली ने जीन्स की कोडिंग प्रक्रिया को आगे बढ़ाया और यीस्ट में पाए जानेवाले न्यूक्लिक एसिड को अलग किया।

1966 तक जीन्स की कोडिंग प्रक्रिया तैयार हो गई और इसका श्रेय तीन अमेरिकी वैज्ञानिकों को गया, जिनमें से एक थे, भारत में जन्मे डॉ. हरगोविंद खुराना। 10 दिसंबर, 1968 को इन तीनों को शरीर-विज्ञान व चिकित्सा-विज्ञान का नोबेल पुरस्कार मिला।

विनम्र डॉ. खुराना ने प्रतिष्ठित अंतरराष्ट्रीय नोबेल पुरस्कार पाने के बाद अपने अनुसंधान की गति बढ़ा दी। साथ ही जब जून 1970 में विस्कांसिन विश्वविद्यालय में जीव-विज्ञान के वैज्ञानिकों का सेमिनार हुआ तो उन्होंने अपनी सफलता का श्रेय अपने विश्वविद्यालय को दे दिया।

वे पत्रकारों से बहुत कम मिलते थे और एक बार पत्रकार से बातचीत में उन्होंने बताया कि उन्हें डर है कि विज्ञान आगे चलकर मनुष्य की सेवा करने की बजाय उसके लिए नुकसानदेह साबित होगा। उनके अनुसार विज्ञान के सदुपयोग द्वारा ही हम अपनी सभ्यता को बचा पाएँगे।

1970 में डॉ. खुराना अपने सहयोगियों के साथ मेसाचुएट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी चले गए और वहाँ पर जीव-विज्ञान और रासायनिक-विज्ञान के प्रोफेसर के रूप में काम करने लगे। यहाँ पर उन्होंने अपने अनुसंधान कार्य को आगे बढ़ाते हुए यीस्ट डी.एन.ए. के छोटे-छोटे टुकड़े तैयार किए और उन्हें शर्करा तथा फास्फोरिक एसिड के अणुओं से मिलाया।

डॉ. खुराना का अनुसंधान मानवोपयोगी सिद्ध हुआ और उनके द्वारा बनाए डी.एन.ए. और आर.एन.ए. ने पैतृक बीमारियों का इलाज संभव कर दिया। मात्र 46 वर्ष की आयु में नोबेल पुरस्कार पानेवाले डॉ. खुराना के अनुसंधान ने आणविक जैविकी नामक नए विज्ञान विषय को भी जन्म दिया। वास्तव में सभी जीवों का निर्माण विशेष रासायनिक तत्त्वों के परस्पर संयोग से होता है। आवश्यक हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, कार्बन आदि के सैकड़ों-हजारों परमाणुओं के संयोग से जीवन के अणु बनते हैं। बाद में इनसे जीवन की इकाई बनती है। इस नए विषय में जीवन का अध्ययन रासायनिक अणुओं के स्तर तक किया जाता है।

डॉ. खुराना ने दुनिया को बताया कि माता-पिता के गुण संतान में उनके शरीर में स्थित कोशिकाओं के केंद्र में स्थित क्रोमोसोम अर्थात् गुणसूत्र के जरिए आ जाते हैं। उन्होंने अपने वैज्ञानिक साथियों के साथ मिलकर प्रयोगशाला में एक ऐसे जीन का निर्माण भी कर डाला, जिसमें बदलाव करके संतान के गुणों में परिवर्तन किया जा सकता है।

वर्ष 1964 में वे जीव विज्ञान के कोनरॉड एलवेलिजेम चेयर पर प्रोफेसर के प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त हुए। 1966 में उन्होंने अमेरिका की नागरिकता ग्रहण की। 1968 में नीरेनबर्ग, हॉली और खुराना को आनुवंशिक कोड को उजागर करने के लिए कायिकी या चिकित्सा विज्ञान का नोबेल पुरस्कार सम्मिलित रूप से प्रदान किया गया। इन तीनों ने मिलकर आधुनिक जीव विज्ञान का जो सर्वाधिक उत्तेजक अध्याय लिखा था, उससे प्रकृति का महान् रहस्य खुल गया था। जीव की भाषा अब पढ़ी जा सकती थी। वर्ष 1970 के अंत में डॉ. खुराना बोस्टन में मेसाचुएट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी चले गए, जहाँ वे जीव विज्ञान और रसायन विज्ञान के अलफ्रेड पी.स्लोएन प्रोफेसर नियुक्त हुए। वर्ष 1952 से हरगोविंद खुराना ने स्विस मूल की एस्थर एलिजाबेथ सिबलर के साथ विवाहित जीवन व्यतीत किया। डॉ. खुराना के अनुसार एस्थर ने उनके जीवन को उस समय एक अर्थ और उद्देश्य प्रदान किया, जब अपनी मातृभूमि से छह वर्ष के बिछोह के बाद खुराना हर जगह एक परायापन महसूस करने लगे थे और कहीं भी सहज नहीं हो पाते थे। उनकी तीन संतानें हैं—जूलिया एलिजाबेथ, एमिली एन और देव रॉय। इस महान् आनुवंशिकीविद् का 9 नवंबर, 2011 को अमेरिका में मेसाचुएट्स में निधन हो गया। वे 89 वर्ष के थे।

डॉ. खुराना ने 1966 में अमेरिका की नागरिकता ले ली थी। धीरे-धीरे बोलने वाले मितभाषी एवं मृदुभाषी, शरमीले स्वभाव के डॉ. खुराना अपने उद्देश्यपूर्ण

कार्यों में ही अधिकांश समय व्यतीत करते थे। फुरसत के क्षणों में वे संगीत सुनते थे या कहीं घूमने चले जाते थे। जीवन की संध्या में भी वे स्वस्थ और सक्रिय थे। वे प्रतिदिन सुबह बड़ी देर तक टहलते थे। एकांत के क्षणों में वे आगामी अनुसंधान की योजना बनाते थे। वे प्रचार-प्रसार से बहुत दूर रहते थे।

निस्संदेह, डॉ. हरगोविंद खुराना का जीवन पूर्ण रूप से विज्ञान को समर्पित रहा है, जो किसी भी युवा वैज्ञानिक के लिए प्रेरणास्रोत है। उनके शोधकार्य बीसवीं शताब्दी में विज्ञान जगत् के मील के पत्थर कहे जा सकते हैं। जीनोमिक्स, आनुवंशिकी के प्रमुख विषयों संबंधी आधारभूत अनुसंधान के सूत्र कहीं-न-कहीं डॉ. खुराना के शोधपत्रों में मिल जाते हैं। डॉ. खुराना विज्ञान के सदुपयोग पर विशेष बल देते थे। उनका मानना था कि सभ्यता को बचाने हेतु विज्ञान के सदुपयोग पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। जीन से जुड़ी डॉ. खुराना की खोज अब तक जीन शोधकार्यों की महत्त्वपूर्ण कड़ी थी, जो स्पष्ट करती थी कि मानव कोशिका में जीन किस हद तक जीवन को संचालित करती है। डॉ. खुराना और उनके सहयोगियों ने प्रोटीन संश्लेषण की संपूर्ण क्रिया को स्पष्ट किया।

डॉ. खुराना के कार्यों से प्रेरित होकर विस्कांसिन यूनिवर्सिटी के मेडिसिन विभाग के सदस्यों ने 'खुराना स्कॉलर्स प्रोग्राम' की शुरुआत की। इसके अंतर्गत भारतीय संस्थानों और विस्कांसिन यूनिवर्सिटी के छात्रों में शोध का आदान-प्रदान किया जाता है।

डॉ. खुराना ने दृष्टि और प्रकाश के क्षेत्र में भी काम किया। इस नए क्षेत्र में काम करने की प्रेरणा उन्हें प्रथम भारतीय नोबेल पुरस्कार विजेता सी.सी. रमन की पुस्तक पढ़कर मिली। जब वे एक बार भारत आए तो ताजमहल को देखने भी गए। वैज्ञानिक दृष्टि से ताजमहल को देखने के बाद उन्होंने पाया कि चाँदनी रात में ताजमहल के सामने खड़े होकर देखते रहने से एक घंटे बाद आप इसका पूरा आकार साफ-साफ देख सकते हैं। यदि कुछ देर और देखा जाए तो ताजमहल का उतना साफ रूप दिखाई देता है, जितना दिन में सूर्य के प्रकाश में दिखता है।

इसके साथ ही उन्होंने दृष्टि और प्रकाश के क्षेत्र में विधिवत् अनुसंधान-कार्य प्रारंभ कर दिया। प्रोटीन पर प्रकाश का प्रभाव तथा मानव के प्रकाशग्राही कोशों पर प्रभाव के विषयों पर वे शोध करने लगे। वे प्रकाश के रासायनिक विश्लेषण, प्रभाव और दृष्टि पर नई दृष्टि डालना चाहते थे।

डॉ. खुराना द्वारा आनुवंशिकी पर किए गए काम को सफलतापूर्वक आगे भी बढ़ाया जा रहा है। मियामी (फ्लोरिडा) विश्वविद्यालय के आणविक विकास

संस्थान में एक ऐसा पर्यावरण बनाया गया है, जिसमें साधारण जड़ पदार्थ पेचीदा ढंग से समन्वित हो जाते हैं। इससे इन पदार्थों में चेतना की अनेक विशिष्टताएँ भी पैदा हो जाती हैं। इस प्रकार उत्पन्न किए गए कण शिशुकणों को जन्म भी दे सकते हैं और स्वत: अपना पालन करने और विकसित होने में समर्थ हैं।

वैज्ञानिकों का मानना है कि कोषाणु जैसे ये कण पूर्वचेतना का ही रूप हैं, जिनसे आज का जीवन प्रारंभ हुआ होगा। जीवन प्रारंभ करनेवाले ये तत्त्व पर्यावरणात्मक हैं तथा आदिकाल से पृथ्वी पर मौजूद हैं। ये सारे ब्राह्मांड के विभिन्न ग्रहों पर भी सक्रिय हो सकते हैं।

ई. कोलाई नामक जीवाणु मनुष्य व जानवरों की आँतों में जीवित रहता है। डॉ. खुराना और उनके सहयोगियों ने इसके 207 जीन तैयार किए और उन्होंने इन कृत्रिम जीनों को इस जीवाणु में प्रविष्ट कराया। यह प्राकृतिक जीन की तरह ही काम करता है।

डॉ. खुराना को भारत से असीम लगाव था। वे नोबेल पुरस्कार मिलने के बाद 1969 में भारत आए थे। जब दिसंबर 1983 में आनुवंशिकी की 15वीं अंतरराष्ट्रीय कांग्रेस नई दिल्ली में आयोजित हुई तो उसमें भाग लेने के लिए वे फिर भारत आए। भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण की उपाधि से अलंकृत किया और पंजाब विश्वविद्यालय ने उन्हें डॉक्टर ऑफ साइंस की उपाधि से विभूषित किया।

अल्प समय में अजूबा कर सकने वाले डॉ. खुराना के 300 से अधिक शोध-लेख प्रकाशित हो चुके हैं। नोबेल पुरस्कार के अलावा भी उन्हें अनेक पुरस्कार, सम्मान व खिताब मिले। पुरस्कारों का सिलसिला 1958 में मर्क मेडल से प्रारंभ हुआ था, जो कनाडा में मिला था। कनाडा में उन्हें पब्लिक सर्विस स्वर्ण पदक भी मिला। 1967 में उन्हें जर्मन डेनी हेनमन प्रेस पुरस्कार मिला। 1968 में उन्हें जोन्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय द्वारा रेमसेन पुरस्कार भी मिला। 1968 में ही उन्हें नीरेनबर्ग के साथ अल्बर्ट लास्कर पुरस्कार तथा कोलंबिया विश्वविद्यालय द्वारा दिया जानेवाला लुइसा ग्रौस होरविट्ज पुरस्कार भी मिला। 1988 में तत्कालीन राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन ने उन्हें नेशनल मैडल से नवाजा। यह अमेरिका का सर्वोच्च राष्ट्रीय वैज्ञानिक पुरस्कार माना जाता है तथा अब तक पाँच वैज्ञानिक इसे हासिल कर सके थे। 'जीन संरचना और त्वचा के कार्य के विभाजन' के लिए मिले इस पुरस्कार से जीव-विज्ञान और रसायन-विज्ञान के क्षेत्र में उनकी ख्याति और बढ़ गई।

शरीर-क्रियाविज्ञान/आयुर्विज्ञान में विशेष योगदान हेतु सन् 1968 में दिए गए नोबेल पुरस्कार में शामिल थे—डॉ. हरगोविंद खुराना, रोबर्ट डब्ल्यू. हाली और

मार्शल डब्ल्यू. नीरेनबर्ग। डॉ. खुराना यह सम्मान लेने से पहले अमेरिकी नागरिकता स्वीकार कर चुके थे, लेकिन इस महान् उपलब्धि के पीछे उनका भारतीय मस्तिष्क और चेतना ही क्रियाशील थी। इन तीन वैज्ञानिकों को नोबेल पुरस्कार आनुवंशिकी में उनके महत्त्वपूर्ण योगदान के लिए दिया गया था। यह योगदान था 'आनुवंशिक कूट का विश्लेषण और प्रोटीन संश्लेषण में उसके कार्य की व्याख्या'। इस खोज ने आणविक जीव विज्ञान को एक नई दिशा प्रदान की।

नोबेल पुरस्कार वितरण समारोह के मुख्य भाषण में रॉयल केरोलीन इंस्टीट्यूट के प्रो. पी. रिचर्ड, जो शरीर-क्रिया विज्ञान अथवा आयुर्विज्ञान नोबेल समिति के सदस्य थे, ने कहा कि ठीक एक शताब्दी पहले जोहानन एफ. मेसियर ने कोशिका के नाभिक से एक नए प्रकार का यौगिक पृथक् किया, जिसे 'न्यूक्लिइन ' नाम दिया, आज इसे हम 'न्यूक्लिक एसिड' कहते हैं। 'मटर' पर किए गए मेंडल के सरल प्रयोगों ने इस बात की पुष्टि कर दी थी कि हमारी आनुवंशिकी का रहस्य अनेक स्वतंत्र जीन (मेंडल की भाषा में कारकों) में बंद है। मेंडल का कार्य आनुवंशिक विज्ञान की शुरुआत थी। प्रो. रिचर्ड के कथानुसार न्यूक्लिक एसिड और जीन, मूलत: विस्तृत तौर पर दो अलग संकल्पनाएँ हैं, जो साथ मिलकर हॉली, खुराना और नीरेनबर्ग के आनुवंशिक कूट की खोज का आधार बनाती हैं, जिसे जीवन का कूट भी कहा जा सकता है। उन्होंने आगे कहा कि उन्नीसवीं शताब्दी में नोबेल पुरस्कार की स्थापना नहीं हुई थी, अन्यथा मेसियर और मेंडल इस सम्मान से अछूते कदापि नहीं रहते।

हॉली और नीरेनबर्ग के कार्य का उल्लेख करने के साथ-साथ उन्होंने कहा कि आनुवंशिक कूट के अंतिम कार्य को खुराना के प्रयोगों ने ही अंजाम दिया। डॉ. खुराना ने जो पिछले वर्षों में अनेक सुनियोजित पद्धतियाँ ढूँढ़ निकाली थीं, जिसके कारण सुस्पष्ट तौर पर न्यूक्लिक एसिड का निर्माण संभव हो पाया। बड़े अणुओं को उनके निश्चित स्थान पर स्थापित किया गया। खुराना के संश्लिष्ट न्यूक्लिक एसिड आनुवंशिक कूट के अंतिम हल की पूर्व आवश्यकता बने।

आनुवंशिकी के क्षेत्र में डी.एन.ए. की डबल हेलिक्स वाली संरचना वॉटसन और क्रिक ने पहले ही स्पष्ट कर दी थी। यह भी पता चल चुका था कि आनुवंशिकता के अणु डी.एन.ए. में एडिनीन ए, थायमीन टी, गुआनीन जी तथा साइटोसीन सी, नामक रसायन एक विशेष क्रम में स्थित होते हैं। अब जरूरत थी ए.टी.जी. और सी. से बने कूट के सटीक स्वरूप को जानने की और उसकी सही व्याख्या की। आनुवंशिक कूट विभंजन के कार्य को खुराना सहित दो और अमेरिकी वैज्ञानिकों

हॉली और नीरेनबर्ग ने स्वतंत्र रूप से कार्य करते हुए पूरा किया। नीरेनबर्ग ने संश्लिष्ट आर.एन.ए. के प्रयोग से अमीनो एसिड बनाया, सभी वास्तविक अमीनो एसिड हेतु कूटों की खोज की, कोडोन व निरर्थक कोडोन के तथ्य को स्पष्ट किया और आनुवंशिक कूट के अनुवाद के लिए कोशिका की कार्य-प्रणाली को प्रदर्शित किया। हॉली यीस्ट पर अपने लंबे प्रयोगों के पश्चात् टी-आर.एन.ए. के संबंध में विस्तृत जानकारी देने में सफल हुए। जबकि खुराना ने नीरेनबर्ग के निष्कर्षों की पुष्टि अपने प्रयोगों द्वारा की। उनके द्वारा ईजाद की गई सुनियोजित विधियों से न्यूक्लिक एसिड के संश्लेषण के मार्ग निर्धारित हुए। उन्होंने बताया कि प्रधान संयोजन तीन न्यूक्लिक एसिड, यानी कोडोन के अलग-अलग समूहों में आते हैं। इनमें से कुछ समूह प्रोटीन उत्पादन आरंभ करने या बंद करने के लिए कोशिकाओं को प्रेरित करते हैं एवं कुछ अमीनो एसिड एक से अधिक संयोजनों द्वारा कूटबद्ध भी होते हैं। खुराना द्वारा निर्मित न्यूक्लिक एसिड आनुवंशिक कूट के शेष हल में विशेष महत्त्व रखते हैं। इस प्रकार तीनों वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत किए गए सबूतों के आधार पर आनुवंशिक कूट और उसके कार्य का विश्लेषण सही तरीके से संभव हो पाया और हमारी वंशावली का रहस्य भी स्पष्ट हो पाया। इन्हीं प्रयासों ने आगे चलकर मानव जीनोम परियोजना की नींव रखी।

सन् 1968 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित होने के बाद 1970 में डॉ. खुराना मेसाचुएट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी से जुड़ गए, जहाँ वे जीव-विज्ञान और रसायन-शास्त्र के प्रोफेसर के पद पर आसीन थे। अब तक उनकी ख्याति दुनिया भर में फैल चुकी थी। खुराना और उनके सहयोगी शोधकर्ताओं ने प्रयोगशाला में कृत्रिम जीन बनाने का बीड़ा उठाया। उन्होंने यीस्ट कोशिका के जीन को टुकड़ों-टुकड़ों में बनाया और जब इस कृत्रिम जीन को जीवाणु के शरीर में प्रवेश कराया गया तो उसका व्यवहार सामान्य प्राकृतिक जीन की भाँति ही पाया गया। 1976 में खुराना और उनके दल ने कृत्रिम जीन का निर्माण कर आधुनिक युग की आनुवंशिक इंजीनियरी के लिए पथ प्रशस्त कर दिया।

प्रोफेसर खुराना को नोबेल पुरस्कार के अतिरिक्त अनेक पुरस्कारों, पदकों और मानव उपाधियों से सम्मानित किया गया है। इनमें प्रमुख हैं : लास्कर और अमेरिकी केमिकल सोसाइटी का पदक, अमेरिकी राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी की सदस्यता, चर्चित कॉलेज, कैंब्रिज (इंग्लैंड) की मानव सदस्यता, पद्म विभूषण, रॉकफेलर, स्टैनफोर्ड आदि कई विश्वविद्यालयों की प्रोफेसरी, शिकागो लिवरपूल, पंजाब, दिल्ली, कोलकाता आदि कई विश्वविद्यालयों की प्रोफेसरी, शिकागो, लिवरपुल,

पंजाब, दिल्ली, कोलकाता आदि कई विश्वविद्यालयों की मानव डॉक्टरेट डिग्री आदि। अपने लंबे और ख्यातिलब्ध कॅरियर के दौरान उन्होंने स्वतंत्र रूप से अथवा अपने सहयोगियों के साथ 500 से भी अधिक वैज्ञानिक शोधपत्रों को प्रतिष्ठित शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित किया। वे शोध कार्यों के प्रति आजीवन समर्पित रहे। समय बरबाद करना उन्हें कभी अच्छा नहीं लगा। एक बार तो 12 वर्षों तक बिना लंबी छुट्टी लिये वे कार्यरत रहे।

पुरस्कार एवं सम्मान

1958: मेर्च अवार्ड ऑफ केमिकल इंस्टीट्यूट ऑफ कनाडा।

1960: गोल्ड मेडल ऑफ द प्रोफेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ केनेडियन पब्लिक सर्विस।

1967: डानी डेनीमेन पुरस्कार।

1968: नोबेल पुरस्कार, लश्कर फाउंडेशन अवार्ड, लॉसिया ग्रोस होरूविज पुरस्कार, वाट्मुल्ल फाउंडेशन, होनोलूलू, हवाई।

1971: अमेरिकन एकेडमी ऑफ एचिवमेंट अवार्ड, फिलाडेल्फिया, पेनसिलवेनिया।

1972: पद्मविभूषण, जे.सी.बोस पदक, बोस इंस्टीट्यूट, कोलकाता।

1973-74: विल्लार्ड गिब्स् मेडल ऑफ शिकागो सेशन ऑफ अमेरिकन केमिकल सोसाइटी।

1987: अमेरिकन प्रेसीडेंशियल मेडल।

डॉ. खुराना ने न सिर्फ व्यक्तिगत रूप से उत्कृष्ट कार्य किया, बल्कि वैज्ञानिक दल के सदस्य के रूप में वैज्ञानिक गतिविधियों में भी भाग लिया। उन्होंने विभिन्न देशों—जापान, जर्मनी, नेपाल, ब्रिटेन, बेल्जियम, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड आदि के वैज्ञानिकों के साथ काम किया। डॉ. खुराना के 300 से अधिक शोध-पत्र प्रकाशित हो चुके हैं। डॉ. खुराना द्वारा आनुवंशिकी पर किए गए काम को आगे बढ़ाने की आवश्यकता है।

□

3

डॉ. खुराना का अनुसंधान

वर्ष 1960 में यह स्पष्ट हुआ कि प्रत्येक जीन से संबंधित डी.एन.ए. खंड पहले मैसेंजर आर.एन.ए. अणु में कॉपी होता है, जिसका बेस-अनुक्रम अमीनो एसिड-बिल्डिंग-ब्लॉक से विशिष्ट प्रोटीन के संश्लेषण को निर्देशित करता है। मार्शल नीरेनबर्ग, हरगोविंद खुराना एवं हॉली ने विशिष्ट अमीनो एसिड के कोडोन को बनानेवाले न्यूक्लियोटाइडो के ट्रिपलेट के आनुवंशिक कोड को व्याख्यायित करने में उल्लेखनीय योगदान दिया है।

अगला कदम, जो उस समय इतना अधिक आसान नहीं था, वह था, जीन का पृथक्करण। प्रत्येक जीन को जैव-रासायनिक तरीके से शुरू करना व्यर्थ था, क्योंकि रासायनिक रूप से वे आपस में समान थे एवं डी.एन.ए. बेसों की एक संरचना मात्र थे। वर्ष 1969 में जीवाणु क्लोनिंग ने प्राचीन जैव रासायनिक कमियों को दूर कर दिया। बड़े जीनोमों को छोटे-छोटे खंडों में काटकर प्रत्येक को विशिष्ट वेक्टर अणु से जोड़कर जीवाणु कोशिका में प्रवेशित कराया गया। इस प्रक्रिया से बनी जीवाणु कोशिका की वृद्धि के कारण कृत्रिम डी.एन.ए. की पुनरूत्पत्ति संभव हो सकी।

इसके एक वर्ष के पश्चात् डॉ. हरगोविंद खुराना एवं उनके दल ने जीन को संयोजित किया। यह 'रासायनिक आनुवंशिकी' की शुरुआत मानी जा सकती है। इसके कुछ वर्ष पश्चात् हर्बर्ट बावर के शोध समूह द्वारा खोजे गए अवरोधी इंजाइमों का उपयोग करते हुए पॉल बर्ग एवं उनके सहयोगियों ने प्रथम पुनर्संयोजित डी.एन.ए. अणु का निर्माण किया।

न्यूक्लिक एसिड और जीन मूलत: विस्तृत तौर पर दो अलग संकल्पनाएँ हैं, जो साथ मिलकर हॉली, खुराना और नीरेनबर्ग के आनुवंशिक कोड संबंधी खोज का आधार प्रस्तुत करती हैं, आनुवंशिकों कोड विभंजन के कार्य को खुराना सहित

दो और अमेरिकी वैज्ञानिकों (हॉली और नीरेनबर्ग) ने स्वतंत्र रूप से कार्य करते हुए पूरा किया।

जेनेटिक कोड (आनुवंशिक कूट) का हल

एक बार डी.एन.ए. के संघटन और इकाई को स्पष्ट कर देने के बाद अगला कदम यह समझना था कि डी.एन.ए. अणु धारक संबंधी सूचना किस प्रकार अमीनो ऐसिड और प्रोटीन के निर्माण के लिए अनुदेशों में परिणत हो जाती है। वह रचनातंत्र, जिसके द्वारा कोई विशिष्ट न्यूक्लियोटाइड अनुक्रम संबंधित प्रोटीन के प्राथमिक अमीनो एसिड अनुक्रम में ठीक-ठीक परिवर्तित हो जाता है, उसे जेनेटिक कोड कहते हैं। साठ के दशक में इस कोड को तब ज्ञात किया गया था, जब कुछ प्रोटीन अनुक्रमों की जानकारी हो चुकी थी, लेकिन तब तक किसी भी प्रकार के संदेशवाहक आर.एन.ए. (M- R.N.A.) का शोधन या किसी भी प्रकार के डी.एन.ए. अनुक्रम का निर्धारण नहीं हुआ था। यह ज्ञात था कि डी.एन.ए. में केवल चार संभावित क्षारक होते हैं, लेकिन प्रोटीन में 20 संभावित अमीनो एसिड होते हैं। इसलिए न्यूक्लियोटाइड अनुक्रम को एक समय में 3 निकटस्थ क्षारकों के समूह के रूप में पढ़ा जाता है, जिसे 'कोडोन' कहते हैं। कुल 4^3=64 संभावित कोडोन होते हैं, जिससे यह परिणाम निकलता है कि प्रत्येक अमीनो एसिड में एक से अधिक कोडोन होते हैं। इसे अपविकास (Degeneracy) कहते हैं। जेनेटिक कोड को खोलने का रहस्य इस खोज में निहित था कि कोड एक समय में तीन क्षारकों को पढ़ता है और डी.एन.ए. को सीधे नहीं पढ़ा जा सकता, बल्कि प्रतिकृति (ट्रांसक्रिप्शन) नामक एक मध्यवर्ती चरण भी होता है। प्रतिकृति प्रक्रिया के दौरान डी.एन.ए. कोड को पढ़ा जाता है और आर.एन.ए. की एक प्रति निर्मित होती है। आर.एन.ए., डी.एन.ए. की किसी एक लड़ी के समान होता है, लेकिन आर.एन.ए. में शर्करा कुछ अलग होती है। राइबोस में एक अतिरिक्त हाइड्रोक्सिल होता है और डी.एन.ए. में उपस्थित थाइमिन की जगह आर.एन.ए. में यूरेसिल ले लेता है। दो अमेरिकी वैज्ञानिकों, मैथी और नीरेनबर्ग ने कृत्रिम आर.एन.ए., जैसे पोलियुरिहाइलिक एसिड (UUUUUUUUU), जिसे रेडियोएक्टिव प्रक्रिया से वर्गीकृत किया जा सकता है, बनाने के लिए कोशिका मुक्त प्रोटीन संश्लेषण प्रणाली और एक एंजाइम का प्रयोग किया। इनको इनके कोशिका मुक्त अर्क से एक लड़ी के रूप में जोड़ा गया और यह जाँच की गई कि रेडियोएक्टिव प्रक्रिया के द्वारा वर्गीकृत कौन-सा अमीनो एसिड शृंखला में बदलता है। उन्होंने केवल

फिनाइलएलानाइन (एक अमीनो एसिड) काम का पाया। इसलिए उन्होंने बताया कि UUU दरअसल Phe के बराबर होते हैं (UUU=Phe)। इसी प्रकार CCC, GGG और AAA के लिए भी अमीनो एसिड का निर्धारण हो सका, लेकिन दूसरे कोडोन अज्ञात बने रहे। बाद में लेडर और नीरेनबर्ग ने दिखाया कि जब रिबोसोम को तीन न्यूक्लियोटाइड लंबे आर.एन.ए. (एक त्रयी, जिसे उस समय आसानी से कार्बनिक रसायन विज्ञान की सहायता से संश्लेषित किया जा सकता था) को उपलब्ध कराया जाता है, तो इसका परिणाम एक अमीनो एसिड का संश्लेषण होता है। त्रयी विश्लेषण के उपयोग द्वारा वे यह दिखाने में समर्थ हुए कि कौन सा विशेष अमीनो एसिड किसी खास कोड के द्वारा उत्पन्न किया जाता है। इस तरीके से अन्य कई कोडोन की पहचान करने में सहायता मिली, लेकिन 64 में से 17 कोडोन में यह काम नहीं आया।

हरगोविंद खुराना ने साधारण रासायनिक प्रतिक्रिया की सहायता से इस पहेली को हल कर दिखाया। इस दौरान वे डी.एन.ए. को संश्लेषित करने के लिए कार्बनिक रासायनिक तकनीक का विकास कर रहे थे। अब यह करने के लिए हमारे पास ऐसे यंत्र हैं, जो अधिकांशत: डॉ. खुराना द्वारा निष्पादित तकनीकों पर आधारित हैं। उस समय वे प्रत्येक लड़ी में 6–12 क्षारकों के अनुक्रम में लघु डी.एन.ए. का निर्माण ही कर सकते थे, लेकिन यह प्रोटीन संश्लेषित अर्क के परीक्षण के लिए काफी था। खुराना ने इस लघु डी.एन.ए. शृंखलाओं का उपयोग आर.एन.ए. बहुलकों के लिए साँचों के रूप में किया और GUGGUGGUGU जैसे विशिष्ट अणुओं की उत्पत्ति की। इस संदेशवाहक आर.एन.ए. (M-R.N.A.) का उपयोग कोशिका मुक्त प्रोटीन संश्लेषण प्रतिक्रिया में होने के फलस्वरूप अमीनो एसिड शृंखला का निर्माण होता है, जिसकी पहचान CYS-VAL- CYS-VAL के रूप में की जाती है। संदेशवाहक आर.एन.ए. के एक भाग जैसे GUGGUGGUGU में दो एकांतर कोडोन होते हैं। नीरेनबर्ग द्वारा पहले के प्रकाशित परिणामों से खुराना को ज्ञात था कि CYS के लिए UGU कोड बनता है, अत: उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि VAL (वैलाइन अमीनो एसिड) के लिए निश्चित ही GUG कोड होना चाहिए। अतिरिक्त संदेशवाहक आर.एन.ए. के निर्माण के द्वारा डॉ. खुराना ने संपूर्ण जेनेटिक कोड और जेनेटिक कोड के अपविकास के लिए जिम्मेदार कारणों की व्याख्या संबंधी कार्य को सिद्ध कर दिखाया। डॉ. खुराना ने दर्शाया कि कोड में कुछ त्रयी 'विरामचिह्न' का काम करते हैं। अब हम जानते हें कि कुछ त्रयी कोड कोडोन के प्रस्थान और उसे रोकने का काम करते हैं। यह एक ऐसी प्रमुख उपलब्धि थी, जिससे आणविक जीव–

विज्ञान और चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में भविष्य में होनेवाले विकास का रास्ता खुला। जैसाकि वर्ष 1958 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित होने वाले जार्ज बिडेल ने लिखा है, 'डी.एन.ए. कोड के गूढ़ अर्थ को पढ़ लिये जाने से एक ऐसी भाषा पर हमारा अधिकार उद्घाटित हुआ है, जो चित्रलिपि से भी कहीं पुरानी है। एक भाषा जो स्वयं जीवन जितनी पुरानी है, एक भाषा, जो सर्वाधिक सजीव भाषा है, अब यद्यपि इसके अक्षर अदृश्य हैं और इसके शब्द हमारे शरीरों की कोशिकाओं में कहीं गहरे दफन हैं।''

जीन प्रकटीकरण

जेनेटिक कोड के स्पष्ट होने के बाद आणविक जीव वैज्ञानिकों का ध्यान प्रतिकृति और प्रतिलेखन के नियंत्रण, जीन प्रकटीकरण के विनियमन, प्रोटीन और न्यूक्लिक एसिड के अनुक्रम पर केंद्रित हो गया।

जीव वैज्ञानिक तौर पर विशिष्ट दोहरी लड़ीवाले डी.एन.ए. के संश्लेषण की विधियों के विकास को आगे की प्रगति के लिए केंद्रीय रासायनिक समस्या के रूप में देखा गया। इसमें एक रासायनिक संश्लेषण को दूसरी संकल्पना से मिलकर रासायनिक तौर पर संश्लेषित लघु शृंखलाओं को जोड़ने की प्रक्रिया को पूरा करना था। खुराना ने एक बार फिर मार्गदर्शन उपलब्ध कराया और जीव वैज्ञानिक तौर पर सक्रिय जीन के संश्लेषण की प्रक्रिया का विकास किया। इस उद्देश्य के लिए विकसित की गई योजना के तीन चरण थे—पहले चरण में 10 से 12 न्यूक्लियोटाइडस की लंबाई वाली शृंखला के लघु पॉलीन्यूक्लियोटाइड के रासायनिक संश्लेषण की आवश्यकता होती है, ये दोनों समूची लड़ों के अनुरूप होंगे। रेडियोएक्टिव तौर पर वर्गीकृत एडिनोसिन ट्रॉइफास्फेट (ATP) और फेलिन्यूक्लियोटाइड किनेस के उपयोग द्वारा 5-OH सिरे को फॉस्फरीकृत किया जाता है। तीसरे चरण में, एक ही समय में इनमें से अनेक का उपयोग कर सभी भागों को एकदम सही-सही और विशिष्ट तौर पर जोड़ा जाता है। अगला महत्त्वपूर्ण चरण संकेतों को एक अनुक्रम (आरंभ, प्रवर्तन और संकेतों का समापन) देना था। डी.एन.ए. अनुक्रम को सरलीकृत कर आगे के विकास में योगदान देनेवाले डॉ. सेंगर और गिल्बर्ट के विचार में उस समय प्रयुक्त होनेवाली विधि अब प्रचलन में नहीं रही है। 1970 में अपनी योजना का उपयोग करते हुए खुराना और उनके दल ने टायरोसिन T-R.N.A. जीन के संपूर्ण विश्लेषण को प्रस्तुत किया। यहाँ यह भी जोड़ देना चाहिए कि प्रदर्शित कृत्रिम जीन पूरी तरह क्रियाशील था।

उनकी सर्वप्रथम कृत्रिम जीन की रिपोर्ट के बाद, भारतीय मूल के इस प्रतिभाशाली व्यक्ति ने भविष्यवाणी की, 'अगले वर्षों में जीन संश्लेषित होने जा रहे हैं। अगला चरण संभवत: जीन की सूचना सामग्री को काम में लाना सीखना और आनुवंशिक प्रणाली में इनको भीतर डालना और मिटाना सीखना होगा। दूरस्थ भविष्य में जब यह सच होने की स्थिति आएगी, हम लोगों में शरीर रचना को बदलने का मोह बहुत तीव्र होगा। हम उम्मीद कर सकते हैं कि आणविक जीव-विज्ञान और आणविक अभियांत्रिकी (मॉलिक्यूलर इंजीनियरिंग) समाज की बेहतरी के लिए होंगे।' उनका स्वप्न सच हुआ है, जैसाकि उनकी प्रयोगशाला में विकसित प्रक्रियाओं ने बहुलक श्रृंखला प्रतिक्रिया तकनीक (पोलिमेरिज चेन रिएक्शन टेक्निक-PCRT) के विकास और आणविक जीव विज्ञान व चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में क्रांति का रास्ता दिखाया है। डॉ. खुराना द्वारा हासिल की गई इन उपलब्धियों के साथ ही आणविक जीव-विज्ञान व आनुवंशिक अभियांत्रिकी के क्षेत्र में बहुत तेजी से प्रगति हुई है। क्लोनिंग और जीन की अभिव्यक्ति (Gene Expression) के साथ लगभग किसी भी प्रकार के जीन की पहचान संभव है एवं बहुत बड़ी संख्या में आनुवंशिक रोगों को पैदा करनेवाले जीनों की पहचान की गई है।

दृष्टि एवं अंधेपन से संबंधित डॉ. खुराना का शोधकार्य

20 वर्ष से भी अधिक समय से डॉ. खुराना और उनका दल मनुष्य की दृष्टि और अंधेपन से संबंधित शोध के विषय पर काम कर रहे हैं और उन्होंने कुछ आश्चर्यजनक खोज भी की हैं।

हमारी आँख में स्थित प्रकाशग्राही (फोटोरिसेप्टर) में दृष्टि रंजक होता है, जो झिल्लीदार बिंब (डिस्क) में स्थित होता है। अपने इस गुण के कारण ही वह प्रकाशग्राही रोशनी को पकड़ पाता है। दृष्टि रंजक ऑप्सिन नामक एक प्रोटीन और दृष्टिपटलीय (रेटिनल) कहे जानेवाले विटामिन ए से उत्पन्न क्रोमोफोर से बना होता है। हमारे आहार में मौजूद बीटा-कैरोटिन से विटामिन ए का निर्माण होता है। और प्रकाशग्राही कोशिका में ऑप्सिन प्रोटीन निर्मित होता है ऑप्सिन और क्रोमोफार आपस में जुड़े रहते हैं तथा बाहरी भाग की डिस्क में पड़े रहते हैं। रोडोप्सिन का प्रत्येक अणु लिपिड की दोहरी परत में स्थित क्रोमोफोर (11-सिस रेटिनल) के आस-पास मौजूद सात पराझिल्लीय हिस्सों से बना होता है। बिंब के प्रत्येक बाहरी भाग में बहुत से (हजारों) दृष्टि रंजक अणु होते हैं। प्रकाश के फोटोन को ग्रहण करने पर दृष्टिपटलीय 11 जिस प्रकार से एक ऑल-ट्रांस प्रकार में समावयीकृत

होता है, जो अणु में रचनागत परिवर्तन की शुरुआत करता है, जिसके कारण संवेदीकरण और शमन (असंवेदीकरण) की प्रक्रिया होती है। फोटोन को ग्राह्य करने से शुरू होनेवाली प्रक्रियाओं की एक जटिल शृंखला के माध्यम से संकेत मस्तिष्क में पहुँचता है और हम देख पाने में समर्थ होते हैं।

कुछ लोगों में फोटोन ग्रहण करने की प्रक्रिया और इसके परिणामस्वरूप इच्छित स्थान तक संकेत न पहुँच पाने के कारण अंधेपन की बीमारी उत्पन्न होती है। वर्ष 1996 में डॉ. खुराना और उनके दल ने दिखाया कि अँधेपन के मामले में होनेवाली रेटिनाइटिस पिगमेंटोसा नामक बीमारी में उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) की एक शृंखला के कारण ही दोष उत्पन्न होता है। विश्व भर में आज लगभग डेढ़ करोड़ लोग रेटिनाइटिस पिगमेंटोसा से पीड़ित हैं और साथ ही यह बीमारिी वंशानुगत भी है। उनके दल के वैज्ञानिकों ने दर्शाया कि उत्परिवर्तन के कारण अव्यवस्थित ऑप्सिन का मिश्रण निर्मित होता है। यह दर्शाया गया कि अपेक्षाकृत कम सघन और सामान्य प्रोटीन की तुलना में अधिक मुक्त होने के कारण अव्यवस्थित ऑप्सिन विटामिन ए के एक प्रकार रेटिनल को बाँधे रखने में असमर्थ और अक्रियाशील होता है। डॉ. खुराना की प्रयोगशाला में हुए अनुसंधान कार्यों से चिकित्सकों को यह समझने में सहायता मिली कि तुलनात्मक तौर पर आस-पास की उम्र के रोगियों के जीन में एक ही प्रकार की खराबी होने के बावजूद उनमें बीमारी की तीव्रता का स्तर अलग-अलग क्यों होता है। व्यवस्थित और अव्यवस्थित ऑप्सिन के मिश्रण की खोज से यह पता चलता है कि अलग-अलग आँखों में प्रकाशग्राही के ठीक से कार्य न करने की मात्रा भी अलग-अलग होती है। संभवत: इन अध्ययनों से निकट भविष्य में अंधेपन की चिकित्सा में प्रगति होगी।

कैलिफोर्निया स्थित स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के आनुवंशिकी के सुप्रसिद्ध विद्वान् जौशुआ लैंडरबर्ग ने 1959 में नोबेल पुरस्कार स्वीकार करते हुए एक बड़ी महत्त्वपूर्ण भविष्यवाणी की थी। उन्होंने कहा था कि शीघ्र ही वर्तमान कार्बनिक रसायन के ज्ञान के अंतर्गत ऐसे कृत्रिम अणु का निर्माण संभव होगा, जिसमें जीवन के मूलभूत गुण पाए जाएँगे। इस निडर घोषणा द्वारा लैडरबर्ग ने आणविक जीवशास्त्र (मॉलीक्यूलर बॉयलॉजी) के क्षेत्र में अगली दशाब्दी में होनेवाले अनुसंधान का एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य निर्धारित कर दिया।

यह बात उस समय की है जब जीवशास्त्री अत्यंत आत्मविश्वास के साथ जीवन की सबसे आधारभूत समस्या आनुवंशिकी सूचना का एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी में संक्रमण का समाधान आश्चर्यजनक रूप में तेजी से कर रहे थे। यह

पूर्णरूपेण सिद्ध हो चुका था कि वंशानुगत गुणों का एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी में संक्रमण डीऑक्सीराइबोन्यूक्लिक एसिड (डी.एन.ए.) नामक एक रसायन द्वारा होता है। किसी भी वंश या जाति के भिन्न-भिन्न लक्षणों को निर्धारित करनेवाली आनुवंशिक सूचना भिन्न-भिन्न इकाइयों में गर्भित रहती है। इन्हीं इकाइयों को आज 'जीन' (वंशाणु) के नाम से पुकारते हैं। आज यह सर्वविदित है कि रासायनिक दृष्टि से जीन और कुछ नहीं, बल्कि डी.एन.ए. ही है।

डी.एन.ए. में सैकड़ों न्यूक्लियोटाइड नामक रासायनिक पदार्थ एक के बाद एक, सीधी कतार में संलग्न होते हैं। ये न्यूक्लियोटाइड केवल चार प्रकार के होते हैं, जो किसी भी क्रम में जोड़े जा सकते हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न शारीरिक लक्षणों को निर्धारित करनेवाले जीन इन्हीं चार न्यूक्लियोटाइडों को भिन्न-भिन्न क्रमों में जोड़ देने से बनते हैं। अत: यह स्पष्ट है कि यदि आपको किसी भी जीन का न्यूक्लियोटाइड क्रम पता हो तो सैद्धांतिक रूप से इस जीन का निर्माण इन चार न्यूक्लियोटाइडों को इसी क्रम में जोड़ देने से संभव हो सकेगा। लैंडरबर्ग की इस घोषणा के कई साल पहले से ही डॉ. हरगोविंद खुराना ने डी.एन.ए. का रासायनिक संश्लेषण करने का प्रयास आरंभ कर दिया था। डॉ. खुराना और उनके सहयोगियों ने 1960-65 के बीच चार न्यूक्लियोटाइडों को परस्पर क्रमबद्ध कर देने के लिए विलक्षण रासायनिक विधियों का आविष्कार किया। इस आविष्कार से डॉ. खुराना के हाथों में अभूतपूर्व व चमत्कारिक शक्ति आ गई। अब उन्होंने चारों न्यूक्लियोटाइडों को मनचाहे क्रमों में संलग्न करके भिन्न-भिन्न न्यूक्लियोटाइड-क्रम वाले डी.एन.ए. अणुओं का परखनली में संश्लेषक नामक एंजाइम की सहायता से रासायनिक विधियों द्वारा बनाए गए प्रत्येक डी.एन.ए. अणु की कई प्रतिलिपियाँ तैयार कीं। इन्हीं डी.एन.ए. अणुओं के आधार पर उन्होंने आनुवंशिक कूट जैसी आधारभूत और चुनौतीपूर्ण समस्या का मौलिक विधियों द्वारा समाधान किया। इस सफलता के कारण ही उन्हें नोबेल समिति ने 1968 में मार्शल नीरेनबर्ग और रॉबर्ट हॉली के साथ नोबेल पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया।

न्यूक्लियोटाइडों को पूर्व निश्चित क्रमों में संलग्न करने की विधियों का आविष्कार करते ही डॉ. खुराना की कल्पना शक्ति ऊँची-ऊँची उड़ान भरने लगी। क्या इन विधियों द्वारा प्राकृतिक जीन का निर्माण परखनली में संभव न होगा? 1966 में दिए गए हार्वे व्याख्यान में उन्होंने घोषणा की कि आगामी दशाब्दी में होनेवाले शोधकार्य का एक आवश्यक लक्ष्य लंबे-लंबे डी.एन.ए. अणुओं-अर्थात् जीनों का निर्माण होना चाहिए। उन्होंने यह भी स्पष्ट रूप से कहा कि इस कार्य को संपन्न

करने के लिए रासायनिक विधियों के साथ-साथ एंजाइमों का प्रयोग भी आवश्यक होगा और इस संश्लेषण प्रणाली की क्षमता का विकास हमें तब तक करना होगा, जब तक कम-से-कम छोटे जीनों का निर्माण प्रयोगशाला में संभव न हो जाए। 1966 में घोषित इसी मार्ग पर चलकर डॉ. खुराना और उनके सहयोगी जीन का कृत्रिम संश्लेषण करने में सफल हुए।

डॉ. खुराना ने जिस जीन को संश्लेषित करने के लिए चुना, उसका कार्य कोशों में पाए जानेवाले एलनीन वाहक राइबोन्यूक्लियक एसिड (एलनीन''ट्रांसफर आर.एन.ए. या एलनीन वाहक आर.एन.ए.) नामक एक जीव रसायन का निर्माण करना है। एलनीन वाहक आर.एन.ए. के जीन में 77 न्यूक्लियोटाइडों का क्रम होता है, जो पहले से ही ज्ञात था। खुराना ने इन 77 न्यूक्लियोटाइडों के क्रम को छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित किया और प्रत्येक टुकड़े को अलग-अलग कृत्रिम विधियों द्वारा बनाया। फिर इन टुकड़ों को सूक्ष्मजीवियों में पाए जानेवाले डी.एन.ए., संयोजक नामक एंजाइम की मदद से परस्पर गठित कर दिया।

जीन के रासायनिक संश्लेषण का सबसे अधिक प्रभाव भविष्य की चिकित्सा प्रणाली पर पड़ेगा। इस नवीन तकनीक ने खराब जीनों की मरम्मत और अन्य प्रकार के आनुवंशिक परिवर्तनों की संभावना को यथार्थ बना दिया है। जीनों में गड़बड़ी के कारण उत्पन्न भिन्न-भिन्न शारीरिक और मानसिक आनुवंशिक रोगों का इलाज भविष्य में कृत्रिम जीनों को कोशों के अंदर डालकर हो सकेगा। वह दिन दूर नहीं है, जब वैज्ञानिक इंसुलिन का निर्माण करनेवाले जीन को परखनली में संश्लेषित कर उसे मधुमेह के मरीजों के शरीरों में प्रविष्ट कराने का प्रयास करेंगे। विषाणुओं (वायरस) के उपयोग से डी.एन.ए. को कोशों में प्रविष्ट कराने की चेष्टा तो अभी से ही आरंभ हो चुकी है। कृत्रिम जीनों को हमारे क्रोमोसोमों के साथ स्थायी रूप से संयुक्त कर देने की तकनीक का विकास आगामी दशाब्दी में निस्संदेह किया जाएगा।

दुर्भाग्यवश, अन्य महान् वैज्ञानिक आविष्कारों के समान डॉ. खुराना की सफलता के परिणाम भी मानव जाति के लिए भयंकर सिद्ध हो सकते हैं। आनुवंशिक रोगों का इलाज करने की दृष्टि से जीनों की मरम्मत करने के प्रयास का हम सब बेझिझक स्वागत करेंगे। परंतु आजकल कई लोग कृत्रिम जीनों द्वारा मानव के अन्य शारीरिक व मानसिक लक्षणों में आनुवंशिक परिवर्तन लाने की चर्चा कर रहे हैं। यथेष्ठ ज्ञान के अभाव में शरीर की भिन्न-भिन्न क्रियाओं के आवश्यक संतुलन को इस प्रकार के अंधाधुंध हस्तक्षेप से बिगाड़ना आसान होगा। कई पश्चिमी विद्वान् तो यह भी सुझाव दे रहे हैं कि कृत्रिम जीनों की मदद से हमें केवल पूर्वनिर्धारित लक्षणों

वाली संतान पैदा करने की अनुमति देनी चाहिए। उनके अनुसार प्रत्येक नवजात शिशु में सामाजिक आवश्यकतानुसार ऐसे लक्षण प्रविष्ट किए जाएँ, जिससे वह कोई पूर्व निश्चित काम करने में अत्यंत दक्ष हो जाए। यदि इन सुझावों को स्वीकार कर लिया गया तो आनेवाले युग में आनुवंशिक वर्णाश्रम-प्रणाली प्रचलित हो जाएगी। इस प्रणाली की दासता से स्वतंत्रता पाना कभी संभव न होगा। चूँकि इस नए वर्णाश्रम का आधार हमारे कोशों में संलग्न आनुवंशिक सूचना होगी। यदि हम इस संभावना की ओर सजग न हुए तो कल के तानाशाह सारी मानवजाति के आनुवंशिक गुणों में योजनानुसार परिवर्तन लाकर हमें जिस दिशा में चाहें, ले जा सकेंगे।

वैसे तो डॉ. खुराना ने 1960 में ही यीस्ट के एक जीन का निर्माण कर लिया था, जब वे विस्कांसिन विश्वविद्यालय, मेडिसन स्थित एंजाइम शोध संस्थान के संयुक्त निदेशक थे, मगर तब उस जीन के जैवरसायन नियंत्रण की जानकारी सर्वथा अनुपलब्ध थी। 1973 में जीन के संरचनात्मक भाग का संश्लेषण कर वे एक कदम और आगे बढ़े। यह जीन, टायरोसीन ट्रांसफर आर.एन.ए. बनाता था। जो नया जीन उन्होंने बनाया, उसमें जीन के क्रिया-कलाप का 'प्रारंभ' और 'अंत' करनेवाले सिग्नल भी हैं, जो प्रकृति में पाए जानेवाले जीन की विशेषता हैं। 1970 में ही डॉ. हरगोविंद खुराना, मेसाचुएट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी में जैविकी और रसायनशास्त्र के अल्फ्रेड पी. स्लोअन प्रोफेसर बनकर आए।

इन नवनिर्मित जीन की विशेषता है कि यह परखनली के अलावा बैक्टीरिया में भी सही-सलामत काम करता है। खुराना के अनुसार 'नियंत्रित एवं सिलसिलेवार अध्ययन के लिए कि किस तरह जीन की संरचना उसके कार्यकलापों को प्रभावित करती है, अब रसायनशास्त्री विधियों के अनुसार संश्लेषित जीन उपलब्ध है।'

खुराना-निर्मित जीन ई.कोलाइ नामक बैक्टीरिया के लिए है। टायरोसीन ट्रांसफर आर.एन.ए. नामक इस जीन पर काम करना थोड़ा आसान भी था। कैंब्रिज विश्वविद्यालय, इंग्लैंड के वैज्ञानिकों के एक दल ने उक्त जीन के अनुक्रम को निर्धारित कर उस पर काफी काम किया है। ये कार्य खुराना के दल के लिए आधारभूत साबित हुए। इसी जीन के संश्लेषण का चयन करने में एक और महत्त्वपूर्ण घटना का योगदान रहा। ई.कोलाइ के अधिकतर जीन सिर्फ प्रोटीन संश्लेषण के कार्य में लगे रहते हैं। कभी-कभी उत्परिवर्तन (म्युटेशन) के कारण किसी जीन से 'अंत: सिग्नल' चालू हो जाते हैं, जिनके चलते सामान्य की अपेक्षा छोटे और बेकाम प्रोटीन बनने लगता है। वैज्ञानिकों ने पाया है कि इस उत्परिवर्तन को ई.कोलाइ के दूसरे जीन में उत्परिवर्तन लाकर दबाया जा सकते हैं। अंग्रेज

वैज्ञानिकों ने पाया कि यह दूसरा उत्परिवर्तन टायरोसीन ट्रांसफर आर.एन.ए. के जीन के अंदर होता था। इसीलिए खुराना ने जिस जीन का संश्लेषण किया, उसे 'टायरोसीन सप्रेशन ट्रांसफर आर.एन.ए.' जीन भी कहा जाता है।

वस्तुत: यह जीन 'अंत: सिग्नल' को खत्म कर टायरोसीन नामक अमीनो अम्ल को चालू कर देता है। परिणामस्वरूप सामान्य लंबाई का प्रोटीन बनने लगता है। अधिकतर प्रयोगों में पाया गया है कि यह सक्रिय प्रोटीन होता है।

कई चरणों में जीन का निर्माण

खुराना के दल ने सबसे पहले 85 इकाइयों का टायरोसीन ट्रांसफर आर.एन.ए. जीन बनाना शुरू किया था, जो उनके विचार से संपूर्ण ट्रांसफर आर.एन.ए. के लिए संहिता बनाता था, मगर 1970 में कैंब्रिज के डॉ. सिडनी अल्टमैन और जॉन स्मिथ ने पाया कि इस जीन का 41 इकाई वाला अतिरिक्त खंड भी है। इस तरह कुल 126 इकाई जीन एक 'अग्रगामी' ट्रांसफर आर.एन.ए. के लिए संहिता बनाता है, जो सक्रिय ट्रांसफर आर.एन.ए. से लंबा होता है। किसी अज्ञात कारणवश अग्रगामी ट्रांसफर आर.एन.ए. के संश्लेषण के बाद 41 इकाई जीन पर इसलिए भी काम शुरू किया कि यह पक्के तौर पर जान लिया जाए कि इस 41 इकाई भाग का वास्तव में क्या काम है।

एक-एक करके जोड़ने के सिद्धांत का इस्तेमाल कर कई चरणों में जाकर जीन का निर्माण संभव हो सका। सर्वप्रथम उन रासायनिक विधियों को ढूँढ़ा गया, जिनकी सहायता से व्यावसयिक रूप से संश्लेषित न्यूक्लियोटाइडों को सही तरह से जोड़ा जा सके, कुछ इस तरह कि जीन के टुकड़े 10 से 14 न्यूक्लियोटाइडों जितने लंबे रहें। हर टुकड़े में एक-दूसरे के पूरक किंतु विपरीत टुकड़े रहें। यानी अंततोगत्वा दो सूत्रोंवाले अणु की प्राप्ति हो गई। हर दो टुकड़े को डी.एन.ए. लायगेज नामक एंजाइम द्वारा जोड़ा गया। बनाने के बाद हर टुकड़े को वैज्ञानिकों ने शुद्ध किया। इसके लिए डॉ. फ्रित्ज द्वारा आविष्कृत द्रुत उच्च दाब द्रव क्रोमेटोग्राफी विधि अपनाई गई।

डॉ. खुराना का कहना है कि जीन के रासायनिक संश्लेषण की उनकी विधि 'रिकांबिनेंट डी.एन.ए.' नामक विवादास्पद विधि से बिल्कुल भिन्न है। इस विधि में विभिन्न जीवों के डी.एन.ए. को जोड़कर उनका प्रभाव देखा जाता है।

खुराना के अध्ययन का मुख्य विषय था, आनुवंशिक रसायन डी.एन.ए. और प्रोटीन का अंतर्संबंध। उनके अनुसार डी.एन.ए. का एक छोटा हिस्सा ही आर.एन.ए.

बनाने के लिए ब्लूप्रिंट तैयार करता है, जो बाद में प्रोटीन बनाते हैं। अधिकांश हिस्सों का काम है, जीन के कार्यकलापों पर नियंत्रण रखना–प्रोटीन की मार्फत, जो एंजाइम के रूप में काम करते हैं।

प्रोफेसर खुराना और उनके सहयोगियों ने उस जीन को बनाया है, जो एक विशेष प्रकार के ट्रांसफर आर.एन.ए. के लिए संहिता बनाता है। वस्तुतः यह टायरोसीन नामक अमीनो अम्ल को राइबोसोम पर लाकर प्रोटीन बनवाता है। इसलिए इस जीन का नाम ही पड़ गया है 'टायरोसीन ट्रांसफर आर.एन.ए. जीन'। शुरू और अंत करनेवाले 'सिग्नल' जीन के किसी सिरे पर भी रहते हैं और उन एंजाइमों को निर्देशित करते हैं, जो डी.एन.ए. की किसी पट्टी की बगल में आर.एन.ए. बनाते है। इन सिग्नलों में न्यूक्लियोटाइड के अतिरिक्त अनुक्रम होते हैं।

टायरोसीन ट्रांसफर आर.एन.ए. जीन के 'प्रारंभ' करनेवाले सिग्नल में 51 न्यूक्लियोटाइड होते हैं, 'अंत' करनेवाले सिग्नल में 23 न्यूक्लियोटाइड इकाइयाँ होती हैं।

इसी महत्त्वपूर्ण खोज में वरीय शोध सहायक मैसूर निवासी डॉ. राममूर्ति बेलागाजे और शोधकर्ता डॉ. हेंस जोशिम फ्रित्ज के अलावा डॉ. यूजीन एल, ब्राउन, प्रो. रॉबर्ट जी. लीस, डॉ. तकाओ सेकिया, डॉ. तातसुआँ ताकेया, डॉ. माइकेल जे. रयान, डॉ. हेंस कूपर, डॉ. माइकेल जे. गेट, डॉ. जेल्ड ई. नौरिस तथा रोलेंड कोंट्रेरास ने भी भाग लिया। इसका खर्च वहन किया, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ, नेशनल साइंस फाउंडेशन, अमेरिकन कैंसर सोसाइटी तथा अल्फ्रेड पी. स्लोअन फाउंडेशन ने।

इस समय हमारे पास नवीनतम डी.एन.ए. सीक्वेंसर उपलब्ध है, जो एक संपूर्ण मानव जीनोम का अनुक्रमण करने में सक्षम है। सामान्य रूप से इसे करने में कई साल लग जाते थे। इससे पूर्व होनेवाले मानव जीनोम के अनुक्रमण पर कई बिलियन डॉलर के खर्च पर ही किसी व्यक्ति के जीनोम का पुनः अनुक्रमण किया जा सकता है। नवीनतम तकनीकों की विकास प्रक्रिया अभी भी जारी है। यदि उन्हें सफलतापूर्वक विकसित कर लिया जाता है, तो इनके द्वारा मानव जीनोम का पुनः अनुक्रमण 2 से 3 दिनों में पूरा किया जाना संभव है। उसकी लागत भी 10 हजार डॉलर से ज्यादा नहीं होगी। जब यह संभव होगा, तब डी.एन.ए. तकनीक एवं माइक्रोएरे पुरानी हो चुकी होगी और अपराध स्थल से जब्त किए गए संदिग्ध व्यक्ति से प्राप्त नमूनों के संपूर्ण डी.एन.ए. को प्रत्यक्ष रूप से किए गए अनुक्रमण को सीधे तौर पर प्रयोग में लाया जा सकेगा।

वर्तमान में जीव-विज्ञान एक बेहद रोचक दौर से गुजर रहा है। तकनीकों के विकास की दिशा में सफल प्रयास किए गए हैं, जिनसे जीव विज्ञान के क्षेत्र में शोधकार्यों को एक ऐसे स्तर पर किया जाना मुमकिन हुआ है जिसकी पूर्व में कल्पना भी नहीं की गई थी। ऐसे सफल प्रयास तकनीकी विकास के क्षेत्र में हर समय किए जाते रहे हैं। अतएव इसका अनुमान लगाना बड़ा मुश्किल है कि आगामी पाँच वर्षों में क्या होनेवाला है? वर्तमान में वैज्ञानिकों के सामने सबसे बड़ा तथा इस समय असंभव सा लगनेवाला प्रश्न यह है कि क्या हम अपराध के स्थल पर पाए गए खून के धब्बे या शुक्राणु से डी.एन.ए. निकालकर उसकी पूरी अनुक्रमण द्वारा संदिग्ध अपराधी के चेहरे का चित्र बना सकेंगे? यदि यह संभव हो गया तो यह अपराध विज्ञान के जगत् में अभी तक की महाउपलब्धि होगी।

आशा की जाती है कि भविष्य में मानव जीनोम अनुक्रम का अध्ययन जीव-विज्ञान और चिकित्सा अनुसंधान में आधारभूत सिद्ध होगा। अपने शोधकार्य की प्रगति में वैज्ञानिकों की दृष्टि मानव जीनोम के अनुक्रमण से ज्यादा-से-ज्यादा जैव-सूचना प्राप्त करने पर केंद्रित होगी। यह जानकारी जैव-विशेषज्ञों के लिए जीनों की कार्यप्रणाली समझने में बहुत उपयुक्त सिद्ध होगी। आनुवंशिक तत्त्वों से बने हुए डी.एन.ए. के इस धागे से मानवीय शरीर की संरचना, विकास और चिकित्सा-शास्त्र से जुड़ी अनेक गुत्थियाँ सुलझाने में मदद मिलेगी।

□

4

आनुवंशिकी और डॉ. खुराना

जीन, आनुवंशिकता की आधारभूत इकाई है। यह द्विसूत्रीय सीढ़ीदार कुंडली डी.एन.ए. (डीऑक्सीराइबो न्यूक्लीक एसिड) का बना होता है। डी.एन.ए. इकाई को न्यूक्लियोटाइड कहते हैं। सामान्यत: चार प्रकार के न्यूक्लियोटाइड पाए जाते हैं—एडीनीन, थायमीन, गुआनीन और सायटोसीन, जिन्हें संक्षेप में 'ए', 'टी', 'जी' और 'सी' कहा जाता है। हर द्विसूत्रीय डी.एन.ए. अणु में 'ए' के साथ 'टी' और 'सी' के साथ 'जी' एक-दूसरे के विपरीत अवस्थित रहते हैं। अब सक्रिय प्रोटीन अणु में जीन से सूचनाएँ जाने को होती हैं, विशेष प्रकार के इंजाइम डी.एन.ए. के एक ओर से सटे आर.एन.ए. (राइबोन्यूक्लिक एसिड) बनाकर उनमें उन सूचनाओं को संहिताबद्ध कर देते हैं। जब आर.एन.ए. बन जाता है, तो डी.एन.ए. से अलग होकर प्रोटीन संश्लेषण के काम में लग जाता है। डी.एन.ए. की पट्टी पर तीन तरह के आर.एन.ए. संश्लेषित होते हैं: मैसेंजर आर.एन.ए., जो जीन से सूचना लेकर प्रोटीन में अनूदित करने की कोशिकीय विधि का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये प्रोटीन कोशिकाओं के कामगार हैं, जो मुख्यत: इंजाइम के रूप में रहते हैं और कोशिकाओं की रासायनिक प्रक्रियाओं को सहायता पहुँचाते हैं।

दूसरे प्रकार के आर.एन.ए. को राइबोसोम आर.एन.ए. कहा जाता है। जीन को छोड़ने के बाद ये राइबोसोम बनाते हैं। दरअसल ये 'होल्डर' का काम करते हैं, जिसका उपयोग मैसेंजर आर.एन.ए. अपनी सूचनाओं को प्रोटीन में देने के क्रम में करते हैं।

लेकिन प्रोटीन के निर्मात्री अवयव हैं, अमीनो अम्ल। इन्हें राइबोसोम पर लाकर मैसेंजर आर.एन.ए. की सहायता से प्रोटीन बनाने का काम तीसरे प्रकार के आर.एन.ए. करते हैं, जिन्हें ट्रांसफर आर.एन.ए. कहा जाता है।

जीन आनुवंशिकता की इकाई है और जीवन की सभी प्रतिक्रियाओं का नियंत्रण करती है। जीव-विज्ञान की इस महत्त्वपूर्ण खोज में वैज्ञानिकों को आनुवंशिक रोगों पर नियंत्रण करने की दिशा मिल गई है। हो सकता है कि भविष्य में कृत्रिम जीवन का निर्माण संभव हो जाए। यही नहीं, सुघर' मानव और पशुओं की नस्लें तथा वनस्पतियों की किस्में तैयार करना संभव हो सकेगा। मानव रूप बदल सकेगा, संपूर्ण राष्ट्र की नस्ल बदली जा सकेगी। फिर भारतीय या मंगोलियन आदि में भेद कर पाना कठिन होगा। स्मरण रहे, आनुवंशिकी का अंतिम लक्ष्य है, प्राणी का विकास और उसके विकसित रूप का एक मानचित्र निरूपित करना। यह मानचित्र जनन-परंपरा-कोशिकाओं द्वारा भ्रूण को दिए गए जीनों के अनुक्रम में निहित होता है, अत: इस अनुक्रम का ज्ञान प्राप्त करना ही आनुवंशिकी का मुख्य उद्देश्य है। पारंपरिक आनुवंशिकी में इसके लिए वैज्ञानिक, किसी प्राणी के किसी विशिष्ट लक्षण का अनेक पीढ़ियों तक पारगमन (अर्थात् उन लक्षणों की उपस्थिति) का अध्ययन करते थे तथा इस प्रकार, इस लक्षण से संबंधित जीन का संसूचन और क्रोमोसोम में उसके स्थान का निर्धारण करते थे। उसके लिए उत्परिवर्तित जीनों की बड़ी संख्या में आवश्यकता होती थी। इन उत्परिवर्तित जीनों की संख्या-वृद्धि प्रजनन द्वारा कराई जाती थी। प्रजनन के उपयोग के कारण केवल उन्हीं जीनों पर इस प्रकार के अध्ययन हो सकते थे, जिनका जीवन और गर्भधारणकाल अल्पावधि का हो, अर्थात् जिससे थोड़े ही समय में अनेक पीढ़ियाँ उत्पन्न कराई जा सकें। पिछले तीस वर्षों में जिन नई आनुवंशिक प्रविधियों का विकास हुआ है, उनकी सहायता से प्राकृतिक प्रजनन की आवश्यकता समाप्त हो गई है और वैज्ञानिक इस प्रकार का शोधकार्य किसी भी प्रजाति के प्राणी पर कर सकते हैं। इन नई प्रविधियों की सहायता से यह ज्ञात करना संभव हो सका है कि किसी भी विशिष्ट जीन में प्रजातियों के विकास के साथ किस प्रकार परिवर्तन हुए हैं। यह भी अधिक सुस्पष्ट हुआ है कि नवीन आणविक संरचनाएँ, घटक परमाणुओं के किसी नवीन संयोजन द्वारा अथवा पहले से निर्मित आणविक संरचना में छोटे-मोटे परिवर्तनों द्वारा निर्मित हुई हैं। परिणाम इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि प्रजातियों के विकास में प्रकृति एक ऐसे मिस्त्री की तरह व्यवहार करती है, जोकि अपनी पुरानी कृति में ही काट-छाँट करके नई कृति का निर्माण करता है।

वंश-परंपरा की भौतिक आधारशिला को, आणविक जैविकी की प्रविधि से, हम न केवल समझने में सफल हुए हैं, वरन् उसे प्रभावित करने में भी हमने सफलता प्राप्त की है। डी.एन.ए. शृंखला को किसी भी निश्चित स्थान पर काटना,

इसके छोटे-छोटे टुकड़ों को उचित ढंग से जोड़ना आदि कार्य सरलता एवं शुद्धता (त्रुटिहीनता) के साथ करना संभव हो गया है। भिन्न-भिन्न प्रजाति के डी.एन.ए. को आपस में मिलाकर नया डी.एन.ए. बनाना अर्थात् संकर प्रजातियों का नियंत्रित ढंग से उद्‌भव और विकास अब संभव हो गया है। अनेक अनाजों में रोगों और कीटाणुओं के प्रतिरोध की क्षमता विकसित करने में जो सफलता प्राप्त हुई है, वह इसी जैविक-प्रविधि का परिणाम है। इस प्रविधि ने कैंसर जैसे रोग के विकास की प्रक्रिया तथा भ्रूण के क्रम-विकास तथा उसके विभिन्न अंगों की विकसित होने की प्रक्रिया जैसी अनेक प्रक्रियाएँ, जो हमें ज्ञात नहीं थीं, समझना सरल बना दिया है। अनेक ऐसी जटिल और कष्टसाध्य बीमारियों, जो माता-पिता द्वारा बच्चों को अनायास अनिश्चित रूप से दी जाती थीं, उनसे संबद्ध जीनों के ज्ञान से इन रोगों का प्रसार रोकना संभव हो रहा है। थैलेसीमिया नामक रोग, जिसकी कोई दवा नहीं है, ऐसे बच्चों को होता है, जिनके माता-पिता के एक विशेष जीन में कुछ अशुद्धि आ गई होती है। चूँकि इन जीनों को पहचानने में सफलता मिली है, अत: विवाह के पूर्व ही भावी पति-पत्नी की जाँच करके यह बताया जा सकता है कि उनसे पैदा होनेवाले शिशु को यह रोग हो सकता है अथवा नहीं। यूनान की सरकार ने वहाँ की जनता में इस प्रकार के युगलों की विवाह-पूर्व जाँच कराकर आशंकित स्थितियों में गर्भपात करा देना अनुमत: करार दिया है। इससे थैलेसीमिया के रोगियों की संख्या घटी है।

लैंगिक प्रजनन द्वारा जीव के जन्म की प्रक्रिया वीर्य (शुक्राणु) और डिंब कोशिका के सम्मिलन से आरंभ होती है। इस युग्मन से बनी अंडकोशिका क्रमश: दो, चार, आठ,···कोशिकाओं में विभाजित होते हुए एक गेंदनुमा संकुल बनाती है। कुछ ही देर बाद यह गेंद एक थैली का रूप ले लेती है। इसी बीच इस नन्हे से जीव (मानव भ्रूण) में कुछ ऐसी कोशिकाएँ विकसित होती हैं, जो स्नायु कोशिकाओं का समूह बनाती हैं। ये ही कोशिकाएँ आगे चलकर मनुष्य को, बोलने, लिखने, गिनने, बाजा बजाने, चित्र बनाने आदि गुणों की क्षमता प्रदान करती हैं। कोशिकाओं के इस छोटे से संकुल में ही मानव की ज्ञान-विज्ञान, धर्म-दर्शन एवं प्रतिभा की समस्त क्षमताएँ सन्निहित होती हैं। कब कौन-सा अंग इस भ्रूण में विकसित होगा, और इन अंगों का आपसी विन्यास किस प्रकार का होगा, ये सभी बातें शुक्राणु और डिंब से प्राप्त डी.एन.ए. द्वारा निर्धारित होती हैं। आणविक जैविकी की सहायता से एक प्रजाति के डी.एन.ए. में दूसरी प्रजाति के डी.एन.ए. के अंश युग्मित करना तो संभव है ही, इस संयुग्मित डी.एन.ए. द्वारा भ्रूण के क्रम विकास की निर्धारित प्रक्रिया

को भी प्रभावित करना संभव है। इस प्रकार, आज तक किसी प्राणी के जन्म की वह प्रक्रिया, जिसे हम ईश्वरीय और फलत: रहस्यमय मानते रहे हैं, वह मानव के प्रभाव में आ गई है। तकनीकी तथा आर्थिक दृष्टि से यह इतनी जटिल भी नहीं है कि इसे किसी अच्छी प्रयोगशाला में संपन्न न किया जा सके।

वर्तमान समय में आणविक जीव-विज्ञान की प्रगति ने प्रजनन और लैंगिक सहवास को बिल्कुल ही पृथक् कर दिया है। अब जन्म का नियंत्रण वैज्ञानिकों के हाथ में है, क्योंकि, कृत्रिम ढंग से गर्भाधान करना और भ्रूण को माँ के गर्भाशय के स्थान पर किसी अन्य के शरीर में स्थापित कराना आदि सफलतापूर्वक संभव हो गया है। भ्रूण का विकास भी प्रयोगशाला में करने में सफलता नहीं मिलेगी, ऐसा सोचने का कोई कारण नहीं दिखाई देता है।

प्रश्न मूल्यों का है? जैविक और सांस्कृतिक मूल्यों में मानव समाज ने एक सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास सभ्यता के प्रारंभकाल से ही किया है। इसका एक अच्छा उदाहरण है—निकट संबंधियों में विवाह का निषेध, जो लगभग सभी सभ्य समाजों में माना जाता है। इस निषेध का कोई प्राकृतिक या जैविक आधार नहीं है, परंतु यह मानव संबंधों को परिभाषित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। लगभग सभी जनजातियों में भी यह प्रथा रही है कि किसी एक कबीले या समूह के किसी युवक या युवती का विवाह अपने ही समूह के युवती या युवक से न किया जाए। इस प्रकार के सामाजिक प्रतिबंधों के आधार पर ही मानव समाज की संरचना हो सकी है। पहले मनुष्य इन प्रतिबंधों को दैवी मानकर इनमें आस्था रखता था, परंतु जीव-विज्ञान की प्रगति ने अब इन प्रतिबंधों को संदेह के घेरे में ला दिया है।

जीवन के प्रति श्रद्धा का भाव भी प्राय: सभी मिथकों और धर्मों का मुख्य अंग रहा है। जीवित प्राणियों की क्रियाशीलता, बदलती परिस्थितियों के साथ अनुकूलन की क्षमता और उनका रूपांतरण आदि मनुष्य को न केवल जड़ पदार्थों से पृथक् करते हैं, वरन् कुछ हद तक जीवन को एक चमत्कारिक घटना का दर्जा देते हैं। प्राणियों में होनेवाली रासायनिक प्रक्रियाएँ मूल रूप से जड़ पदार्थों के बीच होनेवाली प्रक्रियाओं जैसी ही हैं, परंतु जैविक प्रक्रियाओं में अधिक जटिलता और साथ ही उच्च कोटि की व्यवस्था पाई जाती है। इनका नियमन अधिक परिशुद्ध एवं नियंत्रित ढंग से होता है। भौतिक दृष्टि से बहुधा यह कहा जाता है कि पदार्थ से प्राणी तक, और धूल-कणों तथा मस्तिष्क के उद्‌भव तक का विकास सरलता से जटिलता की ओर उन्मुख विकास-क्रम का प्रतिरूप मात्र है। परंतु जड़ से जीवन के विकास की प्रक्रिया में मानसिक, नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों का भी योगदान महत्त्वपूर्ण

रहा है, और उसकी अनदेखी नहीं की जा सकती है। वास्तव में चूँकि मूल्यों का विकास जीवन तथा विशेषत: मानव के विकास के साथ अंतरंग रूप से संबद्ध है, अतएव सामान्य जन, प्रजातियों के विकास को एक दिष्ट प्रक्रिया मानते हैं। उनके अनुसार प्रजाति का उद्देश्य ही सदैव यही रहा है कि सृष्टि में ऐसे प्राणियों का प्रादुर्भाव हो, जो मानवीय गुणों और मूल्यों से संपन्न हों। स्पष्ट है कि प्रकृति में इस प्रकार के दिष्ट विकास की क्षमता नहीं हो सकती है, अत: मानव समाज ने विश्व के सर्जक एवं नियंता की कल्पना की, जिसे ईश्वर कहा गया। चूँकि मानव में मानसिक विकास अपनी अधिकतम स्थिति को प्राप्त हुआ है, अत: मानव को ईश्वर की प्रतिकृति कहा जा सकता है। जीवन के प्रति यह श्रद्धा–भाव और ईश्वर की कल्पना का परिणाम यह हुआ कि मानव समाज में शिशु के जन्म को ईश्वरीय दया का परिणाम माना जाने लगा। यहाँ तक कि जैविक दृष्टि से शिशु के जन्मदाता माता–पिता को केवल ईश्वर की इच्छा का वाहक माना गया था।

आणविक जैविकी एवं आनुवंशिकी की प्रगति ने जन्म की प्रक्रिया के रहस्य को हटाकर समाज में जीव–सृष्टि के विषय में पूर्व विकसित श्रद्धा–भाव पर गहरा आघात किया है। यह श्रद्धा–भाव, यदि पूर्णरूपेण समाप्त हो जाता है तो क्या हम डोब्जान्स्की के निम्नलिखित कथन पर दृढ रह सकेंगे:

If we enable the weak and deformed to live and propagate their kind, we face the prospect of a genetic twilight; But if we let them die or suffer when we can save or help them, we face the certainty of a moral twilight.

प्राचीन मिथकों में ऐसी अनेक कहानियाँ आती हैं, जिनमें किसी दैवी विधान के विपरीत कार्य करने पर मानव को ऐसे विचित्र प्राणियों से लड़ना पड़ा है, जो दो या अनेक प्रजातियों के गुणों से युक्त रहे। मानव के अवचेतन मन में वे संभावनाएँ डरावनी यादों के रूप में सुरक्षित हैं और जीव विज्ञान की आधुनिक प्रगति, जिसमें एक प्रजाति के डी.एन.ए. में दूसरी प्रजाति के डी.एन.ए. का अंश प्रतिस्थापित करने की क्षमता सामान्य हो गई है, के कारण इस प्रकार के जीवों की उत्पत्ति की संभावना उक्त मिथकीय भय को पुन:जाग्रत् करने का कारण बनती जा रही है। अनिश्चित गलतियों या दुर्घटनाओं से इस प्रकार के जीवों की उत्पत्ति तो संभव है ही, इस तकनीकी के प्रयोग से योजनाबद्ध ढंग से भी प्रजातियों में परिवर्तन लाए जा सकते हैं।

आनुवंशिक उन्नति का संघटित प्रयास कृषि और पशुपालन के क्षेत्र में प्राचीन

काल से ही चलता रहा है कि अधिक उपयोगी एवं लाभप्रद पौधों तथा पशुओं का चयन किया जाए। ऐसे पौधों और पशुओं को अगली फसल या अगली नस्ल के लिए उपयोग में लाया जाता था। ऐसा करने से यह पाया जाता था कि कुछ पीढ़ियों के बाद उन्नत प्रजाति के पौधे और जानवर प्राप्त होते थे। प्राचीनकाल से मानव समाज में भी ऐसी प्रवृत्ति होने के उदाहरण पाए जाते हैं। स्पार्टा में किसी भी प्रकार के विकलांग या विरूपित शिशु को जन्म के तत्काल बाद ही समुद्र में फेंक दिया जाता था। प्लेटो ने भी यह प्रस्ताव किया था कि विकलांगों और दरिद्रों को प्रजनन का अधिकार नहीं होना चाहिए, क्योंकि इससे ऐसे ही लोगों की वृद्धि हो सकती है। आधुनिक काल में मानव प्रजाति में आनुवंशिक उन्नति का एक संगठित प्रयास 20वीं सदी के आरंभिक काल में सर फ्रांसिस गाल्टन द्वारा प्रचारित किया गया था, जिसे 'इयूजीनिक्स आंदोलन' कहा जाता है। अनेक आनुवंशिकीविदों जैसे—मोरगन, फिशर, हाल्डेन और मूलर आदि भी इस आंदोलन के उद्देश्य तथा सुझावों से सहमत थे। अमेरिकी वैज्ञानिक डेनेनपोर्ट ने एक अंतरराष्ट्रीय इयूजीनिक्स सोसाइटी की स्थापना की थी, जिसका उद्देश्य आनुवंशिकी के क्षेत्र में अनुसंधान को प्रोत्साहन देना था, जिसकी सहायता से मानव प्रजाति को आनुवंशिक दृष्टि से उन्नत बनाया जा सके। उनकी धारणा थी कि अंतरजातीय प्रजनन पर अधिक शोध की आवश्यकता है, क्योंकि उनके विचार से अमेरिका में ऐंग्लो-सैक्सन गोरी जाति को अश्वेतों तथा पोलैंड और इटली आदि देशों के निवासियों के आनुवंशिक प्रदूषण से बचाना चाहिए। इस शोध के लिए नियमन-समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने जर्मनी के विख्यात आनुवंशिकी-वैज्ञानिक फिशर को नामांकित किया था। फिशर भी मानव समाज में आनुवंशिक दृष्टि से दुर्बल मनुष्यों की संख्या कम करने के समर्थक थे। कोनरॉड लोरेंज ने भी इस प्रकार के प्रयास को उचित ठहराया था और इसको किसी कैंसर युक्त व्यक्ति के शरीर में से कैंसरग्रस्त अंग को काटकर निकाल देने के समान ही बताया था। फिशर के शिष्य काउंट ब्रॉन बरशूखर तथा उनके सहकर्मी डॉ. जोसेफ मैग्गेले ने अंतरजातीय प्रजनन के शोध को अपना मुख्य कार्यक्षेत्र बनाया। वे हिटलर की 'गेस्टापो' के सक्रिय सदस्य थे।

फिशर की पुस्तक : 'मानव आनुवंशिकी और जातीय शुद्धता' (Human Genetics and Racial Purity) ने हिटलर को बहुत प्रभावित किया था। बरशूखर और डॉ. मेंगेले के प्रयोगों का विस्तृत विवरण जर्मन आनुवंशिकीविद् बेनो-मूलर हिल ने अपनी पुस्तक : हिंसक विज्ञान : जिप्सियों और यहूदियों आदि का वैज्ञानिक चयन द्वारा विनाश (Murderous Science : Elimination by

Scientific Selection, of Jews, Gypsies and other; Germany 1933-45), Oxford University Press : 1988; में किया है। यह सारा शोधकार्य संगठित विज्ञान की पारस्परिक व्यवस्था के ही अंतर्गत किया जाता है, जिसमें शोधकार्य की योजना और एतदर्थ आवश्यक धनराशि का आवंटन आदि, सबकुछ, वैज्ञानिकों की समितियों द्वारा ही किया जाता रहा। कभी भी किसी ने इसके प्रतिवाद में एक शब्द तक नहीं कहा। शोध के परिणाम सामान्य शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे। इन्हीं शोधकार्यों के अंतर्गत वे प्रयोग भी किए गए, जिनमें यहूदियों और जिप्सियों के हृदय में फार्मेलीन के इंजेक्शन लगाए गए तथा उनकी बहुरंगी आँखों को निकालकर उनका अध्ययन किया गया, बच्चों को टायफायड रोग से समवित कराया गया, जिससे कि दो प्रकार के जुड़वाँ बच्चों की प्रतिक्रिया का अंतर समझा जा सके। ऐसे ही अन्य अनेक प्रयोग किए गए।

मानव जाति के आनुवंशिक उन्नयन के उद्देश्य से आरंभ किए गए कार्यक्रम का यह वीभत्स रूप हमें कुछ संदेश देता है। इससे हम यह सोचने पर विवश होते हैं कि वैज्ञानिक समाज की जो आंतरिक समितियाँ हैं, वे किसी कार्यक्रम को वीभत्स रूप लेने से रोकने में अधिक समर्थ नहीं हैं। इयुजीनिक्स के समर्थक अधिकतर वैज्ञानिक मानव-हित के लिए ही शोधकार्य कर रहे थे, उनकी मानसिक प्रवृत्ति के बारे में संदेह करना उचित नहीं होगा। इन वैज्ञानिकों में से कई को उनके शोध की उत्कृष्टता पर नोबेल पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। इनसे क्या चूक हुई? ये कहाँ तक जाकर रास्ता भूल गए? यह उचित नहीं है कि हम इस उदाहरण की, यह कहकर उपेक्षा कर दें कि यह सब एक परिस्थिति विशेष के कारण हुआ था और भविष्य में ऐसा नहीं होगा।

शोध पर प्रतिबंध— क्या कुछ विशेष प्रकार के शोध-प्रयोगों पर प्रतिबंध लगा देने से इस प्रकार की समस्या का निदान हो जाएगा? इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक ही होगा; इसका मुख्य कारण तो यह है कि हमारे पास कोई ऐसा साधन नहीं है कि जिससे यह निर्णय किया जा सके कि किस प्रकार के प्रयोगों को प्रतिबंधित करना चाहिए? विज्ञान का प्रत्येक प्रयोग कोई अप्रत्याशित परिणाम दे सकता है। वैज्ञानिक प्रक्रियाओं में अनिर्धार्यता (indeterminancy) निहित है। अतएव पहले से यह जानना कि किस प्रयोग को प्रतिबंधित किया जाए, अत्यंत कठिन है।

कभी-कभी इस प्रकार के सुझाव भी दिए जाते हैं कि आनुवंशिकी में, विशेषकर प्राणी-आनुवंशिकी में व्यापक रूप से शोधकार्य रोक दिया जाना चाहिए। भ्रूण के बनने, विकसित होने और शिशु रूप धारण करने की पूरी प्रक्रिया का ज्ञान

प्राप्त करना ईश्वरीय कार्य-क्षेत्र में प्रवेश करने का अनधिकृत प्रयास है। अत: इसे बंद कर देना चाहिए। किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में ऐसा करना संभव नहीं है। साथ ही इस प्रकार के शोधकार्य को प्रतिबंधित करने से हम अनेक लाभप्रद एवं उपयोगी ज्ञान से भी वंचित रह जाएँगे। ज्ञान अपने आप में घातक नहीं होता, जबकि अज्ञान घातक हो सकता है। अज्ञान के कारण उत्पन्न संकट का एक उदाहरण देना समीचीन होगा। अनेक वर्षों तक क्यूरेयर (Curare) नामक एक औषधि बच्चों की शल्य क्रिया में, नि:संज्ञक के रूप में प्रयुक्त की जाती रही है, क्योंकि इस औषधि को देने के बाद बच्चा शल्य-क्रिया के समय निश्चेष्ट पड़ा प्रतीत होता है। वह अपने अंगों का परिचालन नहीं करता है। इससे चिकित्सक अपना शल्य कार्य सरलतापूर्वक पूरा कर लेते थे। ज्ञान में वृद्धि से ज्ञात हुआ कि यह औषधि दर्द के अनुभव को प्रभावित नहीं करती, अर्थात् यह संवेदना का लोप नहीं करती। वास्तव में यह तो केवल मांसपेशियों को इतना शिथिल कर देती है कि शिशु उनका संचालन ही नहीं कर सकता है। दूसरे शब्दों में शल्य-चिकित्सा के दौरान बच्चे को कष्ट तो ठीक वैसे ही होता है, जैसे किसी भी चैतन्य (बिना बेहोश किए) व्यक्ति को होता है, परंतु न तो वह बोल सकता है, न ही छटपटा सकता है, क्योंकि वह अपनी मांसपेशियों का संचालन नहीं कर सकता है। यह अनुमान से परे है कि इस जानकारी से पूर्व न जाने कितने शिशुओं ने ऐसी यातना सही होगी!

वैज्ञानिकों का कर्तव्य—जहाँ इस प्रकार की संदिग्ध स्थिति हो, वहाँ विवेकी वैज्ञानिक को क्या करना चाहिए, यह एक विचारणीय प्रश्न है। फ्रांसीसी लेखक एल्बर्ट कामो ने लिखा है कि प्लेग से लड़ने का एकमात्र साधन है, सामान्य सद्भावना। (The only means of fighting a plague is common decency) बड़ा ही अटपटा-सा लगता है यह वाक्य; परंतु इसका तात्पर्य यह है कि आपसी व्यवहार में सदाचार को बनाए रखा जाए। सदाचार हमें अपने और पराए के कार्यों के विषय में सत्य को उद्घाटित करने का निर्देश देता है, हमारी अपनी रूढ़ियाँ, मान्यताएँ तथा सैद्धांतिक प्रतिबद्धताएँ इसमें बाधक नहीं बननी चाहिए। बहुधा वैज्ञानिक अपने नवीनतम शोध से इस प्रकार भावनात्मक ढंग से जुड़ जाते हैं कि उनका इस कार्य के या इसके परिणाम के हानिकारक पहलुओं पर ध्यान ही नहीं जाता है। सन् 1944-45 में जब परमाणु बम पर कार्य करनेवाले वैज्ञानिकों में से कुछ को इस अस्त्र की विभीषिका का भान होने लगा तो उनमें से कुछ ने अपने सहयोगियों से इस कार्य से विरत होने का प्रस्ताव किया। परंतु अनके वैज्ञानिकों को इस कार्य में भौतिकी के सिद्धांतों की ऐसी झलक मिल चुकी थी कि वह परमाणु

बम उनके लिए आयुध न रहकर भौतिक-शास्त्र की एक जटिल समस्या मात्र रह गया था। इस जटिल समस्या का समाधान करना ही उनका उद्देश्य बन गया था! एनरिको फर्मी, जो बाद में फ्रैंक रिपोर्ट के समर्थकों में से थे, उन्होंने भी उस समय यह कहा था कि इसमें निहित भौतिकी अत्यंत मनोहारी है। फर्मी गलत नहीं थे, उनको उस समय शायद यह भान ही नहीं था कि भौतिकी का उपयोग लाखों लोगों को काल कवलित करनेवाला होगा।

वैज्ञानिक का, समाज के प्रति यह दायित्व है कि वे अपने शोधकार्यों के परिणामों पर गहराई से मनन करें और समाज के सामने सभी संभावनाओं को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करें। आनुवंशिकी के क्षेत्र में कार्यरत लोगों का यह कर्तव्य है कि वे इस शोधकार्य के उद्देश्यों, उसकी प्रविधियों तथा उसकी संभावनाओं के बारे में जनता को जानकारी दें। संभावनाओं में केवल वे ही संभावनाएँ न बताई जाएँ जो हितकारी हों, वरन् वे भी स्पष्ट की जाएँ, जो हानिकारक हो सकती हैं, या जिनका दुरुपयोग हो सकता है।

उदाहरणार्थ, बाद के शोध से यह प्रकट हो गया है कि इयूजीनिक्स की मूल धारणा ही गलत निष्कर्षों पर आधारित थी। उस समय मानव आनुवंशिकी का वैज्ञानिक ज्ञान न केवल अपूर्ण था, वरन् त्रुटिपूर्ण भी था! जिन वैज्ञानिकों ने इस ज्ञान के आधार पर मानव के आनुवंशिक उन्नयन का प्रस्ताव रखा था, वे इस ज्ञान की अपूर्णता से परिचित थे, फिर भी उन्होंने यह मान लिया था कि इस अपूर्ण ज्ञान के आधार पर भी उनके उद्देश्यों की पूर्ति हो सकती है। उन्होंने समाज को इस ज्ञान की अपूर्णता और इससे संबद्ध खतरों से आगाह नहीं किया। साथ ही उन्होंने यह मान लिया था कि इस दिशा में होनेवाले सभी प्रयोग वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही होंगे और उनमें राजनैतिक एवं सामाजिक पूर्वग्रहों का प्रभाव नहीं पड़ेगा। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि आधुनिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में किसी भी प्रविधि का प्रयोग केवल उसके आविष्कारक द्वारा निर्दिष्ट दिशाओं में ही होगा, यह निश्चित नहीं है। प्रविधि द्वारा जो भी ज्ञान प्राप्त हो सकता है, या जो भी आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक लाभ प्राप्त हो सकता है, उसे प्राप्त करने का प्रयास व्यक्तियों या व्यक्ति-समूहों द्वारा होगा ही, इसमें से कुछ उपयोग नैतिक दृष्टि से गलत भी हो सकते हैं। इसका एक साधारण उदाहरण है, अल्ट्रासाउंड मशीनों द्वारा भ्रूण का लिंग परीक्षण, जिसके आधार पर हमारे देश में मादा भ्रूण की हत्या की जा रही है। वैज्ञानिकों का कर्तव्य है कि वे किसी नई प्रविधि के संभावित उपयोगों के प्रति भी समाज को जागरूक बनाएँ। किसी भी नई प्रविधि के

सामान्य और व्यापक उपयोग आरंभ होने से पहले ही उसके सभी पहलुओं पर इस दृष्टि से विचार कर लेना आवश्यक है। यह सावधानी किसी प्रविधि के विकास के हर पड़ाव पर बरती जानी चाहिए। ये कार्य केवल वैज्ञानिक ही कर सकते हैं, क्योंकि वे ही आवश्यक ज्ञान से संपन्न हैं। परंतु उन्हें अपने निष्कर्षों से जनता को भी अवगत कराना होगा, क्योंकि निर्णय लेने का अधिकार तो जनता को ही है। वैज्ञानिक धारणाएँ बहुधा अमूर्त होती हैं, निराकार होती हैं। वैज्ञानिक किसी समय किसी ऊतक पर, कभी किसी कोशिका पर और कभी किसी न्यूक्लिक अम्ल पर या किसी प्रोटीन पर अपना ध्यान केंद्रित रखता है। इस प्रकार का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रगति के लिए आवश्यक है। परंतु किसी जीव के भीतर स्थित इसी प्रकार की घटक रचनाएँ भी ठीक उसी प्रकार का व्यवहार करेंगी, यह निश्चित रूप से कहना मुश्किल है। वैज्ञानिक इस तथ्य को भी समझता है। अत: इस तथ्य से भी समाज को अवगत कराना उसका दायित्व है।

प्रकृति और पर्यावरण का जीन पर प्रभाव

अपने चारों ओर देखने से ऐसे अनगिनत उदाहरण मिल सकते हैं, जो बताते हैं कि प्रकृति और पर्यावरण का जीन पर प्रभाव मनुष्य की उत्क्रांति के साथ समाप्त नहीं हो गया। आज भी मनुष्य के वातावरण और जीन के एक-दूसरे पर प्रभाव से ही उसका जीवन दिशा पाता है। जीवन के हर पहलू पर पर्यावरण का असर देखने को मिलता है। कहा जाता है कि जिसकी जैसी जीन होती हैं वह वैसा ही बनता है। लेकिन नीचे दिए उदाहरणों से एक प्रश्न सामने आता है कि क्या वास्तव में जीन ही सब कुछ हैं ?

मनुष्य के करीब-करीब सभी रोग जीन और पर्यावरण के आपसी संबंध बिगड़ने से होते हैं। इसके अंतर्गत संक्रामक, रासायनिक, खान-पान और रहन-सहन से जुड़े कारक भी आते हैं। आनुवंशिकता जीनों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं और पर्यावरण का रोगोत्पति में कितना हाथ है, इसका पता लगाना सिर्फ महत्त्वपूर्ण ही नहीं, रोचक भी है। उदाहरणार्थ, जो लोग अपने स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखते हैं और जिनमें कोलेस्टेरॉल की मात्रा भी अधिक नहीं होती, उन्हें भी 40 वर्ष की अवस्था में ही एक तरह का हृदय विकार हो सकता है। इसकी तुलना में कुछ लोग जो अधिक धूम्रपान करते हैं या जिन्हें उचित खान-पान भी नहीं मिलता, हृदय की बीमारियों से पूर्णतया वंचित रहते हैं।

कहते हैं कि मनुष्य के तौर-तरीके, संक्रामक रोग, कोमल भावनाएँ, जैसे कि

आह्लाद या अवसाद और यहाँ तक कि आत्महत्या करने की प्रवृत्ति, सभी की चाबी उसकी जीनों के हाथ में होती है। एड्स जैसी खतरनाक बीमारी हो या मस्तिष्क की विभ्रांति, सभी के पीछे जीन होते हैं। इसीलिए आनुवंशिक परामर्शदाता व्यक्ति को सही सलाह देने के लिए उसके पूरे परिवार और पुरानी पीढ़ियों के बारे में भी विस्तृत जानकारी एकत्र करते हैं। लगता तो ऐसा है कि हम जो कुछ भी हैं, उसके लिए हमारी जीन ही जिम्मेदार है। पर बात शायद इतनी सीधी भी नहीं है। जीन भूमिका तैयार करती है और नींव भी बनाती है, पर फल पाने के लिए और भी कुछ होना चाहिए। क्या है यह और कुछ ?

एक प्रयोग द्वारा क्रेब एवं उनके सहयोगी (1999) ने दिखाया कि लगभग एक ही जैसे वातावरण में पले चूहे, जिनकी सभी जीन एक ही जैसी होती है, अलग-अलग व्यवहार दिखाते हैं। इसका तात्पर्य यही है कि वातावरण में छोटे-से-छोटे परिवर्तन का भी गुणों के विकास पर महत्त्वपूर्ण असर पड़ता है। जीन से ही हमारे सभी गुणों के विकास पर महत्त्वपूर्ण असर पड़ता है। जीन ही हमारे सभी गुणों और अवगुणों के लिए जिम्मेदार नहीं हैं, बल्कि वातावरण के साथ उनका तालमेल भी किसी व्यक्ति का पूर्ण स्वरूप बनाता है। वास्तव में अगर देखा जाए तो ऐसा होना स्वाभाविक है और इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। अगर ऐसा नहीं होता तो शायद मनुष्य की उत्पत्ति और उत्क्रांति नहीं होती। जीवन और पर्यावरण का संबंध मनुष्य जाति के विकास की कहानी है। सबसे अधिक सक्षम जीव सबसे अधिक सफल रहे प्राकृतिक चुनौतियों को जीतने में और इस प्राकृतिक चुनाव में सबसे सफल रहा मानव। इसीलिए मनुष्य आज सर्वाधिक विकसित है, क्योंकि उन्हीं की वजह से मनुष्य अपने वातावरण में सफलतापूर्वक रह रहा है। जीनों के ऊपर प्रकृति के इस प्रभाव को पूर्णरूपेण समझ सकना वैज्ञानिकों के लिए एक चुनौती ही है।

नई वैज्ञानिक खोजों से यह सिद्ध होता है कि जीन और पर्यावरण का आपस में घनिष्ठ संबंध होता है, जोकि कैंसर होने की संभावना का महत्त्वपूर्ण कारण है। विख्यात विदूषक जार्ज बर्न्स का उदाहरण बहुत ही आश्चर्यजनक और चौंका देनेवाला है। जनवरी 1996 में जब उनके सौ वर्ष पूरे हुए थे, वे तब भी बहुत सक्रिय थे और सिगार पीते रहने की उनकी आदत बरकरार थी। हम में से बहुत सारे लोग अगर इतनी सिगरेट पीते तो अधिक-से-अधिक 60 वर्ष की आयु में अवश्य कैंसर का शिकार हो जाते और मृत्यु को प्राप्त हो गए होते। बर्न्स का उदाहरण बताता है कि कुछ लोग सिगरेट के धुएँ जैसे जहर को भी आसानी से सहन कर लेते हैं, बिना किसी प्रतिकूल प्रभाव के। जबकि दूसरे लोग कैंसर, अस्थमा या हृदय रोग का

शिकार हो जाते हैं। बर्स की मृत्यु 1 मार्च, 1996 को हुई। नई वैज्ञानिक खोजों से भी सिद्ध होता है कि जीन और पर्यावरण का गहरा संबंध होता है, जोकि कैंसर समस्या का महत्त्वपूर्ण कारण है। कैंसर के खतरे को व्यक्तिगत स्तर पर समझने के लिए जरूरी है कि व्यक्ति की आनुवंशिक संरचना तथा उसके निकटतम वातावरण जिसमें वह रहता है, दोनों का अध्ययन किया जाए।

कैंसरग्रस्त फेफड़ों में अधिकतर एक जीन माइलोपरऑक्सिडेज का एक प्रतिरूप पाया जाता है। यदि किसी साधारण व्यक्ति में यह जीन प्रतिरूप पाया जाए तो उसे कैंसर के खतरे की संभावना से बचने के लिए तंबाकू का उपयोग न करने की सलाह दी जा सकती है। इस तरह उस व्यक्ति को फेफड़े का कैंसर होने के पहले सावधान करके बचाया जा सकता है।

दो तरह के एंजाइम ग्लूटाथायोन एस-ट्रांसफरेज और एन एसिटिल ट्रांसफरेज हमारे शरीर को उन हानिप्रद कारकों, जो कैंसर का रोग लगा सकते हैं, यानी कि कार्सिनोजन से मुक्त कराने में बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनमें से एन-एसिटिल ट्रांसफरेज-1 केवल मूत्राशय और कोलन में सक्रिय पाया जाता है, जिन लोगों में इन जीनों के ऐसे उत्परिवर्तित प्रतिरूप उपस्थित हों, जिनमें कार्सिनोजेन को बाहर निकालने की क्षमता न हो, उन्हें इन अंगों का कैंसर हो जाता है। जिन लोगों में ग्लूटाथायोन एस ट्रांसफरेज-1 जीन की विकृत प्रतिलिपियाँ पाई जाती हैं, उनको मूत्राशय का कैंसर होने की संभावना उन लोगों की अपेक्षा दुगुनी हो जाती है, जिनमें सामान्य जीन की प्रतिलिपि होती है। विकृत जीन की उपस्थिति या अनुपस्थिति उन लोगों में भी कैंसर के खतरे को प्रभावित करती है, जोकि धूम्रपान करते हैं।

इस प्रकार अलग-अलग लोगों में विभिन्न जीनों के कारण कार्सिनोजन का प्रभाव अलग अलग पड़ता है। वैज्ञानिकों का कहना है कि अगले 10 वर्षों में लोगों को कैंसर से खतरे के व्यक्तिगत प्रोफाइल बनाना संभव हो जाएगा। ये प्रोफाइल उन लोगों का पता लगाने में जिन्हें कैंसर से अधिक खतरा है, उन्हें उन पर्यावरणीय कारकों से दूर रखने और बचाने के उपाय बताने में बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध होंगे।

सारडीनिया इटली का एक मेडीटेरेनियन उपद्वीप है। यहाँ की स्त्रियाँ और पुरुष दुनिया में सबसे लंबी आयु के होते हैं। यहाँ प्रत्येक 10 लाख की आबादी में औसतन 135 लोग सौ वर्ष से अधिक जीते हैं। इसकी तुलना में शेष संपूर्ण विश्व में प्रत्येक 10 लाख की आबादी में केवल 70-80 लोग ही 100 वर्ष से अधिक आयु के हैं। सन् 1997 में सारडीनिया में 222 लोग 100 वर्ष से अधिक आयु के थे। विश्व में सबसे अधिक दिन तक जीवित रहनेवाला पुरुष अंटोनियो टॉड, जिसकी

मृत्यु टियना में 3 जनवरी, 2002 को हुई, यदि सिर्फ तीन हफ्ते और जिंदा रह जाता तो 113 वर्ष का हो जाता। यूरोप में सबसे अधिक जीनेवाला पुरुष जीवानी फ्राउट है, जिसकी उम्र 111 वर्ष है। सारडीनिया के लोगों की लंबी उम्र का रहस्य क्या है, वैज्ञानिक इसका कई वर्षों से अध्ययन कर रहे हैं। उनके डी.एन.ए. प्रोफाइल का गहन अध्ययन करके उनकी जेनेटिक बनावट को समझने का प्रयास किया जा रहा है। वैज्ञानिकों के अनुसार सारडीनिया के लोगों की लंबी आयु का रहस्य उन लोगों का सादा जीवन, वातावरण, शारीरिक परिश्रम, शुद्ध वायु, संतुलित भोजन का जीवन पर्यंत सेवन, झरनों का निर्मल जल, उनका स्थायी परिवार और उनकी आनुवंशिक बनावट है। सारडीनिया मनुष्य की आयु पर वातावरण के प्रभाव का एक ज्वलंत उदाहरण है।

उपरोक्त उदाहरणों से यह सिद्ध हो जाता है कि केवल जीन ही सबकुछ नहीं है। जीन और पर्यावरण का परस्पर संबंध अत्यंत महत्त्वपूर्ण है और इस ताल-मेल को पूर्णतया समझना एक बहुत बड़ी चुनौती है। इसको समझने से हमें बहुत सी बीमारियों से बचने में सफलता मिलेगी। इस तरह भविष्य में लोगों का खान-पान, उनके व्यक्तिगत आनुवंशिक गुणों के आधार पर होगा। उनके आहार में क्या सम्मिलित होना चाहिए, क्या नहीं, इसकी सलाह दी जा सकेगी। औषधि, उपचार भी प्रत्येक व्यक्ति को उसके जीनोटाइप के आधार पर ही दिया जाएगा। अगर हम वातावरण को प्रदूषित करते हैं तो उसका असर न केवल हम पर, बल्कि समस्त प्राणिमात्र के ऊपर पड़ेगा। प्रदूषण से बहुत सारे जीव-जंतु लुप्त हो सकते हैं और हो रहे हैं। इसलिए हमें ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहिए, जिससे हमारे जीनोम पर बुरा प्रभाव पड़े। हमारा जीनोम लाखों वर्षों की धरोहर है, जो हमें प्रकृति से प्राप्त हुई है। हमें इसे अगली पीढ़ियों को सुरक्षित देना है।

अत: हमें प्रकृति से अपना नाता मजबूत करने की आवश्यकता है। प्रकृति से दूर रहकर हम कई प्रकार के खतरों से घिर जाएँगे और संपूर्ण मानव जाति पर संकट मँडरा जाएगा। अत: हमें प्रकृति से तालमेल बिठाकर अपनी जीवन-शैली बनानी होगी, ताकि हम भावी पीढ़ियों के लिए इस धरोहर को सुरक्षित रख सकें।

□

5

आनुवंशिक कूट (जेनेटिक कोड) और डॉ. खुराना

प्रारंभ से ही मानव यह जानने को उत्सुक रहा है कि एक जीव किस प्रकार निषेधित डिंब को अनुदेश संपुटित करता है, ताकि उसके सदृश जीव की उत्पत्ति हो एवं क्रमश: इन अनुदेशों के अनुरूप जीव पैदा हो।

ग्रेगर मेंडल प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने मटर के पौधे पर प्रयोग करके आनुवंशिकता के अध्ययन पर प्रकाश डाला। इन प्रयोगों से उन्हें आनुवंशिकता के प्रभावों तथा लक्षणों के पृथक्करण का अवसर मिला। मेंडल ने अपने भौतिकी के पूर्व ज्ञान के आधार पर इन प्रयोगों की परिमाणात्मक व्याख्या की और आनुवंशिकी के नियमों का विवरणात्मक वर्णन किया। मेंडल ने प्रतिपादित किया कि आनुवंशिक सूचनाएँ जनक से अगली पीढ़ी में कारकों के द्वारा पहुँचती हैं, जिनके कारण मटर के पौधे में बीज का आकार, पुष्प का रंग जैसे विशिष्ट लक्षण प्रकट होते हैं।

जीन की प्रकृति का अध्ययन करने के लिए वॉटसन ने फ्रांसिस क्रिक के साथ मिलकर डी.एन.ए. की द्विकुंडलीनुमा संरचना का पता लगाया। उनकी यह ऐतिहासिक खोज सन् 1953 में 'नेचर' के अप्रैल माह के अंक में प्रकाशित हुई, जिसने जीव-विज्ञान के क्षेत्र में संपूर्ण रूप से क्रांति ला दी। डी.एन.ए. चार न्यूक्लियोटाइड बेसों तथा द्विकुंडलीनुमा तंतुओं से मिलकर बना होता है, जिसमें A के सापेक्ष T तथा C के सापेक्ष G जोड़े पाए जाते हैं। इस संरचना से यह स्पष्ट हुआ कि आनुवंशिक सूचना की कैसे कॉपी की जा सकती है एवं कभी-कभी कॉपी बनने की प्रक्रिया में गलती होने पर परिवर्तन सूचना स्थानातंरण में कैसे बाधा पहुँचती है।

वॉटसन एवं क्रिक की खोज से यह स्पष्ट हो गया कि डी.एन.ए. के

द्विकुंडलीनुमा रचना के तंतुओं में बेसों के अनुक्रम में अनुदेश कूटबद्ध होते हैं। किंतु यह प्रश्न अनुत्तरित ही रहा कि ये अनुदेश किस प्रकार पढ़े जाते हैं एवं कैसे जीव के घटकों की उत्पत्ति करते हैं ?

आनुवंशिक कूट (जेनेटिक कोड)

जब डी.एन.ए. द्वारा विशेषकों के पारेषण की प्रक्रिया का पता लगाया जा रहा था, उन्हीं दिनों कोशिका में एंजाइम के निर्माण कार्य को निर्देशित करने वाले आनुवंशिक 'कूट' का भेद खोलने के प्रयास भी चल रहे थे। यह पता था कि डी.एन.ए. की दुहरी कुंडली में उस जीव का पूरा नक्शा होता है, जिसका डी.एन.ए. है। यह भी मालूम था कि डी.एन.ए. में समाधारों (बेसेज) का क्रम ही उसका आनुवंशिक कूट (जेनेटिक कोड) बनाता है, लेकिन आनुवंशिक सूचना वास्तव में किस तरह कूटबद्ध होती है, अभी तक उसका खुलासा नहीं हुआ था। यह रहस्य खोलने का दायित्व तीन अमेरिकी जीव रसायन विज्ञानियों ने निभाया—मार्शल नीरेनबर्ग, भारत में जन्मे हरगोविंद खुराना और रॉबर्ट हॉले। इन तीनों ने ही एक-दूसरे से स्वतंत्र रूप से अलग-अलग शोधकार्य करते हुए आनुवंशिक सूचना के कूटबद्ध होने का भेद खोला।

आनुवंशिक कूट का खुलासा होने से पहले से भी, यह तो मालूम हो चुका था कि अवश्य ही त्रिक (ट्रिप्लेट) होगा। यानी डी.एन.ए. सूत्र में इसका क्रम कम-से-कम तीन न्यूक्लियोटाइडों से निबद्ध होगा। यह इसलिए कि यदि यह केवल द्विक होता, तो केवल चार न्यूक्लियोटाइड से केवल 16 संभावित संयोजन बनते। ये प्रोटीनों को बनानेवाले सभी 20 ज्ञात अमीनो अम्लों को कूटबद्ध करने के लिए काफी नहीं थे।

ओकोआ ने आर.एन.ए. के संश्लेषण की जो तकनीक विकसित की थी, उसका उपयोग करते हुए नीरेनबर्ग ने उसी न्यूक्लिक अम्ल की इकाइयों को दुहराकर संश्लेषित आर.एन.ए. बनाए, जैसे कि यूरेसिल (यू), एडिनिन (ए) और साइटोसिन (सी) को बार-बार दुहराया। उन्होंने जब इन संश्लेषित राइबोन्यूक्लिक अम्लों को रेडियो-लेबलित अमीनो अम्लों के साथ कोशिका-मुक्त किंतु डी.एन.ए.-युक्त सारों में मिलाया, तो पॉलीपेप्टाइड बने। उनमें एक ही अमीनो अम्ल बार-बार दुहराया गया था। उदाहरण के लिए एक आर. एन.ए. की शृंखला UUUUUU.....था, तो उससे जिस अमीनो एसिड ने पॉलीपेप्टाइड बनाया, वह था फिनाइल-एलनिन। इसी प्रकार जिस आर.एन.ए. में केवल AAAAAAAAAA.....क्रम था, उसमें

केवल प्रोलिन अमीनो अम्ल वाला पॉलीपेप्टाइड बना। इस तरह यह स्पष्ट हो गया कि UUU न्यूक्लीयोटाइड की तिकड़ी फेनिल-एलानिन से बना था। बनाने की कूट है, AAA लाइसीन बनाने का कूट है और CCC प्रोलीन बनाने का कूट है। इससे यह सिद्ध हो गया कि डी.एन.ए. में न्यूक्लियोटाइड की एक तिकड़ी ही डी.एन.ए. शृंखला में एक अमीनो अम्ल का कोड होती है।

नीरेनबर्ग ने अंत में सभी 20 अमीनो अम्लों की तिकड़ियाँ लीं। यही बुनियादी गारा हैं, जिनसे प्रोटीन की इमारत के लिए पॉलीपेप्टाइड की ईंटें बनती हैं। उन्होंने इस तरह यह सिद्ध कर दिया कि डी.एन.ए. में मौजूद चारों न्यूक्लियोटाइड (कुछ विषाणुओं में आर.एन.ए. में मौजूद चारों न्यूक्लियोटाइड) में से कोई भी तीन 20 में से किसी खास अमीनो अम्ल को कोशिका में प्रोटीन बनाने के लिए क्रमबद्ध करते हैं। (इसका मतलब यह हुआ कि कोई एक वंशाणु एक ही एंजाइम बनाता है, तो वह अनेक तिकड़ियों यानी कोडोनों का बना होगा)। लेकिन डी.एन.ए. में ऐसे भी कोडोन मिले, जो किसी भी वस्तु के लिए कूट नहीं बनाते हैं। इन्हें निरर्थक कोडोन (नॉनसेंस कोडोन) कहा गया। नीरेनबर्ग की टीम के एक सदस्य फिल लेडर ने बाद में यह खोज की कि विशिष्ट अमीनो अम्लों के लिए कूट का काम करने के अलावा कुछ कोडोनों में ऐसी तिकड़ियाँ होती हैं, जो अनुवाद की प्रक्रिया को शुरू करती हैं और कुछ जिसे खत्म करती हैं अर्थात् आनुवशिक कूट केवल शब्दों को ही नहीं, विरामादि चिह्नांकन को भी कूटित करता है। इस प्रकार नीरेनबर्ग ने यह दिखा दिया कि कोशिका की मशीनरी आनुवंशिक कूट का अनुवाद किस तरह करती है।

नीरेनबर्ग से बिल्कुल अलग स्वतंत्र रूप से शोधकार्य करते हुए हरगोविंद खुराना ने नीरेनबर्ग की खोज की पुष्टि की, कि आनुवंशिक सामग्री चार क्षारीय पदार्थ एवं किस तरह से यह डी.एन.ए. के बड़े अणुओं में जुड़े रहकर कोशिका के संघटन और कार्य का निर्धारण करती है। अनुसंधान के दौरान खुराना ने क्रमबद्ध विधियाँ खोजकर सुस्पष्ट न्यूक्लियोटाइड बना डाले। खुराना ने यह सिद्ध कर दिया कि मुख्य संयोजन तीन न्यूक्लियोटाइड के अलग-अलग समूहों से बनते हैं। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि कुछ समूह प्रोटीन का निर्माण शुरू करते हैं, तो कुछ उसे बंद करते हैं। उन्होंने यह भी दिखाया कि कुछ अमीनो अम्ल एक से अधिक संयोजनों से कूटित होते हैं। इस तरह खुराना ने न्यूक्लिक अम्ल संश्लेषित कर लिये और आनुवंशिक कूट का अंतिम समाधान प्रस्तुत कर दिया।

हॉले का शोधकार्य मुख्यत: टी-आर.एन.ए. से संबद्ध था। इस न्यूक्लीक अम्ल में एम-आर.एन.ए. का आनुवंशिक कूट पढ़ने की क्षमता होती है और यह संबंधित

प्रोटीन का कोशिका के अंदर रूपांतरण कर सकता है। वर्षों तक उन्होंने यीस्ट पर अनुसंधान किया और टी-आर.एन.ए. बना डाला, जोकि ऐलानिन अमीनो अम्ल को शुद्ध रूप में प्रोटीन अणु बनाने में इस्तेमाल किया जा सकता था और अंत में सन् 1965 में उन्होंने वास्तविक रासायनिक संरचना भी ज्ञात कर ली। उन्होंने फिर यह भी दिखाया कि टी-आर.एन.ए. किस तरह कोशिका के अंदर खास अमीनो अम्लों को चुनता है और उनको पूर्व-निर्धारित क्रम में सँजोकर राइबोसोम में पहुँचाता है। वहाँ वे आपस में जुड़कर कोशिका के डी.एन.ए. में दिए गए नक्शे के अनुसार खास प्रोटीनों का निर्माण करते हैं। आनुवंशिक कूट के इस भेद का खुलासा करने के लिए नीरेनबर्ग, खुराना और हॉले को सन् 1968 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

सन् 1977 में जब यह खोज की गई कि वंशाणु अनेक अलग-अलग खंडों में उपस्थित हो सकते हैं, तो मानो वंशाणु-कथा में एक नया मोड़ आया। दो वैज्ञानिकों—रिचर्ड जे. रॉबर्ट्स, जो कोल्ड स्प्रिंग हार्बर लेबोरेटरी में काम करते थे और मेसाचुशेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी में कार्यरत फिलिप ए. शार्प ने एक-दूसरे से स्वतंत्र कार्य करते हुए यह मार्के की खोज की। दोनों ने अपने शोध के लिए जुकाम पैदा करनेवाले विषाणु-एडीनोवाइरस को चुना। इसके वंशाणु उच्च श्रेणी के जीवों में महत्त्वपूर्ण समानताएँ रखते हैं। इन दोनों वैज्ञानिकों ने खोज की कि वंशाणु में डी.एन.ए. के एक नहीं बल्कि अनेक खंड हो सकते हैं, जिनको बीच-बीच में मौजूद असंगत डी.एन.ए. खंड एक-दूसरे से अलग रखते हैं। इन असंगत डी.एन.ए.-खंडों को 'स्प्लिट जींस' कहा गया, अर्थात् विच्छेदक वंशाणु। जो वंशाणु-खंड अलग-अलग स्थित होते हैं, उन्हें 'एक्सोन' तथा उनके बीच में मौजूद वंशाणु-खंडों को 'इंट्रोन' कहा गया। (यह आकलित किया गया है कि मानव-डी.एन.ए. का केवल पाँच प्रतिशत ही प्रोटीन बनाने के संदेश को कूटबद्ध करता है)। इस खोज का मतलब यह हुआ कि जो एकल वंशाणु एकल एंजाइम के निर्माण का नियंत्रक है, उसमें अनेक एक्सोन तथा इंट्रोन होते हैं। अनुलेखन (ट्रांसक्रिप्शन) के दौरान न्यूक्लियोटाइड शृंखला इस तरह खुलती है कि सभी एक्सोन साथ आकर एम-आर.एन.ए. को आनुवंशिक कूट की प्रतिलिपि बनाने का मौका देते हैं।

इस जानकारी ने हमारी इस धारणा में आमूल परिवर्तन ला दिया कि विकास के दौरान आनुवंशिक सामग्री कैसे बनी होगी! इस खोज से एक नए आनुवंशिक प्रक्रम का भी भेद खुला, जिसे 'स्प्लिसिंग' यानी विच्छेदन कह सकते हैं। आनुवंशिक

सूचना को प्रव्यक्त करने के लिए यह प्रक्रम आवश्यक है। साथ ही यह जानकारी कि वंशाणु प्राय: विच्छेदित होते हैं, मिलने से यह संभावना भी प्रकट हुई कि उच्च श्रेणी के जीवों में उत्परिवर्तनों के अतिरिक्त विकास में तीव्रता लेने की एक और प्रक्रिया हो सकती है, जिसमें वंशाणु खंड स्वयं को नई क्रियाशील इकाइयों में पुनर्विन्यस्त कर लेते हैं। इस प्रकार का प्रक्रम मॉड्यूलों को विशिष्ट कार्य सौंपकर उनके नए विन्यास बना सकता है, ताकि विकास क्रम तेजी से चले। इससे हीमोफीलिया और थैलासीमिया जैसे जन्मजात रोग क्यों होते हैं, इसका भी रहस्य खुलता है। इन जन्मजात रोगों के बारे में यह माना जाता है कि स्प्लिसिंग यानी विच्छेदन की जिस क्रिया में माध्यमिक आर.एन.ए. उत्पाद डी.एन.ए. की अनुकृतियाँ बनाते हैं, इस समय किसी वंशाणु में कोई भूल होने से ही वंशागत रोग पैदा होते हैं। इस प्रकार संबंध-वंशाणु वर्तमान जीव विज्ञान में मूलभूत अनुसंधान के लिए बुनियादी महत्त्व के तो सिद्ध हुए ही, वंशागत तथा अन्य रोगों के पैदा होने के बारे में चिकित्सा-अनुसंधान के लिए भी इनका महत्त्व स्पष्ट हुआ। विच्छेदन-वंशाणु की उत्कृष्ट खोज के लिए रॉबर्ट्स और शार्प को सन् 1993 का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

वंशाणुओं की क्रिया के हमारे ज्ञान-वर्धन का अगला चरण तीन परिवर्धन-जैविकीविदों के अनुसंधानों से प्रशस्त हुआ, जिन्होंने भ्रूण के प्रारंभिक परिवर्तन की महत्त्वपूर्ण आनुवंशिक प्रक्रिया खोज निकाली। ये तीन वैज्ञानिक थे—लॉस एंजेल्स में स्थित कैलिफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी के एडवर्ड बी. लेविस तथा हीडलबर्ग की यूरोपियन मोलीक्यूलर बायोलॉजी लेबोरेटरी के क्रिस्टिआने नुसलीन-वोल्हार्ड और एरिक एफ बीसचॉस। इन तीनों ने फल-मक्खी पर काम किया और उन वंशाणुओं की पहचान की, जो शरीर के निर्माण की योजना तथा विविध देह-खंडों की रचना में शामिल होते हैं। उन्होंने आगे यह भी पता लगाया कि विविध देह-खंडो से परिवर्धित होकर विशिष्ट अंग कैसे बनते हैं। नुसलीन-वोल्हार्ड, बिस्कॉस और लेविस द्वारा खोजे गए अधिकतर वंशाणु मानव-भ्रूण के प्रारंभिक परिवर्धन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन वंशाणुओं में होनेवाले उत्परिवर्तनों पर ही यह आशंका व्यक्त की गई कि संभवत: अपने आप मानव भ्रूण का जल्दी गर्भपात इनके कारण ही होता होगा और अज्ञात कारणों से 40 प्रतिशत के करीब जो जन्मजात कुरचनाएँ पैदा होती हैं, उनका भी उत्तरदायित्व इन्हीं उत्परिवर्तनों पर होगा। इस प्रकार शिशुओं में जन्मजात विकृतियों के आनुवंशिक नियंत्रण के हमारे ज्ञान के अनेक द्वार इन तीनों वैज्ञानिकों की खोजों से खुले। इस महत्त्वपूर्ण अनुसंधान के लिए लेविस, नुसलीन-वोल्हार्ड या बिस्कॉस को सन्

1995 का नोबेल पुरस्कार संयुक्त रूप से देकर सम्मानित किया गया।

आनुवंशिक कूट का रहस्य खोलकर और इसके कार्य के विशदीकरण से आणविक जैविकी में एक क्रांति आ गई, जिसने पिछले कुछ दशकों में वंशागति की हमारी समझ का विशद् विस्तार किया। अब तो यह भलीभाँति स्पष्ट हो गया है कि किस तरह डी.एन.ए. का मास्टर अणु बड़े बारीक और सुसंगत टीमवर्क में अनेक अणुओं को शामिल करके विविध कोशिकीय प्रक्रमों को कार्यान्वयन करता है, जो किसी भी सचेतन जीवन को जीवंत बनाते हैं। इस ज्ञान से उन अनेक रोगों का भी भेद खुला, जिन्हें पैदा करने में वंशागति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सच तो यह है कि इन खोजों के आधार पर ही आगे चलकर मानव जीनोम परियोजना की बुनियाद रखी गई।

आनुवंशिक कूट हल करने की पृष्ठभूमि

वॉटसन और क्रिक द्वारा डी.एन.ए. की संरचना की खोज के तुरंत बाद सन् 1954 में रूस में जनमे अमेरिकी भौतिकीविद् और विज्ञान लेखक जॉर्ज गैमा ने सुझाव दिया कि डी.एन.ए. में समाधारों का क्रम, जिसे हम 'जेनेटिक कोड' कहते हैं, उसकी भूमिका निभाता होगा। यह 'जेनेटिक कोड' यानी आनुवंशिक कूट ही कोशिका में चलनेवाली क्रियाओं का नियामक है और यही क्रियाएँ जीव को वह बनाती हैं जोकि वह हैं। लेकिन यह 'कूट' कैसे काम करता था और वास्तव में था क्या, यह तब तक रहस्य बना हुआ था। असल में दो भिन्न प्रक्रियाओं की वास्तविकता मालूम करनी थी (i) डी.एन.ए का अणु अपनी प्रतिलिपियाँ कैसे बनाता है, और (ii) डी.एन.ए. का कूट प्रोटीन में कैसे रूपांतरित होता है।

जब वॉटसन और क्रिक ने दुहरी कुंडली वाली संरचना प्रस्तावित की थी, तो उन्होंने बताया था कि प्रतिकृति (रेप्लीकेशन) के समय डी.एन.ए. के दो सूत्र अपने आप को खोलकर अलग हो जाते हैं और वे एक-दूसरे के पूरक होते हैं। प्रत्येक सूत्र नए पूरक सूत्र के निर्माण के लिए फरमा (टैंपलेट) का निर्माण करता है। सच तो यह है कि डी.एन.ए. के दो सूत्रों में समाधारों की पूरक बंधशीलता की संभावना ने ही वॉटसन और क्रिक को तिहरी कुंडली की बजाय दुहरी कुंडली प्रस्तावित करने के लिए प्रेरित किया था। यह फौरन स्पष्ट हो गया कि दो पूरक सूत्रों का संश्लेषण होने से दो समरूप 'दुहरी' कुंडलियाँ बन जाएँगी और उनमें से प्रत्येक में एक सूत्र 'पुराना' सूत्र होगा, जो जनक अणुओं से आता होगा तथा दूसरा सूत्र नया संश्लेषित सूत्र होगा।

इस परिकल्पना की पहली पुष्टि अमेरिकी आनुवंशिकीविद् फ्रेंकलिन डब्ल्यू. स्टाहल और उनके सहयोगी आणविक जैविकीविद् मैथ्यू एस. मेसलसन ने की। इन दोनों ने यह दिखाया कि कोशिका में पुराने डी.एन.ए. की नकल से ही नया डी.एन.ए. बनता है, जैसाकि कैंब्रिज के दोनों वैज्ञानिकों, वाटसन और क्रिक ने प्रस्तावित किया था। कुशलतापूर्वक किए गए प्रयोगों की शृंखला से मेसलसन और स्टाहल ने यह कर दिखाया कि डी.एन.ए. अणु का प्रत्येक सूत्र दोनों संतति कोशिकाओं में अपरिवर्तित रूप में जा पहुँचता है, जैसाकि वाटसन और क्रिक ने सुझाया भी था। अपने प्रयोगों में मेसलसन और स्टाहल ने रेडियोधर्मिता से लेबलित नाइट्रोजन के आइसोटोप इस्तेमाल किए और वे संवर्धों में जीवाणु की क्रमिक पीढ़ियों में किस तरह एक से दूसरी में पारेषित होते हैं, इसका प्रेक्षण किया।

डी.एन.ए. के दोनों सूत्रों की पूरक प्रकृति का आगे और भी प्रमाण मिला, जो कि अमेरिकी जीव रसायन विज्ञानी आर्थर कोर्नबर्ग के शोधकार्य से मिला। कोर्नबर्ग वाशिंगटन यूनिवर्सिटी के सूक्ष्मजैविकी विभाग के निदेशक थे। उन्होंने सचेतन जीव न्यूक्लियोटाइडों का निर्माण किस तरह करते हैं, इस पर अपना शोधकार्य केंद्रित किया। उसके बाद उन्होंने यह पता लगाया कि न्यूक्लियोटाइड किस तरह पिरोए जाते हैं, ताकि डी.एन.ए. अणु बन जाए। जब वे इस अनुसंधान में संलग्न थे, तभी सन् 1956 में कोर्नबर्ग ने एक एंजाइम को विलगित करके उसका शुद्धीकरण किया। यह एंजाइम ई. कोलाई नामक जीवाणु से पृथक् किया गया था और आजकल उसे 'डी.एन.ए. पोलीमरेज' के नाम से जानते हैं। यह एंजाइम कुछ न्यूक्लिओटाइड निर्माण-खंडों के साथ परखनली में डी.एन.ए. खंडों की हू-ब-हू प्रतिकृतियाँ बना सकता है। कोर्नबर्ग ने आगे यह भी कर दिखाया कि किस तरह प्रतिकृतियाँ बनाते समय प्रतिवलन के दौरान कोशिका में डी.एन.ए. की शृंखलाएँ बनती हैं। इस क्रिया में डी.एन.ए. के आधे अणु द्वारा उपलब्ध कराए गए फरमे किस तरह पूरक न्यूक्लियोटाइड बन जाते हैं, यह भी साफ हो गया। उन्होंने यह भी सिद्ध कर दिया कि प्रतिलिपियाँ तभी बनती हैं, जब साबुत डी.एन.ए. का फरमा और न्यूक्लियोटाइड मौजूद होते हैं। अगर डी.एन.ए. का फरमा खंडित होगा, या चारों न्यूक्लियोटाइडों में से कोई भी अनुपस्थित होगा तो डी.एन.ए. का सूत्र संश्लेषित नहीं होगा।

इसी बीच सन् 1955 में स्पेन में जनमे जीव रसायन विज्ञानी सेवेरो ओकोया ने जीवाणु में एक और एंजाइम खोजा, जोकि न्यूक्लियोटाइडों को उत्प्रेरित करके आर.एन.ए. का निर्माण करने में सक्षम था। उन्होंने इस एंजाइम का नाम 'पॉली-न्यूक्लियोटाइड फोस्फोरिलेज' रखा। लेकिन आश्चर्य की बात यह हुई कि परखनली

में तो इस एंजाइम ने आर.एन.ए. के संश्लेषण में मदद की, लेकिन कोशिका के प्राकृतिक परिवेश में उसने आर.एन.ए. का अपघटन कर डाला। परंतु फिर भी यह एंजाइम एकनिष्ठ रूप से उपयोगी सिद्ध हुआ, क्योंकि इसने उस प्रक्रम को समझने में वैज्ञानिकों की सहायता की, जिससे वंशाणुओं में मौजूद आनुवंशिक सूचना का आर.एन.ए. की माध्यमिकता से उन एंजाइमों में अनुवाद होता है, जो फिर प्रत्येक कोशिका के कार्य और अभिलक्षण निर्धारित करते हैं। डी.एन.ए. और आर.एन.ए. के जैवसंश्लेषण की प्रक्रिया का रहस्य खोलने में अपने उत्कृष्ट योगदान के लिए कोर्नबर्ग और ओकोया को सन् 1959 में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

जैसाकि हम सभी जानते हैं, अपने आनुवंशिक कूटों सहित डी.एन.ए. अधिकांशत: कोशिका के केंद्रक में पाया जाता है। लेकिन प्रोटीन का संश्लेषण कोशिका से बाहर कोशिकाद्रव्य में होता है। अत: अगला सवाल यह पैदा हुआ कि डी.एन.ए. केंद्रक में बैठा-बैठा बाहर कोशिकाद्रव्य में प्रोटीन के निर्माण की दिशा किस तरह निर्धारित करता है ? अब इसका उत्तर खोजा जाना था। डी.एन.ए. एक 'ब्लूप्रिंट' की तरह होता है। इसे पढ़ना होता है और इसमें लिखा संदेश किसी एजेंट तक पहुँचना होता है, जो अमीनो अम्लों को एक साथ जोड़कर विशिष्ट प्रोटीन का निर्माण करे। यह विचार मूलत: तो फ्रांसिस क्रिक ने ही दिया था कि डी.एन.ए. से संदेश ले जानेवाला कोई डाकिया अणु होना चाहिए, जो कोशिका को केंद्रक से बाहर से कोशिकाद्रव्य में सूचना पहुँचाए। उन्होंने यह भी सुझाव दिया था कि दूसरी किस्म का न्यूक्लिक अम्ल आर.एन.ए. आमतौर पर कोशिका के कोशिकाद्रव्य में पाया जाता है और वह इस भूमिका को निभा सकता है। संक्षेप में कहें तो क्रिक ने यह प्रस्तावित किया कि डी.एन.ए. आनुवंशिक कूट के आधार पर प्रोटीन संश्लेषण जिस मार्ग से करता है, वह 'डी.एन.ए. से आर.एन.ए. और आर.एन.ए. से प्रीटीन' था। यह स्कीम 'सेंट्रल डोग्मा' यानी 'मूल हठधर्म' कहलाई। इस स्कीम में पहले आर.एन.ए. में आनुवंशिक कूट की अनुकृति बनाई जाती है। इस प्रक्रम को 'अनुलेखन' (ट्रांसक्रिप्शन) कहते हैं। फिर आर.एन.ए. से मिली सूचना का उपयोग कोशिकाद्रव्य में मौजूद राइबोसोम प्रोटीन बनाने में करता है। यह प्रक्रम 'स्थानांतरण' (ट्रांसलेशन) कहलाता है।

डी.एन.ए. की भाँति आर.एन.ए. की रीढ़ भी शर्करा-फॉस्फेट की बनी होती है, लेकिन आर.एन.ए. में शर्करा डिराइबोज की बजाय राइबोज होती है। एक और अंतर यह है कि आर.एन.ए. में दुहरी कुंडली नहीं होती और वह केवल एक सूत्र वाला अणु होता है। साथ ही आर.एन.ए में नाइट्रोजनी समाधार थायमीन की

जगह यूरेसिल (यू) होता है। लेकिन इससे कोई समस्या नहीं पैदा होती, क्योंकि यूरेसिल भी पिरिमिडीन समाधार होता है और थायमिन की तरह एडेनीन के साथ जोड़ा बनाता है। इसकी उपस्थिति के कारण आर.एन.ए. को पूरक सूत्र के रूप में काम करने में कोई कठिनाई नहीं होती और अनुलेखन के समय आधे डी.एन.ए. सूत्र के साथ आर.एन.ए. अपना मेल बिठा लेता है। इस प्रकार वाहक आर.एन.ए. डी.एन.ए. से उसमें निहित आनुवंशिक सूचना की आसानी से नकल कर लेता है, जोकि एक पूरक सूत्र बनाने से उसमें आ जाती है।

सन् 1956 में रूमानिया में जनमे अमेरिकी जीव रसायन विज्ञानी जॉर्ज ई. पलाड ने एक और महत्त्वपूर्ण खोज की। कोशिकाओं के इलेक्ट्रॉन माइक्रोग्राफों का ध्यान से अध्ययन करके पलाड ने कोशिकाद्रव्य में कुछ बारीक कण खोजे, जिनके बारे में उसने यह प्रदर्शित कर दिखाया कि यही वे स्थान हैं, जहाँ प्रोटीन का संश्लेषण होता है। ये कण आकार में इतने छोटे थे कि इनका व्यास एक सेंटीमीटर के 20 लाखवें हिस्से के बराबर था। इनमें आर.एन.ए. की काफी मात्रा पाई गई, इसलिए इनको 'राइबोसोम' कहा गया।

अब आगे जो प्रश्न उठा और जिसका उत्तर खोजना शेष था, वह था, जो अमीनो अम्ल अंत में प्रोटीन-शृंखला बनाते हैं, वे वाहक आर.एन.ए. उन अमीनो अम्लों की पहचान कैसे करते हैं? जिन्हें एक साथ क्रमबद्ध रूप में जोड़कर पॉलीपेप्टाइड शृंखला बनानी होती है? इसकी व्याख्या के लिए क्रिक ने एक 'एडाप्टर' अणु के अस्तित्त्व का प्रस्ताव रखा, जो प्रत्येक अमीनो अम्ल के लिए अलग होता है और आनुवंशिक कूट को पढ़कर विकसित हो रही पॉलीपेप्टाइड शृंखला में शामिल कर देता है। क्रिक के ये एडाप्टर अणु बाद में अल्प अणुभार वाले आर.एन.ए. के रूप में पहचाने गए, लेकिन बाद में इनको 'ट्रांसफर' यानी 'टी-आर.एन.ए.' कहा गया। इस नाम से अमीनो अम्लों को प्रोटीन संश्लेषण के लिए राइबोसोम तक ढोने की उनकी भूमिका की ठीक-ठाक पहचान होती है।

लेकिन यह तो स्पष्ट था कि जैसे भी करते हों, वंशाणु (जीन) हर समय प्रोटीन ही नहीं बनाते रहते। अत: वंशाणु को व्यक्त करने की भी कोई प्रक्रिया अवश्य होगी, जो इसका नियमन करती होगी। तीन फ्रांसीसी वैज्ञानिकों फ्रैंकोइस जैकब, जैक्वीस मोनोद और आंद्रे ल्वोफ के शोधकार्य से कोशिका-वृद्धि को डी.एन.ए. का आनुवंशिक कूट किस तरह नियमित करता है, इसका पहला संकेत मिला।

□

6

डी.एन.ए. की व्याख्या में डॉ. खुराना का योगदान

हमारे व्यक्तित्व को बनाने में डी.एन.ए. की विशेष भूमिका है। यह डी.एन.ए. अर्थात् डी ऑक्सीराइबो न्यूक्लीक अम्ल—हमें अपने माता-पिता से विरासत में आनुवंशिक उपहार के रूप में मिला है।

किसी भी प्राणी का जीनों सहित संपूर्ण डी.एन.ए. 'जीनोम' कहलाता है। जीन डी.एन.ए. का एक छोटा हिस्सा है, जो आनुवंशिकता की मूलभूत इकाई है। प्रत्येक जीन में प्रोटीनों के निर्माण के लिए कोडबद्ध निर्देश होते हैं। ये प्रोटीन ही प्राणी के विशिष्ट गुणों, जैसे त्वचा का रंग, बालों की बनावट या फिर भोजन के उपापचय की क्षमता आदि का निर्धारण करते हैं। आनुवंशिक सूचना जीनों में ऐडेनीन (A), थायमीन (T), साइटोसिन (C) और ग्वानीन (G) नामक बेसों के रैखिक क्रम में निहित होती है। बेसों के प्रत्येक त्रिसमूह जैसे ACG में एक विशिष्ट अमीनो अम्ल का संकेत होता है, जो एक प्रोटीन का निर्माण करता है। डी.एन.ए. में न्यूक्लियोटाइडों के क्रम और प्रोटीनों में अमीनो अम्लों के क्रम के संबंध को आनुवंशिक कोड कहा जाता है। डी.एन.ए. के एक टुकड़े में ऐसे बेस युग्मों के वास्तविक क्रम का निर्धारण 'अनुक्रमण' यानी 'सीक्वेंसिंग' कहलाता है।

व्यक्तियों के बीच आनुवंशिक विविधता अनेक स्तरों पर होती है। ऐसा मानव क्रोमोसोम में किसी बड़े परिवर्तन के कारण हो सकता है। जैसे किसी व्यक्ति में एक अतिरिक्त क्रोमोसोम आ जाए अथवा कोई क्रोमोसोम कम हो। सामान्यत: आनुवंशिक सामग्री की संरचना में ही बहुत बारीक अंतर होते हैं। जीवन की विविधता का रहस्य इन्हीं बारीक अंतरों में निहित है। एकल न्यूक्लियोटाइड के

स्तर पर मौजूद विविधताओं को एकल न्यूक्लियोटाइड बहुरूपता यानी 'सिंगल न्यूक्लियोटाइड पालीमार्फिज्म' कहा जाता है। एक अन्य प्रकार की विविधता है प्रतिलिपि संख्या विविधता, जिसमें एक ही जीन अनेक प्रतियों में बहुगुणित होकर मौजूद रहता है। ऐसी विविधता भी होती है जब डी.एन.ए. का कोई हिस्सा अपने क्रोमोसोम से बाहर निकल गया हो और गलत तरफ से इसमें फिर प्रवेश कर गया हो।

इस तरह विभिन्न लोगों में जीनों का आनुवंशिक क्रम बहुत कुछ एक जैसा होता है, लेकिन पूर्णत: समरूप नहीं होता। शुरू में यह अनुमान लगाया गया था कि किन्हीं दो व्यक्तियों के डी.एन.ए. में 99.9 प्रतिशत समरूपता हो सकती है, लेकिन अब लगता है कि यह 99.5 प्रतिशत तक ही होती है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारतीय जीनोम में भी अब तक अज्ञात अनेक विविधताओं का पता लगा है। इनमें एक न्यूक्लियोटाइड में परिवर्तन तथा डी.एन.ए. के कुछ हिस्सों का जुड़ जाना या विलोपन शामिल है।

पृथ्वी पर बसनेवाले लोगों में से 60 प्रतिशत, विश्व के सबसे बड़े महाद्वीप एशिया में बसते हैं और आनुवंशिक विविधता का एक विशाल स्रोत हैं। इस अत्यधिक प्रचुर मानव संपदा के अंशदाता, हजारों वर्षों में विश्व के विभिन्न भागों से प्रवासित होकर यहाँ बस गए अज्ञात पूर्वज ही हैं। माना जाता है कि पैतृक मानव समुदाय मूल रूप से अफ्रीका से फैले, जहाँ से वे धीरे-धीरे भूमंडल के विभिन्न भागों में जलवायु, आहार और स्वास्थ्य अवस्थाओं के दबाव में अनुकूलित होते गए। एशियाई समुदायों की वर्तमान आनुवंशिक मानव विविधता इन्हीं उत्तम अनुकूलित लोगों के कारण है, जो उस स्थान पर जीवित रह पाने के लिए उपयुक्त सिद्ध हुए। यह प्रत्येक व्यक्ति के जीनों में लिखे विशेष संकेतक चिह्नों के जरिए मानव समुदायों की पैतृकता की खोज करना है।

स्मरण रहे, जब खुराना ने जीव-विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान आरंभ किया था, उस समय तक विज्ञानियों को जीन और उसकी प्रकृति के बारे में काफी कुछ पता लग चुका था। वे जान चुके थे कि जीन कोशिकाओं के केंद्रक में वर्तमान गुणसूत्रों में पंक्तिबद्ध स्थित होते हैं। जीन डीऑक्सीराइबोन्यूक्लिक अम्ल या डी.एन.ए. का बना होता है। यही महारसायन आनुवंशिक गतिविधियों का संचालन जैव रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा करता है। डी.एन.ए. एक घुमावदार सीढ़ीनुमा संरचना है, एक डबल हेलिक्स है। इस सीढ़ी का प्रत्येक पायदान चार प्रकार के न्यूक्लियोटाइड्स की एक जोड़ी से बना होता है। प्रत्येक न्यूक्लियोटाइड में तीन अंग होते हैं—शर्करा,

फॉस्फेट और क्षार। चारों न्यूक्लियोटाइड्स डी.एन.ए. की सीढ़ी में आनुवंशिकता वाहक गुप्त शब्दों (कोडवर्ड्स) के रूप में व्यवस्थित रहते हैं। क्षार चार तरह के होते हैं—पिरामिडीन समूह के थायमीन और सायटोसीन (संक्षेप में 'टी' और 'सी') और प्यूरीन समूह के एडिनीन और गुआनीन (ए और जी)।

अब तक यह भी ज्ञात हो गया था कि डी.एन.ए. के साँचे पर तीन प्रकार के राइबोन्यूक्लिक अम्ल या आर.एन.ए.-दूत या मैसेंजर आर.एन.ए. (एम-आर.एन.ए.) वाहक या ट्रांसफर आर.एन.ए. (टी-आर.एन.ए.) और राइबोजोमल आर.एन.ए. (आर-आर.एन.ए.) का प्रतिलेखन होता है। आर.एन.ए. एक ही लड़ी की बनी होती हैं और इसमें थाइमीन की जगह यूरेसिल नामक क्षार और डीऑक्सीराइबोज की जगह राइबोज नामक शर्करा होते हैं। एम-आर.एन.ए. ट्रिप्लेट या त्रयक के रूप में आनुवंशिक सूचनाओं को संप्रेषित करता है। सजीव कोशिका में प्रोटीन संश्लेषण निम्न प्रकार होता है : प्रोटीन की संरचना डी.एन.ए. में मुद्रित रहती है। एम-आर.एन.ए. आनुवंशिक सूचनाओं के साथ केंद्रक से कोशिका रस या साइटोप्लाज्म में पहुँचता है और अमीनो अम्लों को क्रमबद्ध जोड़कर उन्हें प्रोटीन का रूप देता है। दूसरे शब्दों में, एम-आर.एन.ए. एक साँचे का काम करता है। विशिष्ट एंजाइमों की सहायता से टी.आग्एनस कोशारस में विद्यमान स्वतंत्र अमीनो अम्लों का उचित चुनाव करता है और एम-आर.एन.ए. के साथ जोड़ता है। यह काम अंतजालिका (एंडोप्लाज्मिक रेटिकुलम) पर स्थित गोलाकार कणों राइबोजोम्स की सतह पर होता है। राइबोजोम में एक खास तरह का आर.एन.ए. और प्रोटीन होता है। यह तीनों प्रकार के आर.एन.ए. का मिलन बिंदु है और प्रोटीन संश्लेषण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

आनुवंशिक गुप्तलिपि को समझने के लिए यह जानना जरूरी था कि किस प्रकार तीन अक्षरों वाले ये गुप्त शब्द (दूसरे प्रकार की वर्णमाला) जो 20 प्रकार के अमीनो अम्ल के रूप में होते हैं, में अनुदित होते हैं? इस अनुवाद की प्रकृति पर, अंशत: ही सही, खुराना से पहले भी शोधकार्य हो चुके थे। 1961 में राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान (एन.आई.एच) के मार्शल नीरेनबर्ग ने सफलतापूर्वक न्यूक्लियोटाइड्स के अधिकांश संदेशों का कूटानुवाद कर लिया था। उन्होंने पता कर लिया था कि आनुवंशिक भाषा त्रयकों या ट्रिप्लेट्स में लिखी होती है और इसमें कुल मिलाकर 64 संभव त्रयक होते हैं। प्रत्येक त्रयक का विशिष्ट अमीनो अम्ल के लिए अपना विशिष्ट संकेत होता है। लेकिन यह पता नहीं चल सका था कि कौन सा त्रयक किस अमीनो अम्ल का संकेत देता है। कहा जा सकता है कि आनुवंशिक कोड

का शब्दकोश तो नहीं, लेकिन उसका व्याकरण तैयार हो चुका था।

1964 में डॉ. खुराना ने मास्टर अणु डी.एन.ए. के कुछ अंशों का संश्लेषण करने में सफलता प्राप्त की थी। बाद में इसके प्रत्येक संभव त्रयक की अनुलिपि भी बना डाली। उन्होंने न्यूक्लियोटाइडों, आनुवंशिक अक्षरों के सही अनुक्रमों का मानचित्रण किया और दर्शाया कि आनुवंशिक कोड हमेशा तीन अक्षरों के शब्दों द्वारा संप्रेषित होता है। उन्होंने यह भी दर्शाया कि कुछ त्रयक कोशिका की प्रोटीन का निर्माण आरंभ या विराम करने का निर्देश भी देते हैं। हरगोविंद खुराना का शोधकार्य अंशत: मार्शल नीरेनबर्ग और कोरनेल विश्वविद्यालय के रॉबर्ट हॉली द्वारा स्वतंत्र रूप से किए गए शोधकार्यो का विस्तारण था। इन दोनों ने सर्वप्रथम न्यूक्लिक अम्ल अणु की रूपरेखा प्रस्तुत की थी। 1968 में नीरेनबर्ग, हॉली, खुराना को आनुवंशिक कोड को उजागर करने के लिए कायकी या चिकित्सा विज्ञान का नोबेल पुरस्कार सम्मिलित रूप से प्रदान किया गया। इन तीनों ने मिलकर आधुनिक जीव विज्ञान का सर्वाधिक उत्तेजक अध्याय जो लिखा था। प्रकृति का महान् रहस्य खुल गया था। जीवन की भाषा अब पढ़ी जा सकती थी। 64 संभव त्रयकों में 61 त्रयक 20 प्रकार के विशिष्ट अम्लों के निर्माण का निर्देश देते हैं। फिर एक अमीनो अम्ल का निर्धारण एक से अधिक त्रयकों द्वारा भी हो सकता है। इन्हीं अम्लों द्वारा प्रोटीन की लड़ियाँ बनती हैं। बचे हुए त्रयकों में से दो त्रयक, यूएए और यूएजी सिर्फ विराम चिह्न का काम करते हैं और एयूजी, जो मिथियोनीन बनाता है, आरंभ चिह्न का।

नोबेल पुरस्कार प्राप्ति के ठीक दो वर्षों के बाद जून 1970 में उन्होंने पहली बार यीस्ट के एक संपूर्ण जीन, जो एलानीन टी-आर.एन.ए. के लिए उत्तरदायी होता है, का कृत्रिम संश्लेषण करने में सफलता पाई। इस उत्कृष्ट सफलता की घोषणा उन्होंने विस्कांसिन विश्वविद्यालय में आयोजित एक वैज्ञानिक गोष्ठी में बड़ी ही विनम्रता से की थी। इस गोष्ठी में उन्होंने यह भी बताया कि शीघ्र ही वे अपने शोधदल के साथ मेसाचुएट्स तकनीकी संस्थान (एनआईटी) में योगदान करने जा रहे हैं। उनका विश्वास था कि बौद्धिक रूप से सक्रिय और जीवित रहने के लिए बीच-बीच में स्थान और अकादमिक वातावरण में परिवर्तन करना आवश्यक है। एमआईटी में वे जीव और रसायन विज्ञान के प्रतिष्ठित अल्फ्रेड पी. स्लोन प्रोफेसर के पद पर आसीन हुए। 1976 में उन्होंने परखनली में एक अन्य जीन का निर्माण किया। इस बार यह जीन था, मनुष्यों की छोटी आँत में वर्तमान जीवाणुओं ई. कोलाई का। इस महत्त्वपूर्ण उपलब्धि ने भावी जीन इंजीनियरी की दिशा तय कर दी

थी। अब जीन इंजीनियर कृत्रिम जीन का उपयोग महत्त्वपूर्ण प्रोटीनों के निर्माण या आनुवंशिक बीमारियों के निदान में कर सकते थे। 1980 में उन्होंने अपने शोध की दिशा रोडोप्सिन नामक रंजक (पिरामेंट) के रसायन और आणविक जीव-विज्ञान की ओर मोड़ दी। रोडोप्सिन स्तनपाइयों की आँखों की रेटिना में प्रकाश को आर-पार ले जाने में मदद करता है। उनकी टोली रोडोप्सिन जीन का संश्लेषण करने में सफल रही। फिर उन्होंने इस जीन की क्रियाविधि और अभिव्यक्ति का विस्तृत अध्ययन किया। 1990 के दशक में उनका यह शोधकार्य 'रेटिनाइटिस पिगमेंटोसा' नामक वंशानुगत दृष्टिहीनता के निदान में बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

डॉ. खुराना का डी.एन.ए. संबंधित शोधकार्य

जीवित कोशिकाओं में आनुवंशिक सूचनाओं की भाषा क्या है? यह किस लिपि में लिखी होती है? फिर इस आनुवंशिक भाषा का अनुवाद किस प्रकार होता है? क्या एक संपूर्ण जीन को परखनली में बनाया जा सकता है? इन प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने में सबसे आगे रहे भारतीय मूल के अमेरिकी विज्ञानी हरगोविंद खुराना। उन्होंने न केवल आनुवंशिक गुप्तलिपि (जेनेटिक कोड) के अधिकांश रहस्यों से परदा हटाया, बल्कि एक संपूर्ण जीन का कृत्रिम संश्लेषण करने में भी सफलता प्राप्त की।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में जब एक पादरी ग्रेगर मेंडल ने अपने मटर-प्रजनन संबंधी प्रसिद्ध प्रयोग किए, तब से ही यह ज्ञात है कि लंबाई और रंग जैसी शारीरिक विशेषताएँ वंशानुक्रम की इकाइयों के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुँचती हैं, जिसे बाद में जीन के नाम से जाना गया। लेकिन जीन की भौतिक विशेषता तब तक वैज्ञानिकों की समझ में नहीं आई, जब तक वर्ष 1944 में अमेरिका के ओसवाल्ड ऐवरी, कॉलिन मैकलॉयड और मैकलिन मैकार्टनी ने सर्वप्रथम यह प्रायोगिक प्रमाण उपलब्ध नहीं करा दिया कि आनुवंशिक सूचना का संचरण डी.एन.ए. के माध्यम से होता है। उन्होंने दर्शाया कि अहानिकर जीवाणु को हानिकर प्रकार में बदलने के लिए, जिसके कारण न्यूमोनिया भी हो सकता है, न्यूमोनिया उत्पन्न करनेवाले जीवाणु से डी.एन.ए. के स्थानांतरण की आवश्यकता होती है। इन प्रयोगों ने यह सुझाया कि जीन डी.एन.ए. से बने होते हैं और इन्होंने वैज्ञानिकों के बीच में, यह सुलझाने के लिए कि किस प्रकार जीन अपना प्रभाव सभी जीवित प्राणियों पर डालते हैं, डी.एन.ए. की सही-सही संरचना ज्ञात करने की होड़ शुरू कर दी।

आनुवंशिकी के क्षेत्र में प्रगति के साथ ही एक प्रमुख मील का पत्थर थी,

डीऑक्सीरिबोन्यूक्लिक एसिड (डी.एन.ए.) की खोज। डी.एन.ए. में ही जीन होता है। ब्रिटिश शोधकर्ता रोजासिंड फ्रेंकलिन और मौरिस विलकिंस ने डी.एन.ए. तंतुओं (फाइबर) से बिखरने वाली एक्स-किरणों से पैदा होनेवाले प्रारूपों का अध्ययन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि डी.एन.ए. की संरचना सीमित और कुंडली के आकार की होती है। डी.एन.ए. के अवयवों की बनावट और विशेषताओं की जानकारी और ज्ञान के आधार पर वर्ष 1953 में इंग्लैंड में जेम्स वॉटसन और फ्रांसिसी क्रिक ने डी.एन.ए. का एक प्रारूप (मॉडल) सामने रखा। इस प्रारूप में कुंडली के आकार में गुँथी हुई दो लड़ियाँ आपस में अणु आकार पायों (मॉलिक्युलर रंग्स) की एक शृंखला द्वारा एक-दूसरे से जुड़ी होती हैं। उन्होंने यह विचार सामने रखा कि प्रत्येक 'पाया' दो रासायनिक क्षारक युग्मों, एडिनोसिन-थाइमिन (A-T) और गुआनिन साइटोसिन (G-C) से मिलकर बना होता है। इन वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला कि A, T, G और C का अनुक्रम डी.एन.ए. की लड़ी पर आधारित होता है, जो सभी जीवित प्राणियों के लिए आनुवंशिक सूचना को संघटित करती है। साथ ही उन्होंने यह भी दर्शाया कि युग्म की रचना होने के दौरान डी.एन.ए. की लड़ी संभवत: पृथक् होकर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को आनुवंशिक सूचना पहुँचाने का काम करती हैं।

अमेरिका आने के समय तक विस्कांसिन विश्वविद्यालय में जीन संरचना के बारे में नवीनतम जानकारी हासिल करने के लिए काफी बड़ा आधार तैयार हो गया था। किस प्रकार सेलों के जींस इसके एंजाइम तैयार करते हैं, जो सेलों की जैव-रासायनिक प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं। यह जानकारी भी मिल चुकी थी कि जीन्स दरअसल डी ऑक्सीराइबोन्यूक्लिक एसिड अर्थात् डी.एन.ए. के दोहरी चेन वाले अणु हैं, जो चार न्यूक्लियोटाइड्स से अलग-अलग अनुपात में बनते हैं। ये चार न्यूक्लियोटाइड्स हैं—एडनीन, साइटोसीन, ग्वानीन और थियामीन। अब वैज्ञानिक इस खोज में जुटे थे कि किस प्रकार वंशानुगत गुण अलग-अलग अमीनो एसिड तैयार करते हैं, जो प्रोटीन अणु तैयार करते हैं।

इस प्रक्रिया का एक हिस्सा ज्ञात हो चुका था और इसके अनुसार कोशिका के केंद्रक का डी.एन.ए. दूसरे न्यूक्लिक एसिड रिबोन्यूक्लिक एसिड अर्थात् आर.एन.ए. तैयार करता है, जोकि माता-पिता के गुणों के प्रतिबिंब पर आधारित होता है। इसमें सिर्फ एक अंतर होता है और वह यह है कि थियामीन न्यूक्लियोटाइड्स के स्थान पर यूरोसिल बेसेस आ जाते हैं।

एक बार बनने के बाद आर.एन.ए. रिबोसोम से जुड़ जाता है, जोकि कोशिका

की प्रोटीन संरचना का स्थान होता है। दूसरे प्रकार का आर.एन.ए. कोशिका में बन रहे अमीनो एसिड को ले लेता है और रिबोसोम तक ले जाता है, जहाँ उनसे प्रोटीन बनता है। इस प्रकार हर बार अलग-अलग अमीनो एसिड बन जाता है और अलग-अलग आर.एन.ए. भी होता है। चार न्यूक्लियोटाइड्स कुल मिलाकर 64 प्रकार के न्यूक्लियोटाइड्स की रचना कर सकते हैं और उस समय यह पता करना आवश्यक था कि किस न्यूक्लियोटाइड्स से कौन सा अमीनो एसिड बनता है।

1961 में डॉ. मार्शल डब्ल्यू नीरेनबर्ग ने इस कोड का पहला शब्द ढूँढ़ा। उन्होंने साधारण आर.एन.ए. पॉलीमर को जोड़ा, जोकि यूरेसिल न्यूक्लियोटाइड्स की चेन होता है। उन्होंने एक परखनली में कृत्रिम आर.एन.ए., जिसमें रिबोसोम तथा 20 अमीनो एसिड थे, मिलाया और रेडियोधर्मी कार्बन का प्रयोग करके 63 संभावित न्यूक्लियोटाइड्स यौगिकों में ज्यादातर का पता लगा लिया।

नीरेनबर्ग की खोज के बाद 1964 तक डॉ. खुराना ने कृत्रिम रूप से तैयार न्यूक्लियोटाइड्स तैयार कर लिया। उसके बाद नीरेनबर्ग की खोज को प्रमाणित करते हुए 64 ट्राई न्यूक्लियोटाइड्स में एक-एक को दोबारा तैयार करने की प्रक्रिया प्रारंभ की। उन्होंने अन्य विवरण भी ज्ञात किए, जैसे न्यूक्लियोटाइड्स की हर तिकड़ी में कैसा क्रम होता है। उन्होंने यह भी बताया कि कुछ अमीनो एसिड में एक से ज्यादा तिकड़ी होती है।

यह भी पता लगा लिया गया कि कुछ ट्राईन्यूक्लियोटाइड्स प्रोटीन के निर्माण को प्रारंभ करने और रोकने में सहायक होते हैं। कार्नियेल विश्वविद्यालय के डॉ. रॉबर्ट हॉली ने जींस की कोडिंग प्रक्रिया को आगे बढ़ाया और यीस्ट में पाए जानेवाले न्यूक्लिक एसिड को अलग किया।

डी.एन.ए. से संबंधित कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य

1. डी.एन.ए. आनुवंशिक पदार्थ है। हर व्यक्ति डी.एन.ए. को अपने जन्म देने वाले माता-पिता से प्राप्त करता है।
2. कोशिकाओं से बने ऊतकों द्वारा मानव शरीर की संरचना होती है। सामान्यत: कोशिकाओं में एक केंद्रक होता है। केंद्रक में गुणसूत्र होते हैं। डी.एन.ए. और प्रोटीन मिलकर गुणसूत्र बनते हैं।
3. डी.एन.ए. दो तंतुओं से बनता है। डी.एन.ए. का प्रत्येक तंतु अनेक मूल इकाइयों से बनता है। ये चार प्रकार (ATGC) की होती हैं, जिन्हें न्यूक्लियोटाइड कहा जाता है।

4. डी.एन.ए. के दोनों तंतु संपूरक न्यूक्लियोटाइडों द्वारा आपस में जुड़े रहते हैं।
5. प्रत्येक कोशिका में 3-5 % डी.एन.ए. कोशिका के कार्य को नियंत्रित करता है और यह हर मानव में प्राय: समान होता है, शेष 95-97% डी.एन.ए. को बेकार 'जंक' डी.एन.ए. कहते हैं, क्योंकि उसके कार्य का वैज्ञानिकों को अभी भी पता नहीं लगा है। इसी जंक डी.एन.ए. का केवल(0.1%) भाग व्यक्तिगत विविधता प्रदर्शित करता है।
6. इस शेष 95-97% डी.एन.ए. में अनुबद्ध (टैंडम) शृंखलाएँ बार-बार दोहराई हुई पाई जाती हैं। अनुबद्ध शृंखलाएँ हमारे दैनिक जीवन का एक अनुभव है।
7. मानव की एक कोशिका के डी.एन.ए. की लंबाई करीब 6 फीट होती है।
8. उम्र के साथ व्यक्ति के डी.एन.ए. में कोई बदलाव नहीं आता है। अत: जन्म और मरण के समय डी.एन.ए. एक ही समान रहता है।
9. एक व्यक्ति के किसी भी ऊतक की किसी भी कोशिका से लिया गया डी.एन.ए. एक ही प्रकार का डी.एन.ए. फिंगरप्रिंटिंग प्रतिचित्र प्रदर्शित करता है।
10. सामूहिक बलात्कार की घटना में सम्मिलित हर बलात्कारी की पहचान डी.एन.ए. फिंगर प्रिंटिंग तकनीक द्वारा अलग-अलग की जा सकती है।

डी.एन.ए. नमूना तैयार करना

साधारणतया डी.एन.ए. रूधिर, वीर्य, ऊतकों, रक्त तथा वीर्य के धब्बों, बालों की जड़ों आदि से प्राप्त किया जाता है। ऊतकों के नमूनों का स्वच्छ, शुष्क एवं शीत भंडारण करते हैं, जिससे इनमें सूक्ष्मजीवों का संदूषण न हो और डी.एन.ए. का पाचन न हो। डी.एन.ए. को निम्न विधि से तैयार करते हैं—

1. प्रोटीनेस कैसे कोशिका लयन एवं प्रोटीन पाचन करते हैं। शेष बचे प्रोटीन को उपयुक्त डिटरजेंट की सहायता से विलग करते हैं। फिनाल के उपयोग से आर.न.ए. को निकाल देते हैं और शुद्ध उच्च अणुभार वाला डी.एन.ए. नमूना तैयार करते हैं। यदि पीसीआर का उपयोग किया जाता है, तो शोधन आवश्यक नहीं होता, लेकिन पी सी आर अभिक्रिया

के निरोधकों को हटाना जरूरी होता है।

2. बलात्कार की शिकार महिला के योनि कूर्ची में शुक्राणु एवं योनि की कोशिकाएँ दोनों ही उपस्थित होती हैं। विशिष्ट निष्कर्षण विधियों से केवल शुक्राणु का डी.एन.ए. प्राप्त कर सकते हैं।
3. स्पसीज विशिष्ट अन्वेषियों के उपयोग से सदर्न संकरण द्वारा डी.एन.ए. का मानव से प्राप्त होना सुनिश्चित करते हैं। डी.एन.ए. अपघटन का पता लगाने के लिए डी.एन.ए. की ऐगरोस जेल इलेक्ट्रोफोरेसिस करके, एथीडियम ब्रोमाइड से अभिरंजन करते हैं। उच्च अणु भार डी.एन.ए. एक बड़े पट्टे के रूप में दिखता है, जबकि अपघटित डी.एन.ए. से लंबा आलेप सा बनता है।
4. नमूने में डी.एन.ए. की मात्रा 260 एनएम पर अवशोषित या किसी अन्य विधि से ज्ञात करते हैं।

डी.एन.ए. विश्लेषण की विधियाँ

डी.एन.ए. विश्लेषण के लिए इसके कुछ विशिष्ट क्रमों, जैसे VNTR (Variable Number of Tandem Repeats विविधतापूर्ण संख्या में अनुक्रम आवर्ती आदि की बहुरूपिता का अध्ययन करते हैं, जिसके लिए RFLP या PCR का उपयोग करते हैं। डी.एन.ए. नमूनों अथवा उनके पीसीआर उत्पादों के निम्न 3 विश्लेषण कर सकते हैं (1) वीएनटीआर विश्लेषण (2) डॉट ब्लॉट विश्लेषण, तथा (3) क्षारक क्रम विश्लेषण।

वीएनटीआर विश्लेषण : उच्च अणु भार डी.एन.ए. का आर.एफ.एल.पी. विश्लेषण करते हैं। अन्यथा पीसीआर उत्पादों से आरएपीडी पैटर्न ज्ञात करते हैं। इसके लिए आंशिक रूप से अपघटित डी.एन.ए. नमूनों का भी उपयोग किया जा सकता है।

डॉट बलॉट विश्लेषण : पीसीआर द्वारा डी.एन.ए. नमूनों में उपस्थित उस क्रम/जीन/विस्थल को आवर्धित करते हैं, जिसकी बहुरूपिता ज्ञात करनी है। पीसीआर उत्पादों को उपयुक्त झिल्ली पर स्थिर करके संबंधित विकल्पी के लिए विशिष्ट अन्वेषियों से संकरित करते हैं। संकरण केवल उन्हीं डॉटों में होगा, जिनमें यह विकल्प उपस्थित होगा।

क्षारक क्रम विश्लेषण : डी.एन.ए. के अतिविविधतापूर्ण क्षेत्र का क्षारक क्रम ज्ञात करके प्रोफाइल का निर्माण कर सकते हैं।

आरएफएलपी, आरएपीडी तथा डॉट ब्लॉटों के पैटर्न को रंजकों, प्रकाशदीप्त रंजकों, रेडियो समस्थानिकों अथवा अन्य रंजकों, जैसे चाँदी के उपयोग से ज्ञात कर सकते हैं।

आँकड़े एकत्रित करना एवं उनका प्रक्रमण

छोटे स्तर पर आँकड़ों को हाथों से एकत्र एवं प्रक्रमित करते हैं। किंतु बड़े पैमाने पर ये काम कंप्यूटर की सहायता से किए जाते हैं।

अनुप्रयोग

डी.एन.ए. फिंगर प्रिंटिंग से विभिन्न जीवों एवं उनके विभेदों की शंकारहित पहचान की जा सकती है। मानव में इस विधि से निम्न की पहचान कर सकते हैं—(1) अपराधी (2) हत्या अथवा दुर्घटना के शिकार, (3) किसी बच्चे के पिता तथा या माता, (4) आनुवंशिक रोग आदि।

अब तो सर्वव्यापी डी.एन.ए. किसी भी दूसरे उपलब्ध प्रमाण की कहीं अधिक विश्वसनीय पहचानकर्ता बन गया है। परंपरागत उँगलियों की छाप से पहचानने के लिए त्वचा पर बने उभारों की बनावट को मिलाया जाता है। लेकिन 'डी.एन.ए. फिंगर प्रिंटिग' या 'डी.एन.ए. टाइपिंग' में डी.एन.ए. में न्यूक्लियोटाइडों का क्रम उँगलियों की छाप जैसा कोई अनुठा छाप नहीं बनाता, बल्कि डी.एन.ए. के दो नमूनों का मिलान करके यह पता लगाया जा सकता है कि दोनों नमूने आपस में संबंधित व्यक्तियों के हैं या असंबंधित व्यक्तियों के हैं।

इसके लिए वैज्ञानिक डी.एन.ए. के अनुक्रमों की छोटी संख्या का उपयोग करते हैं, जो व्यक्तियों में बहुत भिन्न होते हैं और उसके बाद उनका मिलान करने के लिए विश्लेषण करते हैं। यह विधि इतनी विश्वसनीय है कि दो डी.एन.ए. छापों के एक से होने की प्रायिकता या संभावना लाखों में एक होती है। परंपरागत उँगलियों के निशान लेने के तरीके से तुलना करें तो डी.एन.ए. छाप लेने के बहुत से तरीके हैं। बाल, खून, लार, वीर्य, त्वचा, यहाँ तक कि नाखूनों के टुकड़ों से भी डी.एन.ए. छाप बनाई जा सकती है, क्योंकि ये सब कोशिकाओं के बने होते हैं, जिनमें डी.एन.ए. होता है।

हम मनुष्यों की देह की प्रत्येक कोशिका में गुणसूत्रों के 23 जोड़े होते हैं, जिनमें डी.एन.ए. के ब्लूप्रिंट के रूप में वह समस्त सामग्री कूटबद्ध होती है, जिसकी हमारी देह के निर्माण में जरूरत पड़ती है। इसमें यह संदेश भी होता है कि उस ब्लूप्रिंट का उपयोग कैसे किया जाता है। गुणसुत्रों के हर जोड़े का एक सदस्य माता से आता है

और दूसरा पिता से। हमारी देह की प्रत्येक कोशिका में इस डी.एन.ए. की प्रतिलिपि होती है। हालाँकि डी.एन.ए. का अधिकांश एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में समान होता है, लेकिन डी.एन.ए. के करीब 30 लाख समाधार-युग्म यानी, कुल डी.एन.ए. छाप की कुंजी डी.एन.ए. के उन्हीं भागों में है, जो एक व्यक्ति से दूसरे में भिन्न होते हैं, यानी अनूठे होते हैं।

आश्चर्य की बात यह है कि मानव की इतनी जटिलता के बावजूद मानव-जीनोम का केवल पाँच प्रतिशत ही वंशाणुओं का बना होता है और वंशाणुओं में पाए जानेवाले व्यक्तिगत भेद डी.एन.ए. छाप के लिए कोई खास उपयोगी नहीं होते। हमारी आनुवंशिक सामग्री का बाकी 95 प्रतिशत किसी प्रोटीन के लिए कूटबद्ध नहीं होता। यही कारण है कि जो अनुक्रम कूटित नहीं होते, उन्हें 'जंक डी.एन.ए.' कह दिया जाता है। लेकिन फिर पता चला कि इसमें भी समाधार-युग्मों के दुहरे अनुक्रम होते हैं। इन अनुक्रम को 'वेरिएबल नंबर टेंडम रिपीट्स' कहा जाता है, यानी वीएनटीआर। इनमें 20 से 100 तक समाधार-युग्म (बेस पेयर्स) हो सकते हैं। डी.एन.ए. के इन भागों में कोई भी खास अनुक्रम एक ही पंक्ति में एक से 30 बार तक दुहराया जा सकता है। किसी भी व्यक्ति के वीएनटीआर उस आनुवंशिक सूचना से संबंधित होते हैं, जो माता-पिता से मिलती है। इस प्रकार किसी भी व्यक्ति में वीएनटीआर माता या पिता या दोनों का मिश्रण हो सकता है, लेकिन कोई वी एन टी आर कभी भी ऐसा नहीं होता कि न माता से आया हो और न पिता से।

सन् 1984 में ब्रिटेन के आनुवंशिकीविद् एलेक जैफ्रीस ने डी.एन.ए. छाप तकनीक खोजी थी। उसने डी.एन.ए. के कुछ अनुक्रमों का दुहराया जाना खोज लिया और यही दुहरे अनुक्रम बाद में वीएनटीआर कहे गए। उन्होंने यह खोज भी की कि प्रत्येक व्यक्ति में वीएनटीआर का अनुक्रम अनूठा होता है। केवल समरूप जुड़वा संतानों में ये एक से होते हैं। केवल यही अपवाद है। इसलिए अगर इन दोहराई गई इकाइयों का पैटर्न मालूम कर लिया जाए तो किसी व्यक्ति की शिनाख्त की जा सकती है। इसमें कोई संदेह की गुंजाइश नहीं है।

डी.एन.ए. छाप बनाने में मूलत: कथित अपराधी के वीएनटीआर का दृश्य अभिलेखों में अनुवाद करना होता है। फिर इनकी तुलना ज्ञात स्रोतों से प्राप्त नमूनों से की जाती है। ये नमूने, जो शिकार हुआ है, उसकी देह से या अपराध के स्थल से उठाए जाते हैं। फिर उस डी.एन.ए. को अलग-अलग लंबाई के टुकड़ों में काट लिया जाता है। इसके लिए प्रतिबंधक एंजाइम इस्तेमाल किए जाते हैं। इस तरह से जो टुकड़े प्राप्त होते हैं, उन्हें 'रेस्ट्रिक्शन फ्रेगमेंट लैंथ पॉलीमोर्फिज्म' यानी आरएफएलपी के

लिए जाँचा जाता है। यह उन वीएनटीआर खंडों पर केंद्रित होता है, जिनमें डी.एन.ए. के समाधारों का अनुक्रम दुहराया गया होता है। ये एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में व्यापक रूप से भिन्न होते हैं।

आरएफएलपी की जाँच के लिए अलग-अलग लंबाई के डी.एन.ए. खंड आकार के अनुसार छाँटने के लिए एक तकनीक इस्तेमाल की जाती है, जिसे 'जैल इलैक्ट्रोफोरेसिस' कहते हैं। इस तकनीक में इन खंडों का मिश्रण एक जेल में रखा जाता है और फिर उसमें विद्युतधारा प्रवाहित की जाती है। विद्युतधारा प्रवाहित करने पर अपने आकार के अनुसार डी.एन.ए. के खंड धनात्मक ध्रुव की ओर गति करते हैं। अंत में आकार के अनुसार विन्यस्त डी.एन.ए. खंडों के बैंड बन जाते हैं। इस तरह से इकट्ठे हुए दोहरे-सूत्र वाले डी.एन.ए. खंडों को उष्मा से या रसायनों से उपचारित करके डी.एन.ए. के एकल सूत्रों में अलग कर दिया जाता है। इस तरह से इलैक्ट्रोफोरेसिस से एकल सूत्री डी.एन.ए. के बैंड का एम पैटर्न मिल जाता है। इसको फिर नाइलॉन या नाइट्रोसल्यूलोज की बनी झिल्ली पर ब्लेट कर लिया जाता है, यानी उतार लिया जाता है। इसी को 'सदर्न ब्लॉटिंग' कहते हैं। यह नाम ब्रिटेन के जीवविज्ञानी एडवर्ड एम. सदर्न के नाम पर रखा गया है, जिन्होंने इस तकनीक की खोज की थी।

इसके बाद एकल-सूत्री डी.एन.ए. के प्रोब को रेडियोआइसोटोप से टैग कर दिया जाता है और सदर्न ब्लॉट के साथ रख दिया जाता है। यह विशेष रूप से डिजाइन किया गया प्रोब सूत्री डी.एन.ए. के विशिष्ट वीएनटीआर खंडों के साथ बंधित हो जाता है, यानी नाइलोन-सा नाइट्रोसेल्यूलोज झिल्ली पर उसके साथ आ जाता है। प्रोब की फालतू सामग्री धोकर हटा दी जाती है और तब बचा रहता है रेडियोएक्टिव आइसोटोप के टैग वाला एकलसूत्री डी.एन.ए. खंड। अब इस सदर्न ब्लॉट की एक्सरे-फिल्म उतारी जाती है। इस फिल्म में केवल वे अंश छप जाते हैं, जो रेडियोएक्टिव टैग वाले होते हैं। जब इस एक्स-रे फिल्म को डेवलप किया जाता है, तो काले रंग के बैंड का एक पैटर्न उभर आता है। यही डी.एन.ए.-छाप है। इसके शोधकर्ता किसी खास व्यक्ति के डी.एन.ए. में प्रोब में मौजूद खास आनुवंशिक पैटर्न की आवृत्ति को पहचान लेते हैं। अगर डी.एन.ए.-छाप बनाने के लिए उपलब्ध डी.एन.ए. की मात्रा बढ़ाई जाती है।

पीसीआर ऐसी तकनीक है, जिससे डी.एन.ए. के विशिष्ट खंड की असंख्य प्रतिलिपियाँ बिल्कुल सही-सही और बड़ी तेजी से बनाई जा सकती हैं। इस तकनीक से अन्वेषकों को प्रयोगों और अपराध विज्ञान संबंधी विश्लेषण के लिए आवश्यक

डी.एन.ए. की बड़ी मात्रा प्राप्त हो जाती है। इस तकनीक का विकास सन् 1983 में अमेरिकी जीव रसायन विज्ञानी मुलिस ने किया था। इस प्रक्रम में तीन चरण होते हैं, जोकि उन प्राकृतिक प्रक्रमों पर आधारित होते हैं, जिन्हें कोई कोशिका डी.एन.ए. के नए सूत्र की प्रतिलिपि बनाने में इस्तेमाल करती है। पीसीआर के लिए केवल कुछ जैव घटक ही जरूरी होते हैं। पीसीआर की खोज से पहले डी.एन.ए. खंडों की प्रतियाँ बनाने या उनकी मात्रा बढ़ाने के लिए बड़े श्रम और समय-साध्य तरीके इस्तेमाल किए जाते थे। इसके विपरीत पीसीआर पूर्णत: स्वचालित तकनीक है। पीसीआर-अभिक्रियाओं को संपन्न करनेवाली एक मशीन बनाई गई है, जोकि कई बार प्रतिलिपियाँ बनाने का काम कुछ घंटों में पूरा करके डी.एन.ए. की लाखों-करोड़ों प्रतियाँ बना देती है।

भारत में डी.एन.ए.-छाप बनाने के लिए डी.एन.ए. प्रोब बनाने की खोज 'सेंटर फॉर सेल्यूलर एंड मोलीक्यूलर बायोलोजी', हैदराबाद के डॉ. लालजी सिंह ने की। उन्होंने प्रोब का विकास करने के लिए भारत के विषैले साँप ब्रैंडेड क्रेट के डी.एन.ए. अनुक्रमों का उपयोग किया।

अब तो डी.एन.ए.-छाप की तकनीक न्याय-प्रणाली का अविभाज्य अंग बन गई है। अनेक देशों में अभियोजक इस तकनीक का अधिकाधिक प्रयोग करके अपराधियों की शिनाख्त के लिए और उन्हें दंड दिलाने में कराते रहे हैं।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि डी.एन.ए. हमारी जीवन-चर्या की सभी गतिविधियों के लिए आवश्यक सूचनाओं का कोष है। आवश्यकता के अनुसार इन सूचनाओं का उपयोग शरीर की विभिन्न कोशिकाएँ करती हैं। कौन-कौन सी सूचना शरीर के किस अंग, किस कोशिकाओं को उप्लब्ध होगी और कब उपलब्ध होगी, यह अत्यंत जटिल और नियोजित प्रक्रिया द्वारा तय होता है। हमारे डी.एन.ए. पर अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं विशेष संशोधन पाए जाते हैं, जिन्हें 'एपिजेनेटिक्स संशोधन' कहते हैं। इनमें एपिजेनेटिक मिथाइलेशन महत्त्वपूर्ण है। डी.एन.ए. मिथाइलेशन एक विशेष पैटर्न अथवा प्रतिमान बनाता है। कई डी.एन.ए. मिथाइलेशन पैटर्न अत्यंत विशिष्ट होते हैं। व्यक्ति की आयु बढ़ने पर एक विशिष्ट बदलाव प्रदर्शित करते हैं। ये एपिजेनेटिक बदलाव इतने सटीक होते हैं कि उनके पैटर्न को पढ़कर व्यक्ति की आयु की सटीक गणना की जा सकती है। हाल ही में वैज्ञानिकों ने ऐसे ही डी.एन.ए. मिथाइलेशन पैटर्न का अध्ययन कर मनुष्यों की उम्र की गणना $\pm$ 3.6 की सटीकता के साथ करने में सफलता पाई है।

□

7

गुणसूत्र संबद्धता और डॉ. खुराना

वर्ष 1890 की शुरुआत में जीव वैज्ञानिकों ने महसूस किया कि आनुवंशिकता के तत्त्व कोशिका के केंद्रक में पाए जाते हैं। केंद्रक के सबसे महत्त्वपूर्ण घटक गुणसूत्र होते हैं। वर्ष 1882 में बाल्थर फ्लेमिंग ने सेलामेंडर लार्वा की कोशिकाओं के भीतर विभाजित होनेवाली तंतुनुमा सूक्ष्म रचनाएँ देखीं, जिन्हें बाद में गुणसूत्र नाम से जाना गया। गुणसुत्र कोशिका वृद्धि के प्रत्येक चक्र के साथ द्विगुणित होते एवं आनुवंशिक निर्देशों की कॉपी करते समय विभाजित होते हुए दिखे। वर्ष 1902 में वॉल्टर सटन ने मेंडेल के कारक तथा गुणसूत्र के अंतर्संबंधों की व्याख्या की, जिसके फलस्वरूप जीवस्तर से लेकर उप-कोशिकीय स्तर तक आनुवंशिकी का विस्तार संभव हुआ। उस समय तक जीन और गुणसूत्र के बीच संबंध को स्पष्ट करना एक चुनौती बना हुआ था। उसके पश्चात् कोलंबिया विश्वविद्यालय के थामस हंट मोर्गन एवं उनके सहयोगियों ने प्रयोगशाला में फलमक्खी (ड्रोसोफिला) के अध्ययन से इस पर और अधिक प्रकाश डाला। उन्होंने अपने लिकेज मैप संबंधित अध्ययन से पुष्टि की कि कुछ लिंग-निर्धारण जीन विशिष्ट गुणसूत्रों पर स्थित होते हैं।

वर्ष 1927 में हरमन मूलर ने जीन के आणविक मूर्तरूप का संभावित प्रस्ताव प्रतिपादित किया तथा यह बताया कि फलमक्खी के जीन एक्स-रे के द्वारा परिवर्तित किए जा सकते हैं। इस अध्ययन से आनुवंशिकता का अध्ययन करनेवाले वैज्ञानिकों को जीन संरचना समझने का एक महत्त्वपूर्ण साधन हाथ लगा। मूलर के शोध से पता लगा कि जीन एक भौतिक तत्त्व होते हैं, जो कोशिका के अन्य अणुओं की तरह क्षतिग्रस्त हो सकते हैं। यद्यपि मुख्य प्रश्न अनसुलझा रहा कि कौन से अणु वंशानुगति के लिए जिम्मेदार हैं? इसके एक साल के भीतर ही इंग्लैंड की सेना के चिकित्सा अधिकारी फ्रेड ग्रिफ्रिथ ने एक महत्त्वपूर्ण अध्ययन में यह पाया कि

संक्रामक रोग फैलाने वाले जीवाणु न्यूमोकोक्स से प्राप्त अर्क में रोग रहित स्ट्रेन में संक्रमित करने की क्षमता होती है। इस प्रकार प्राप्त अर्क को अज्ञात प्रिंसिपल नाम दिया गया, जो बेक्टीरिया के रोग फलने के गुण रहित स्ट्रेन को संक्रमणशील बनाने की क्षमता रखता था। संक्रमण फैलाने की इस घटना को उन्होंने 'रूपांतरण' नाम दिया। इस प्रकार फ्रेड ग्रिफिथ ने एक उदाहरण प्रस्तुत किया कि महत्त्वपूर्ण खोजों को अंजाम देने के लिए दक्ष वैज्ञानिक होना आवश्यक नहीं है।

वैज्ञानिकों के लिए संक्रमण फैलाने वाले इस भ्रांतिजनक रूपांतरण सिद्धांत को समझना अत्यावश्यक था। न्यूयॉर्क के रॉक फेलर इंस्टीट्यूट के शोधकर्ताओं के दल के सदस्य ओसवाल्ड एवरी, कोलिनमैक्लाड एवं मैक्लीन मैकार्टी ने इस अज्ञात प्रिंसिपल को विलग करने का कार्य किया। उन्होंने वर्ष 1944 में दर्शाया कि संक्रमणकारी जीवाणु से प्राप्त डीऑक्सी राइबो न्यूक्लिक एसिड (डी.एन.ए.) अणु (न कि प्रोटीन) आनुवंशिक निर्देशों को स्थानांतरित करते हैं। उन्होंने अपने अध्ययनों में पाया कि डी.एन.ए. नष्ट कर देने से वंशानुगत निर्देश स्थानांतरित नहीं हो पाए, जबकि जीवाणु प्रोटीन को नष्ट करने से सूचना स्थानांतरण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

इस समय तक यह ज्ञात हो चुका था कि डी.एन.ए. रासायनिक रूप से एडेनीन, साइटोसीन, गुवानीन तथा थाईमीन (संक्षिप्त रूप में ए, सी, जी एवं टी) नाम के चार बिल्डिंग ब्लॉकों से मिलकर बना होता है, जिन्हें 'बेस' कहते हैं। इसके साथ ही इन बेसों के गुणों एवं उनके संपूरक प्रकृति से संबंधित सूचना का भी लगातार खुलासा होने लगा (ए, टी का संपूरक है तथा सी, जी का संपूरक है) वर्ष 1940 के अंत में एर्विन चार्गाफ ने डी.एन.ए. की संरचना के बारे में महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया कि एडीनीन तथा थायमीन और साइटोसीन व गुवानीन के बीच सीधी अनुरूपता होती है। इस जानकारी से डी.एन.ए. की संरचना को समझने में क्रांतिकारी सफलता मिली।

इस पृथ्वी के सभी सजीव प्राणी एक जीवित इकाई से बने हैं, जिसे हम कोशिका कहते हैं। मानव शरीर में सौ लाख करोड़ ट्रिलियन कोशिकाएँ होती हैं। प्रत्येक कोशिका के अंदर रेड ब्लड एवं प्लेटलेट्स को छोड़कर, एक केंद्रक होता है। केंद्रक के अंदर पाई जानेवाली धागेनुमा संरचनाओं को गुणसूत्र कहा जाता है। मानव शरीर की प्रत्येक कोशिका में 46 गुणसूत्र होते हैं, जिनमें से 23 गुणसूत्र पिता से शुक्राणु द्वारा एवं 23 गुणसूत्र माँ के डिंब द्वारा आते हैं। शुक्राणु द्वारा डिंब को निषेषित किए जाने के बाद गुणसूत्रों की संख्या 46 हो जाती है। एक सूक्ष्म गुणसूत्र, जिसे वाई (Y) गुणसूत्र कहा जाता है, वह केवल पुरुष में ही पाया जाता है। जब

यह गुणसूत्र मौजूद रहता है, तब भ्रूण का विकास एक पूरुष के रूप में होता है और इसकी अनुपस्थिति से भ्रूण एक स्त्री के रूप में विकसित होता है। आणविक स्तर पर देखने से हमें पता चलता है कि प्रत्येक गुणसूत्र की संरचना प्रोटीन एवं न्यूक्लिक एसिड से मिलकर बनी होती है। यह न्यूक्लिक एसिड, डीऑक्सीराइबोन्यूक्लिक एसिड है।

गुणसूत्र संबद्धता

डॉ. खुराना ने दुनिया को बताया कि माता-पिता के गुण संतान में उनके शरीर में स्थित कोशिकाओं के केंद्र में स्थित क्रोमोसोम अर्थात् गुणसूत्र के जरिए आ जाते हैं। उन्होंने अपने वैज्ञानिक साथियों के साथ मिलकर प्रयोगशाला में एक ऐसे जीन का निर्माण भी कर डाला, जिसमें फेरबदल करके संतान के गुणों में परिवर्तन किया जा सकता है।

मनुष्य में संपूर्ण आनुवंशिक पदार्थ (डी.एन.ए.) 46 गुणसूत्रों में बँधा रहता है। इनमें कोई भी खराबी, जैसे कि एक संपूर्ण गुणसूत्र या इसके किसी एक भाग के अधिक या कम हो जाने के कारण आनुवंशिकीय बीमारियाँ हो जाती हैं। आनुवंशिकीय बीमारियाँ एक और श्रेणी की हो सकती हैं, जिनमें गुणसूत्र में काई बदलाव नजर नहीं आता और इन बीमारियों का कारण गुणसूत्रों में पाई जानेवाली जीन की खराबी हो सकता है, या बहुत सारी जीनों में एक साथ खराबी के कारण हो सकती है। इन बीमारियों के कारणों का पता लगाने के तरीके अलग-अलग होते हैं। गुणसूत्रों की खराबी का पता लगाने के लिए अधिकतर हमारे रक्त में पाए जानेवाली श्वेत रक्त कोशिका का उपयोग किया जाता है। जीन में खराबी का पता लगाने के लिए श्वेत कोशिकाओं से ही डी.एन.ए. निकालकर उसका उपयोग किया जाता है।

प्रत्येक कोशिका के केंद्रक में डी.एन.ए. अणुसूत्र के रूप में स्थित रहते हैं, जिन्हें गुणसूत्र कहते हैं। प्रत्येक गुणसूत्र डी.एन.ए. से निर्मित होता है, जो इसकी संरचना को आधार प्रदान करनेवाले हिस्टीन नामक प्रोटीनों के चारों ओर कुंडली के रूप में लिपटा होता है। जिस समय कोशिका का विभाजन नहीं होता है तो कोशिका के केंद्रक में गुणसूत्र सूक्ष्मदर्शी से भी दिखाई नहीं देते। लेकिन गुणसूत्रों को बनाने वाला डी.एन.ए. कोशिका विभाजन के दौरान और अधिक संघनित हो जाता है और सूक्ष्मदर्शी से दिखाई देने लगता है। शोधकर्ताओं का गुणसूत्रों के बारे में जो भी ज्ञान है, वह अधिकांश: कोशिका विभाजन के दौरान गुणसूत्रों के प्रेक्षणों से प्राप्त हुआ है। यह पाया गया कि प्रत्येक गुणसूत्र में एक संकीर्णन बिंदु होता

है, जिसे 'सेंट्रोमियर' कहते हैं। यह गुणसूत्रों को दो खंडों या भुजाओं में विभाजित करता है। गुणसूत्रों के सिरे पर लंबी संरचनाएँ भी होती हैं, जिन्हें टैलोमर कहते हैं। टेलोमर कोशिका के जीवन के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। वे किसी कोशिका के विभिन्न गुणसूत्रों के सिरों को अचानक एक-दूसरे के साथ जुड़ जाने से रोकते हैं।

सन् 1960 के दशक में हुई शोधों के परिणामस्वरूप टेलोमेरेज नामक एक असाधारण एंजाइम की पहचान हुई, जो टेलोमरों पर प्रभाव डालता है और कई मानव कैंसरों के लिए उत्तरदायी माना जाता है। इस अंतिम खोज ने यह संभावना जगाई है कि ऐसी औषधियाँ, जो इस एंजाइम को रोक सकेंगी, वे अनेक प्रकार के कैंसरों के उपचार में काम आ सकेंगी। इस शोध से इस संभावना का भी पता चला कि समय के साथ टेलोमरों की लंबाई में होनेवाले परिवर्तनों का कभी-कभी मानव कोशिकाओं के काल-प्रभावन (एजिंग) में भी योगदान होता है।

टेलोमर और आनुवंशिक रोग

कुछ आनुवंशिक रोगों का कारण दोषपूर्ण टेलोमर होते हैं, जिनसे कोशिकाएँ क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। वर्ष 2009 का शरीर क्रिया विज्ञान एवं औषधि विज्ञान का नोबेल पुरस्कार तीन वैज्ञानिकों के उस कार्य को मान्यता प्रदान करने के लिए दिया गया था, जिसमें उन्होंने दर्शाया है कि टेलोमर और उनको निर्मित करनेवाला टेलोमेरेज नाम का एंजाइम किस प्रकार गुणसूत्रों की रक्षा करते हैं। इस पुरस्कार के तीन, सहभागी वैज्ञानिक हैं, एलिजाबेथ, ब्लैकबर्न यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, सैन फ्रेंसिस्को; जैक जोस्टाक, हार्वर्ड मेडिकल स्कूल तथा केरोल ग्रीडर, जॉन हॉपलिंग यूनिवर्सिटी स्कूल ऑफ मेडिसिन बाल्टीमोर, अमेरिका।

कोशिका विभाजन के प्रकार

कोशिका विभाजन दो प्रकार का होता है : सूत्री विभाजन (माइटोसिस) तथा अर्धसूत्री विभाजन (मीओसिस)। प्राय: जब भी लोग कोशिका विभाजन की बात करते हैं तो उनका अभिप्राय सूत्री विभाजन से होता है, जो नई देह कोशिकाओं के निर्माण की प्रक्रिया है। अर्द्धसूत्री विभाजन से अंड तथा शुक्राणु कोशिकाओं का निर्माण होता है।

सूत्री विभाजन जीवन का आधारभूत प्रक्रम है। सूत्री विभाजन के दौरान कोशिका में गुणसूत्रों सहित इसके सभी अवयवों का द्विगुणन होता है और यह दो सर्वसम संतति-कोशिकाओं में विभाजित हो जाती है। यह प्रक्रिया बेहद महत्त्वपूर्ण

है, इसलिए सूत्री विभाजन के विभिन्न चरणों का नियंत्रण अनेक जीनों द्वारा किया जाता है। अगर सूत्री विभाजन का सही नियमन न हो तो कैंसर जैसी अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

दूसरे प्रकार का कोशिका विभाजन यानी जनन कोशिकाओं के निर्माण के साथ होता है। यह सुनिश्चित करता है कि मानवों की प्रत्येक पीढ़ी में गुणसूत्रों की संख्या समान रहे। यह दो चरणों में होनेवाली प्रक्रिया है, जो शुक्राणु और अंड कोशिकाओं के निर्माण के लिए गुणसूत्रों की संख्या को आधा यानी 46 से 23 कर देता है। गर्भाधान के समय जब शुक्राणु एवं अंड कोशिकाएँ एक हो जाती हैं तो प्रत्येक 23 गुणसूत्र प्रदान करती है। इस कारण भ्रूण में 46 गुणसूत्र हो जाते हैं। अर्द्धसूत्री विभाजन से कोशिका के विभाजन के दौरान डी.एन.ए. मिश्रण प्रक्रिया के कारण आनुवंशिक परिवर्तन भी हो जाता है।

गुणसूत्रों के रक्षक के रूप में टेलोमर

टेलोमर कोशिका क्रोमोसोमों के सिरों पर एक आवर्ती डी.एन.ए. अनुक्रम (CCCAA) है। टेलोमर की लंबाई 15,000 क्षार युग्मों तक हो सकती है। C एवं A क्रमशः साइटोसीन एवं एडेनीन के प्रतीक हैं, जो डी.एन.ए. शृंखला निर्माण करनेवाले चार क्षारों में से दो हैं। शेष दो होते हैं : थायमीन (T) तथा ग्वानीन (G) है। टेलोमर गुणसूत्रों को उनके सिरों के क्षार युग्म अनुक्रम को खोने से रोकते हैं एवं गुणसूत्रों को आपस में मिल जाने से भी रोकते हैं। तथापि, हर बार जब भी किसी कोशिका में विभाजन होता है तो वह टेलोमरों का कुछ अंश खो देती है (प्रायः 25–200 क्षार युग्म प्रति विभाजन)। जब टेलोमर बहुत छोटा हो जाता है तो गुणसूत्रों की एक क्रांतिक लंबाई आ जाती है, जिसके बाद उनकी प्रतिकृति नहीं आ पाती। इसका अर्थ यह है कि कोशिका 'बूढ़ी' हो जाती है और एक प्रक्रिया से, जिसे 'एपोप्टोसिस' कहते हैं, मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। टेलोमर क्रिया दो प्रक्रियाओं द्वारा नियंत्रित होती है— क्षरण एवं संयोजन। क्षरण, जैसाकि पहले उल्लेख किया गया है, हर बार तब होता है जब कोशिका में विभाजन होता है। संयोजन का निर्धारण टेलोमरेज नामक एंजाइम की क्रिया से होता है।

टेलोमरेज, जिसे टेलोमर टर्मिनल ट्रांसफरेज भी कहा जाता है, प्रोटीन एवं आर.एन.ए. उप एककों द्वारा निर्मित एक एंजाइम है, जो विद्यमान गुणसूत्रों के सिरों पर CCCCAA अनुक्रम जोड़कर उनकी लंबाई में वृद्धि कर देता है। टेलोमरेज गर्भ ऊतकों, प्रौढ़ जीवाणु कौशिकाओं तथा अर्बुद कोशिकाओं में पाया जाता है।

टेलोमरेज क्रिया का नियमन विकास के दौरान होता है और दैहिक कोशिकाओं में इसकी इतनी धीमी क्रिया होती है जिसका पता भी नहीं लग सकता। ये दैहिक कोशिकाएँ नियमित रूप से टेलोमरेज का उपयोग नहीं करती हैं, इसलिए वे बूढ़ी हो जाती हैं। कोशिकाओं का बूढ़ा हो जाना, देह का बूढ़ा हो जाना है। यदि कोशिका में टेलोमरेज सक्रिय रहता है तो उसमें वृद्धि और विभाजन की प्रक्रिया चलती रहती है। कोशिका का यह सिद्धांत दो शोध क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण है—काल प्रभावनता (एंजिग) तथा कैंसर।

वैज्ञानिकों को सन् 1950 के दशक में यह समझ आने लगा था कि जीनों का क्षार दर क्षार प्रतिलिपिकरण कैसे होता है। परंतु किसी को भी यह समझ में नहीं आ रहा था कि डी.एन.ए. सूत्र के सिरे का प्रतिलिपिकरण क्यों नहीं होता है? हरमन मूलर तथा बारबरा मैक्लिंटॉक के प्रारंभिक अध्ययनों से यह बात स्पष्ट हुई कि गुणसूत्रों के सिरों पर एक टेलोमर नाम की संरचना होती है, जो गुणसूत्रों का संलयन रोकती है। सन् 1970 के दशक में जैसे-जैसे डी.एन.ए. प्रतिकरण की प्रक्रिया बेहतर रूप से समझ में आने लगी तो यह स्पष्ट होने लगा कि डी.एन.ए. पॉलीमरेज, अर्थात् वह एंजाइम जो डी.एन.ए. प्रतिलिपिकरण के लिए उत्तरदायी है, रैखिक डी.एन.ए. के 3 सिरे को पूर्णत: संश्लेषित नहीं कर पाता है। यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, बर्कले के युवा शोधकर्ता के रूप में सामान्यत: जल में रहनेवाले एक एकल कोशिका प्राणी टेट्राहाइमेना के गुणसूत्रों का अध्ययन करते समय ब्लैकबर्न ने एक डी.एन.ए. अनुक्रम प्रेषित किया, जो गुणसूत्रों के सिरों पर कई बार दोहराया गया था।

ब्लैकबर्न जब सन् 1980 में एक सम्मेलन में अपने शोध परिणाम प्रस्तुत करने के लिए गए तो उनकी मुलाकात जोस्ताक से हुई, जिन्होंने कुछ ही समय पूर्व यह प्रेक्षण किया था कि मिनीक्रोमोसोमों (मिनीक्रोमोसोम एक लघु क्रोमोसोम के समान संरचना है, जो वायरस डी.एन.ए. के हिस्टोन के साथ संयोजन से निर्मित होती है) को यीस्ट कोशिकाओं में प्रविष्ट कराने पर उनमें तेजी से अवकर्षण होता है। तब उन दोनों ने निश्चय किया कि वे मिलकर अपना शोधकार्य आगे बढ़ाएँगे। अत: उन्होंने CCCCAA अनुक्रम को मिनी क्रोमोसोमों के सिरों को अक्षुण्ण रखते हुए उन्हें अवकर्षण से बचा लिया, जो डी.एन.ए. प्रतिकृति की अब तक अज्ञात प्रक्रिया के अस्तित्व का सूचक था। यह परिणाम सन् 1982 में 'सेल' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ।

कैरोल गीडर और कवक पर्यक्षेक्ष ब्लैकबर्न ने इस दिशा में अन्वेषण प्रारंभ किया कि कहीं टेलोमर डी.एन.ए. की निर्मिति के लिए कोई अज्ञात एंजाइम तो

उत्तरदायी नहीं है ? सन् 1984 में क्रिसमस के दिन ग्रीडर ने एक कोशिका के अर्क में एंजाइमी क्रिया के लक्षण देखे। ग्रीडर और ब्लैकबर्न ने इस एंजाइम को टेलोमरेज नाम दिया। इसे परिष्कृत किया और दर्शाया कि इसमें आर.एन.ए. तथा प्रोटीन दोनों हैं। पता चला कि आर.एन.ए. अवयव में CCCCAA अनुक्रम है। यह टेलोमर के निर्माण में साँचे का कार्य करता है, जबकि प्रोटीन अवयव की आवश्यकता निर्माण कार्य अर्थात् एंजाइमी क्रिया के लिए होती है। टेलोमरेज टेलोमर डी.एन.ए. को विस्तार प्रदान करता है। यह डी.एन.ए. पॉलीमरेजों को गुणसूत्रों (क्रोमोसोमों) के सिरे तक की संपूर्ण लंबाई की अनुकृति तैयार करने के लिए आधार प्रदान करता है। दोनों वैज्ञानिकों ने अपने शोध परिणाम सन् 1985 की 'सेल' तथा 1989 की 'नेचर' पत्रिका में प्रकाशित किए।

ब्लैकबर्न और जोस्टाक ने आगे खोज की कि टेलोमरेज एंजाइम के आर.एन.ए. में होने वाले उत्परिवर्तन के परिणामस्वरूप टेलोमरेज की लंबाई धीरे-धीरे कम होती गई, जिससे टेट्राहाईमेना तथा यीस्ट में कोशिका विभाजन रुक गया। इन खोजों ने वैज्ञानिक समाज में काफी हलचल पैदा की। अनेक वैज्ञानिकों का अनुमान है कि टेलोमर की लंबाई में कमी न केवल एकल कोशिकाओं के बल्कि पूर्ण जीव के भी काल-प्रभावन यानी बूढ़ा पड़ने का कारण हो सकती है।

ब्लैकबर्न, ग्रीडस तथा जोस्टाक की खोजों ने हमारी कोशिका संबंधी समझ को नए आयाम दिए हैं, रोग प्रक्रियाओं पर प्रकाश डाला है तथा अभिनव उपचारों की संभावना के विकास को प्रोत्साहित किया है। काल-प्रभावन यानी बूढ़ा पड़ने की प्रक्रिया अत्यंत जटिल होती है और अब समझा जाता है कि यह अनेक कारकों पर निर्भर करती है। टेलोमर निश्चय ही उनमें से एक है। इसलिए इस प्रक्रिया में टेलोमर की भूमिका पर अनुसंधान प्रगति पर है।

स्मरण रहे, डी.एन.ए. की संरचना की खोज वाटसन एवं क्रिक द्वारा वर्ष 1953 में की गई थी, जिसके लिए उन्हें नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया था। डी.एन.ए. एक द्वितंतु सीढ़ीनुमा संरचना होती है, जिसका आधार स्तंभ शर्करा एवं फॉस्फेट से बना होता है। ये दोनों तंतु चार मूल इकाइयों से बने होते हैं, जिन्हें बेस कहते हैं। इनकी संख्या चार होती है, एडिनीन (A), गुआनीन (G), थायमीन (T) एवं साइटोसीन (C)। इन बेसों की रासायनिक संरचना इस तरह होती है कि एक तंतु का ए बेस दूसरे तंतु के टी बेस के साथ, इसी प्रकार एक तंतु का जी बेस दूसरे तंतु के सी बेस के साथ मिलकर हाइड्रोजन बॉन्ड बनाता है। कभी भी ऐसा नहीं होता कि 'ए' बेस 'जी' अथवा 'सी' बेस के साथ मिलकर एवं 'टी' बेस 'जी'

अथवा 'सी' के साथ मिलकर हाइड्रोजन बॉन्ड बना सके। इसलिए यदि हम किसी डी.एन.ए. के एक तंतु के बेसों के क्रम का अनुमान लगा सकते हैं, जिसे पूरक तंतु कहा जाता है। इसलिए हम डी.एन.ए. के उस खंड को, जो संदेशवाहक आर एन.ए. या नॉन कोडिंग आर.एन.ए. के माध्यम से कोशिका को कार्य संपन्न करने का अनुदेश देता है, जीन कहते हैं। जीन की लंबाई अत्यंत परिवर्तनीय होती है। यह केवल 100 बेस जितना छोटा अथवा कई हजार किलो बेस (KB) जितना लंबा हो सकता है। t-R.N.A., Sry इत्यादि जीन, पहली श्रेणी में आते हैं, जबकि दूसरी श्रेणी के अंतर्गत मस्कुलर डिस्ट्रॉफी जीन आते हैं।

डी.एन.ए. की कार्यप्रणाली

एक विशिष्ट एंजाइम, आर.एन.ए. पॉलीमरेज, डी.एन.ए. को एम.आर.एन.ए. में परिवर्तित करता है। M-R.N.A. जिस प्रोटीन को कोडित करता है, उस प्रोटीन के संश्लेषण के लिए वह जिम्मेदार होता है। 20 अमीनो एसिड से मिलकर प्रोटीन बनता है। डी.एन.ए. में मौजूद तीन बेस उस निर्दिष्ट अमीनो एसिड को निर्धारित करते हैं जिसे m-R.N.A. के तीन बेसों द्वारा प्रोटीन में शामिल किया जाना है। अगले तीन बेस अगले अमीनो एसिड के अनुक्रम को निर्धारित करते हैं एवं अनुवर्ती समूह प्रोटीन (संश्लेषित होने वाली) में मौजूद अन्य अमीनो एसिड को निर्धारित करते हैं। एक अमीनो एसिड के लिए कोडिंग करनेवाले डी.एन.ए. के तीन बेसों को कोड कहा जाता है। जेनेटिक कोड तीन बेस का होता है। डी.एन.ए. के बेस अनुक्रमण में विलोपन/द्विगुणन/स्थानांतरण द्वारा हुआ कोई भी बदलाव उसके द्वारा कोडित किए जानेवाले प्रोटीन में मौजूद अमीनो एसिड के अनुक्रमण को परिवर्तित कर देता है। प्रोटीन में मौजूद अमीनो एसिड के अनुक्रमण में हुए बदलाव से, इसकी द्वितीयक एवं तृतीयक संरचना में परिवर्तन हो जाता है। एक प्रोटीन की संरचना परिवर्तित होने से यह उस प्रकार्य का संपादन करने में असमर्थ हो जाता है। ऐसा होने से हम आनुवंशिक वंशानुगत बीमारी से पीड़ित होते हैं। एक अनुमान के अनुसार मनुष्य में लगभग 5000 विभिन्न प्रकार की आनुवंशिक बीमारियाँ होती हैं। उदाहरण के लिए, हमारे अग्नयाशय में इंसुलिन का संश्लेषण होता है और यह शर्करा के उपापचय के लिए जिम्मेदार होता है। यदि इंसुलिन का संश्लेषण होना रुक जाए या उत्परिवर्तनों के कारण गलत प्रोटीन का निर्माण हो जाए, तो यह अपना प्रकार्य ज्यादा समय तक संपादित नहीं कर पाता है और हमें मधुमेह की बीमारी हो जाती है। मानव जीनोम अनुक्रमण परियोजना, जिसे वर्ष 2002 में पूरी कर लिया गया था, वह आधुनिक

मानव की उत्पत्ति के बाद, जीवन विज्ञान में हुई सर्वोच्च उपलब्धि थी। प्रत्येक गुणसूत्र पर मौजूद डी.एन.ए. के प्रत्येक अणु पर एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक, प्रत्येक बेस का अनुक्रमण निर्धारित रहता है। ह्यूमन जीनोम में 3.3 बिलियन बेस पेयर होते हैं (Haploid 23 क्रोमोसोम)। मानव के प्रत्येक गुणसूत्र में औसतन 130 मिलियन बेस पेयर तक पाए जाते हैं। मानव जीनोम के अनुक्रमण से पूर्व, मानव के अंदर पाए जानेवाले जीनों की कुल संख्या का अनुमान 150,000 के आस-पास लगाया गया था। किंतु मानव जीनोम के अनुक्रमण तथा पुन: अनुक्रमण एवं टिप्पण और पुन: टिप्पण के पश्चात् जीनों की कुल संख्या 20,000 और 25,000 के बीच अनुमानित की गई है। यहाँ एक जटिल प्रश्न उठ खड़ा होता है कि वह क्या है जो हमें मानव बनाता है ? विशेष रूप से जब एक साधारण से प्राणी निमेटोड में 19,000 के आस-पास जीन होते हैं, जबकि उनमें केवल 10,000 ही कोशिकाएँ पाई जाती हैं तो फिर मानव जैसे जटिल प्राणी, जोकि 100 ट्रिलियन कोशिकाओं का बना है, के शारीरिक कार्यों का संचालन केवल 20-25 हजार जीनों के द्वारा कैसे होता है। मानव, चिंपेंजी, चूहा, खरगोश जैसे कई प्राणियों एवं रीढ़ विहीन प्राणियों और सूक्ष्म जीवाणुओं की हजारों प्रजातियों के जीनोम का अनुक्रमण करने के बाद वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मानव का जीनोम 0.5 प्रतिशत बैक्टीरिया के साथ, 46 प्रतिशत यीस्ट के साथ, 50 प्रतिशत केले के साथ, 60 प्रतिशत फलमक्खी (ड्रोसोफिला) के साथ 75 प्रतिशत निमेटोड के साथ एवं 99 प्रतिशत चिंपैंजी के साथ प्रोटीन कोडिंग जीन की समानता रखता है।

किसी व्यक्ति के मन में डार्विन के इवोल्यूशन सिद्धांत के बारे में उठने वाली किसी भी शंका को यह दूर कर देता है। यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण देता है कि मानव की उत्पत्ति क्रमिक विकास से ही संभव हुई है। प्रोटीन के लिए कोड करनेवाले 20 से 25 हजार जीन हमारी कोशिका में मौजूद कुल डी.एन.ए. के 1.2 प्रतिशत से भी कम होते हैं। मानव कोशिका में मौजूद कुल डी.एन.ए. 98.8 प्रतिशत नॉन कोडिंग होता है (किसी भी प्रोटीन के लिए कोड नहीं करता है), कि अधिकांश मामलों में नॉन कोडिंग डी.एन.ए., आर.एन.ए. में परिवर्तित होते हैं तथा जीन के कार्य का नियंत्रित रूप से संचालन करते हैं। कई मामलों में Si-R.N.A., Mi-R.N.A. एवं h-R.N.A. (Heterogenous R.N.A.) की भूमिका का पता लगाया जा रहा है। जीन क्रोमोटिन संगठनों की संरचना एवं सीमा को निर्धारित करने में नॉन कोडिंग डी.एन.ए. द्वारा निभाई जानेवाली भूमिका को दर्शाया जा रहा है।

डी.एन.ए. प्रोब

कुछ नॉन कोडिंग डी.एन.ए. अनुक्रमणों को प्रोफेसर अलेक जेफ्रीज द्वारा ग्लोबिन जीन के पास से पृथक किया गया था, जिसे उन्होंने डी.एन.ए. फिंगरप्रिंटिंग के प्रोब के रूप में इस्तेमाल किया। उन्होंने इसका पेटेंट करवा लिया था, इसलिए यह दूसरे लोगों के लिए मुफ्त में उपलब्ध नहीं था।

अलग-अलग व्यक्तियों में पुनरावर्ती डी.एन.ए. का कुछ भाग (जैसे कि रिपीट्स) अलग-अलग तरीके से संगठित रहता है। एक व्यक्ति में पाए जाने वाले एक निर्दिष्ट गुणसूत्र पर GATA रिपीट्स की दस अबाधित प्रतियाँ हो सकती हैं। उसी स्थिति में दूसरे व्यक्ति के अंदर 30 प्रतियाँ एवं अन्य दूसरे व्यक्ति में एक प्रति भी नहीं हो सकती और किसी अन्य व्यक्ति में अनेक इससे भी अधिक भिन्न प्रतियों की संख्या हो सकती है।

□

8

आणविक जैविकी और डॉ. खुराना

इसमें कोई संदेह नहीं कि जैव प्रौद्योगिकी की सहायता से अनेक आनुवंशिक रोगों की चिकित्सा में सफलता प्राप्त हुई है, जिससे मनुष्य को अनेक कष्टों से मुक्ति मिलने की संभावना बढ़ गई है। फसलों एवं जानवरों की अनेक उच्च गुणवत्ता एवं उत्पादनशील प्रजातियों का विकास भी जैव प्रौद्योगिकी की सहायता से ही संभव हो सका है। जिन महान् वैज्ञानिकों ने जैव प्रौद्योगिकी के मूल सिद्धांतों एवं तकनीकों की खोज का सूत्रपात किया, उनमें से एक हैं—डॉ. हरगोविंद खुराना।

आणविक जीव विज्ञान का क्षेत्र इतनी तेजी से बदल रहा है कि विगत वर्षों की तकनीक पुरातन ओर आदिकालीन जान पड़ती है, फिर भी, आरंभिक वैज्ञानिकों द्वारा दिए गए योगदान ने इसकी बुनियाद रखी और भविष्य की पीढ़ियों को दिशा उपलब्ध करवाई। प्रवासी भारतीयों ने अपने कार्यक्षेत्र के माध्यम से इस प्रगति में योगदान दिया है। आणविक जीव विज्ञान और चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में डॉ. खुराना ने जो योगदान दिया, उस पर हम सभी को गर्व है। इस विनम्र भारतीय व्यक्तित्व ने कठिन परिश्रम के बल पर मातृभूमि का गौरव बढ़ाया और उनकी खोजें अभी भी वैज्ञानिक प्रगति की दिशा में योगदान दे रही हैं। आणविक जीव विज्ञान, जैव-प्रौद्योगिकी और जीन-चिकित्सा विज्ञान में डॉ. खुराना के शोधकार्यों का आज भी अत्यधिक महत्त्व है और सदैव रहेगा।

जैव प्रौद्योगिकी के अंतर्गत वे सभी तकनीकें आती हैं, जिनमें जीवों या उनसे प्राप्त पदार्थों का उपयोग किसी उत्पाद को बनाने या उसमें परिवर्तन करने के लिए किया जाता है। इस तकनीकी से सूक्ष्म जीवों, पौधों और जीवों में सुधार किया जाता है। वास्तव में जीन और उनके उत्पाद जैव प्रौधोगिकी के आधार हैं। जैव प्रौद्योगिकी का प्रमुख लक्ष्य जीवों की आनुवंशिकी विविधता का मानव के लाभ के

लिए उपयोग करना है। आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी, मुख्यत: जीनों के बारे में हमारे अब तक के ज्ञान और जीनों में हेर-फेर करने की हमारी क्षमताओं पर आधारित है। आज विज्ञान की इस शाखा में आणविक स्तर पर कार्य किया जा रहा है।

आनुवंशिकता की पहेली को हल करना जैविकी के क्षेत्र में विगत हजार वर्षों की सबसे बड़ी सफलता है। प्रारंभ से ही मानव यह जानने को उत्सुक रहा है कि एक जीव किस प्रकार निषेचित डिंब को अनुदेश संपुटित करता है, ताकि उसके सदृश जीव की उत्पत्ति हो एवं क्रमश: इन अनुदेशों के अनुरूप जीव पैदा हो?

ग्रेगर मेंडल प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने मटर के पौधे पर प्रयोग करके आनुवंशिकता के अध्ययन पर प्रकाश डाला। इन प्रयोगों से उन्हें आनुवंशिकता के प्रभावों तथा लक्षणों के पृथक्करण का अवसर मिला। मेंडल ने अपने भौतिकी के पूर्व ज्ञान के आधार पर इन प्रयोगों की परिमाणात्मक व्याख्या की और आनुवंशिकी के नियमों का विवरणात्मक वर्णन किया। मेंडल ने प्रतिपादित किया कि आनुवंशिक सूचनाएँ जनक से अगली पीढ़ी में कारकों के द्वारा पहुँचती हैं, जिनके कारण मटर के पौधे में बीज का आकार, पुष्प का रंग जैसे विशिष्ट लक्षण प्रकट होते हैं।

जीन की प्रकृति का अध्ययन करने के लिए वॉटसन ने फ्रांसिस क्रिक के साथ मिलकर डी.एन.ए. की द्विकुंडलीनुमा संरचना का पता लगाया। उनकी यह ऐतिहासिक खोज सन् 1953 में 'नेचर' के अप्रैल माह के अंक में प्रकाशित हुई, जिसने जीव-विज्ञान के क्षेत्र में संपूर्ण रूप से क्रांति ला दी। डी.एन.ए. चार न्यूक्लियोटाइड बेसों तथा द्विकुंडलीनुमा तंतुओं से मिलकर बना होता है, जिसमें A के सापेक्ष T तथा C के सापेक्ष G जोड़े पाए जाते हैं। इस संरचना से यह स्पष्ट हुआ कि आनुवंशिक सूचना की कैसे कॉपी की जा सकती है एवं कभी-कभी कॉपी बनने की प्रक्रिया में गलती होने पर परिवर्तन सूचना स्थनांतरण में कैसे बाधा पहुँचती है।

वॉटसन एवं क्रिक की खोज से यह स्पष्ट हो गया कि डी.एन.ए. के द्विकुंडलीनुमा संरचना के तंतुओं में बेसों के अनुक्रम से अनुदेश कूटबद्ध होते हैं। किंतु यह प्रश्न अनुत्तरित ही रहा कि ये अनुदेश किस प्रकार पढ़े जाते हैं एवं कैसे जीव के घटकों की उत्पत्ति करते हैं? वर्ष 1960 में यह स्पष्ट हुआ कि प्रत्येक जीन से संबंधित डी.एन.ए. खंड पहले मैसेंजर आर.एन.ए. अणु में कॉपी होता है, जिसका बेस अनुक्रम अमीनो एसिड-बिल्डिंग-ब्लॉक से विशिष्ट प्रोटीन के संश्लेषण को निर्देशित करता है। मार्शल नीरेनबर्ग, हरगोविंद खुराना एवं हॉली ने विशिष्ट अमीनो एसिड के कोडान को बनानेवाले न्यूक्लियोटाइडों के ट्रिपलेट के आनुवंशिक कोड को व्याख्यायित करने में उल्लेखनीय योगदान दिया है।

अगला कदम, जो उस समय इतना अधिक आसान नहीं था, वह था—जीन का पृथक्करण। प्रत्येक जीन को जैव रासायनिक तरीके से शुद्ध करना व्यर्थ था, क्योंकि रासायनिक रूप से वे आपस में समान थे एवं डी.एन.ए. बेसों की एक संरचना मात्र थे। वर्ष 1969 में जीवाणु क्लोनिंग ने प्राचीन जैव-रासायनिक कमियों को दूर कर दिया। बड़े जीनोमों को छोटे-छोटे खंडों में काटकर प्रत्येक को विशिष्ट वेक्टर अणु से जोड़कर जीवाणु कोशिका में प्रवेशित कराया गया। इस प्रक्रिया से बनी जीवाणु कोशिका की वृद्धि के कारण कृत्रिम डी.एन.ए. की पुनरुत्पत्ति संभव हो सकी।

इसके एक वर्ष पश्चात् डॉ. हरगोविंद खुराना एवं उनके दल ने जीन को संयोजित किया। यह 'रासायनिक आनुवंशिकी' की शुरुआत मानी जा सकती है। इसके कुछ वर्ष पश्चात् हर्बर्ट बॉयर के शोध समूह द्वारा खोजे गए अवरोधी एंजाइमों का उपयोग करते हुए पॉल बर्ग एवं उनके सहयोगियों ने प्रथम पुनर्संयोजित डी.एन.ए. अणु का निर्माण किया।

बीसवीं शताब्दी के पाँचवें ओर छठवें दशकों में जीव-विज्ञान के क्षेत्र में हुई क्रांतिकारी उपलब्धियों ने न केवल इसका स्वरूप बदल डाला था, बल्कि जैव प्रौद्योगिकी की एक ठोस नींव का निर्माण भी किया। डी.एन.ए. की डबल हेलिक्स संरचना की खोज के बाद यह विज्ञान पूर्णत: आणविक हो गया था। इसके द्वारा जैविक सूचना के स्थानांतरण और जीवन के आणविक आधार के विषय में काफी जानकारी मिली। जैसे-जैसे जीव विज्ञान का विकास हुआ, वैसे-वैसे हमारा ध्यान ठोस पुर्जों से सूक्ष्म तत्त्वों की ओर बढ़ा। हमें ज्ञात हुआ कि ऐसे भी कुछ जीव हैं जो हमें दिखाई नहीं देते, पर हमारे चारों और फैले हुए हैं। यह भी ज्ञात हुआ कि जीवाणु एक कोशिका से बने हैं, जबकि बड़े जानवरों में हजारों-करोड़ों अलग-अलग तरह की कोशिकाएँ पाई जाती हैं। इससे आगे बढ़े तो पता चला कि कोशिका में कई तरह के अणु हैं, जैसे—प्रोटीन, डी.एन.ए., लिपिड व कार्बोहाइड्रेट।

जैसे-जैसे जीव-विज्ञान का विकास हुआ वैसे-वैसे हमारा ध्यान ठोस पुर्जो से सूक्ष्म तत्त्वों की ओर बढ़ा। हमें ज्ञात हुआ कि ऐसे भी कुछ जीव हैं जो हमें दिखाई नहीं देते, पर हमारे चारों ओर फैले हुए हैं। यह भी ज्ञात हुआ कि जीवाणु एक कोशिका से बने हैं, जबकि बड़े जानवरों में हजारों करोड़ों अलग-अलग तरह की कोशिकाएँ पाई जाती हैं। इससे आगे बढ़े तो पता चला कि कोशिका में कई तरह के अणु हैं, जैसे प्रोटीन, डी.एन.ए., लिपिड व कार्बोहाइड्रेट। 1953 में वॉटसन व क्रिक द्वारा डी.एन.ए. के ढाँचे का रूप सुलझाने के साथ आणविक जैविकी (Molecular Biology) का जन्म हुआ।

आणविक-जैविकी जीवविज्ञान का वह क्षेत्र है जहाँ अणुओं के संदर्भ में कोशिका के प्रकार्यों को समझने का प्रयत्न किया जाता है। इस खोज से हमें ज्ञात हुआ कि डी.एन.ए. वह अणु है जो माता-पिता से बच्चों को प्राप्त होता है। डी.एन.ए. में प्राणी को बनाने का पूरा संदेश होता है। उसमें जीन होते हैं, जो जीव की जरूरतों के अनुसार प्रोटीन बनाते हैं। कई वर्षों तक वैज्ञानिक एक साथ केवल एक या कुछ ही जीनों का अध्ययन कर सकते थे। आज प्रौद्योगिकी के विकास से माइक्रोएरे में मानव के 25,000 से 30,000 जीनों का अध्ययन एक साथ किया जा सकता है। इससे पता चलता है कि अलग-अलग स्थितियों में कौन से जीन जरूरत से ज्यादा या कम प्रोटीन बनाते हैं। जैसे ज्यादातर कैंसर के मामलों में कोशिका के विभाजन में सम्मिलित जीन अधिक मात्रा में बनाए जाते हैं और इस प्रकार्य को नियंत्रित रखनेवाले जीन कम मात्रा में।

इस तरह कोशिका का विभाजन अनियंत्रित रूप से चलता रहता है और इस कारण से अंतत: ट्यूमर बन जाता है।

डी.एन.ए. महाअणु चार विभिन्न अणुओं से बना होता है। डी.एन.ए. की शृंखला को इन चार अणुओं के नाम के पहले अक्षर (ATCG) द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इन अणुओं को अनुक्रमित करना आणविक जैविकी की महान् उपलब्धियों में से एक है। इसी कारण से आज मानव के साथ अन्य कई प्राणियों के संपूर्ण जीनोम हमारे अध्ययन के लिए उपलब्ध हैं।

डॉ. खुराना के अनुसंधान ने आणविक जैव प्रौद्योगिकी नामक नए विज्ञान विषय को जन्म दिया। वास्तव में सभी जीवों का निर्माण विशेष रासायनिक तत्त्वों के परस्पर संयोग से होता है। आवश्यक हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, कार्बन आदि के सैकड़ों-हजारों परमाणुओं के संयोग से जीवन के अणु बनते हैं। बाद में इनसे जीवन की इकाई बनती है। इस नए विषय में जीवन का अध्ययन रासायनिक अणुओं के स्तर तक किया जाता है।

वास्तव में आणविक जीव-विज्ञान के क्षेत्र में सबसे महत्त्वपूर्ण आविष्कार सत्तर के दशक में एंजाइमों के एक समूह की खोज है, जिन्हें साधारणत: प्रतिबंधक एंजाइम के नाम से जाना जाता है। सन् 1970 में कैंसर जनक आर.एन.ए. विषाणु का पश्चविषाणु में उत्क्रम अनुलिपि तैयार करने वाले एंजाइम का आविष्कार एक अन्य महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। इन एंजाइमों की उपलब्धि के कारण ही जीनों में परिवर्तन संभव हो सका। जीनों में यह परिवर्तन किस सीमा तक संभव है, इसकी कल्पना केवल व्यक्तिगत वैज्ञानिक ही कर सकते हैं। इस प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में

हुई प्रगति के कारण उद्योग, व्यापार, कृषि एवं चिकित्सा के क्षेत्र में इसके उपयोग की संभावनाएँ पैदा हुई हैं।

वास्तव में आणविक जैव प्रौद्योगिकी जीव-विज्ञान का वह क्षेत्र है जहाँ अणुओं के संदर्भ में कोशिका के प्रकार्यों को समझने का प्रयत्न किया जाता है। इस खोज से यह ज्ञात हुआ कि डी.एन.ए. वह अणु है, जो माता-पिता से बच्चों को प्राप्त होता है। डी.एन.ए. में प्राणी को बनाने का पूरा संदेश होता है। उसमें जीन होते हैं, जो जीव की जरूरतों के अनुसार प्रोटीन बनाते हैं। कई वर्षों तक वैज्ञानिक एक साथ केवल एक या कुछ ही जीनों का अध्ययन कर सकते थे। आज प्रौद्योगिकी के विकास से माइक्रोएरे में मानव के कुल 25,000 से 30,000 जीनों का अध्ययन एक साथ किया जा सकता है। इससे पता चलता है कि अलग-अलग स्थितियों में कौन से जीन जरूरत से ज्यादा या कम प्रोटीन बनाते हैं। जैसे ज्यादातर कैंसर के मामलों में कोशिका के विभाजन मे सम्मिलित जीन अधिक मात्रा में बनाए जाते हैं और इस प्रकार्य को नियंत्रित रखने वाले जीन कम मात्रा में। इस तरह कोशिका का विभाजन अनियंत्रित रूप से चलता रहता है और इस कारण से अंतत: ट्यूमर बन जाता है।

डी.एन.ए. महाअणु चार विभिन्न अणुओं से बना होता है। डी.एन.ए. की शृंखला को इन चार अणुओं के नाम के पहले अक्षर द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इन अणुओं को अनुक्रमित करना आणविक जैविकी की महान् उपब्धियों में से एक है। इसी कारण से आज मानव के साथ अन्य कई प्राणियों के संपूर्ण जीनोम हमारे अध्ययन के लिए उपलब्ध हैं।

आणविक जैव प्रौद्योगिकी की इन उन्नतियों ने बायोइंफार्मेटिक्स एवं प्रणाली जैविकी (System Biology) को जन्म दिया। कोशिका एवं जीवों को बनाने वाले अंशों की सूची सम्मिलित है। अब प्रणाली जैविकी द्वारा कोशिका व जीवों का प्रजनन, संचालन एवं निधन इन अंशों की परस्पर क्रिया से किस तरह होता है, यह निर्धारित करना है। इसमें प्रयोगकर्ता एवं कंप्यूटर वैज्ञानिक या बायोइंफार्मेटिक्स वैज्ञानिक को मिल-जुलकर काम करना होगा।

जैविकी की प्रणालियाँ विभिन्न प्रकारों में विद्यमान हैं। इनमें सबसे छोटी प्रणाली शायद प्रोटीन का एक महाअणु है। इस प्रणाली के अंश अमीनो अम्लों के अणु हैं। इन अमीनो अम्लों के परस्पर प्रभाव से किस तरह प्रोटीन का ढाँचा एवं उसका प्रकार्य निर्धारित होता है, यह बायोइंफार्मेटिक्स का अनसुलझा प्रश्न है। हमने इस दिशा में पिछले 15-20 वर्षों में कुछ प्रगति की है, लेकिन अब भी केवल प्रोटीन की शृंखला से उसके ढाँचे व प्रकार्य का अनुमान लगाया नहीं है।

जैव रासायनिक पाथवे (Pathway) के अनुसार कुछ प्रोटीन और डी.एन.ए. मिलकर कोशिका के लिए कुछ रसायन पदार्थ या प्रोटीन बनाते हैं या उसे बाहर से आया कोई संदेश पहुँचाते हैं। इस प्रणाली के अंश प्रोटीन एवं डी.एन.ए. के महाअणु हैं, जो मिल-जुलकर कोशिका के जीवन व विस्तार में कर्मबद्ध हैं।

कोशिका एक प्रणाली है, जिसके अंश प्रोटीन डी.एन.ए., आर.एन.ए. एवं अन्य अणु हैं। कोशिका स्वयं हृदय, गुरदा या लीवर जैसे अंगों का अंश है। इस तरह जैविकी की प्रणालियों का विश्लेषण विभिन्न स्तरों में किया जा सकता है। इन प्रणालियों की यह खूबी है कि किसी एक प्रणाली के शोध के लिए अन्य प्रणाली को पूरी तरह समझना जरूरी नहीं है। जैसे जैव रासायनिक पाथवे के विश्लेषण के लिए प्रोटीन के ढाँचे को पूरी तरह समझने की जरूरत नहीं। दोनों प्रणालियों का शोध समानांतर रूप से किया जा सकता है।

प्रणाली-जैविकी की शुरुआत डेटा माइनिंग से होती है। किसी भी प्रणाली को समझने के लिए एकत्रित किए गए डेटा का विश्लेषण करके उसमें पैटर्न ढूँढ़ा जाता है। इन पैटर्नों के अध्ययन पर परिकल्पना (Hypothesis) की जाती है। जैसे कई प्रोटीन के ढाँचे प्रयोग द्वारा निर्धारित किए गए हैं। इन प्रोटीन ढाँचों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि प्रोटीन अमीनो अम्ल प्रोटीन में हेलिक्स (Helix) ढाँचे में विघ्न डालती है। हाइड्रोफोबिक अमीनो अम्ल ज्यादातर प्रोटीन ढाँचे के अंदरूनी भागों में पाया जाता है, जबकि हाइड्रोफिलिक ऊपरी भागों में। इससे यह भी पता चला है कि प्रोटीन के कुछ अमीनो अम्ल बहुत आवश्यक होते हैं, जो प्रोटीन के प्रकार्य में हिस्सा लेते हैं और अन्य सभी अमीनो अम्ल केवल प्रोटीन का ढाँचा बनाने में मदद करते हैं।

डेटा माइनिंग द्वारा अभिनिर्धारित पैटर्न के आधार पर बनाई गई परिकल्पना को प्रमाणित करने के लिए प्रणाली का मॉडल बनाना, प्रणाली जैविकी का अगला कदम है। प्रोटीन नेटवर्क द्वारा हमें सिर्फ इतना पता चलता है कि कौन-सी प्रोटीन किस अन्य प्रोटीन के साथ संबंधित है।

प्रोटीन नेटवर्क प्रोटीनों के प्रकार्यों का एक नक्शा है। वास्तव में यह एक गत्यात्मक प्रणाली है, जिसमें प्रोटीन डी.एन.ए. एवं अन्य कई अणु एक-दूसरे से लड़ते-जुड़ते व बिछुड़ते हैं। इस प्रणाली का 'मॉडल' बनाने के लिए हमें कई सारे मानदंडों को मापना होगा। प्रोटीन किस गति से एक-दूसरे की तरफ बढ़ती हैं? उनके बीच कौन-कौन सी शक्तियाँ शामिल हैं और उनका क्या प्रभाव है? ऐसे और कई अन्य मानदंडों को मापने के लिए कुछ नए उपकरणों का आविष्कार करना होगा।

अभी तक छोटी प्रणालियों के मॉडल बनाने के प्रयत्न किए गए हैं, जैसे कोशिका का आवर्तन, संदेश पहुँचाने वाले पाथवे, सूक्ष्मजीवों का रसायन अनुचलन इत्यादि। कुछ बड़े मॉडलों पर भी काम जारी है, जैसे सूक्ष्मजीवों का उपापचयी (Metabolic) पाथवे, लेकिन उसमें भी अभी साम्यावस्था का अध्ययन किया जा रहा है, न कि उसकी गतिकी (Dynamics) का। हाल ही में बड़ी प्रणालियों पर काम शुरू हुआ है, जिसमें हृदय एवं मस्तिष्क की गतिविधियों का मॉडल बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

अभी यह प्रणाली जैविकी की शुरुआत मात्र ही है। हालाँकि यह विज्ञान 50 साल से भी ज्यादा पुराना है, किंतु अणु के संदर्भ में इसका अध्ययन कर पाना अभी हाल ही में संभव हो पाया है। इसका मूल कारण आणविक जैविकी का विकास एवं अधिक से अधिक सक्षम कंप्यूटरों की उपलब्धि है। आज आणविक जैविकी की वजह से हमारे पास इतने आँकड़े हैं कि हम उनके आधार पर मॉडल बना सकते हैं। उसी प्रकार सक्षम कंप्यूटर भी उपलब्ध हैं, जो इन मॉडलों की गतिकी का विश्लेषण करके प्रणालियों के कार्यों पर प्रकाश डाल सकते हैं।

पुनर्योजी डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी

पुनर्योजी डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी में, जिसे जीन क्लोनीकरण या आणविक क्लोनीकरण भी कहा जाता है, जीनों के एक जीव से दूसरे जीव में स्थानांतरण की अनेक प्रायोगिक विधियाँ शामिल हैं। कुछ विषाणुओं को छोड़कर सभी मामलों में कूट (Code) आनुवंशिक सूचना का रासायनिक स्वरूप डी.एन.ए. में होता है। संक्षेप में एक जीव से जीन (डी.एन.ए. के अंश) अलग कर किसी उपयुक्त वाहक के माध्यम से दूसरे जीव (प्रयोगशाला के किसी साधारण जीवाणु) में प्रवेश कराने की संपूर्ण प्रक्रिया को पुनर्योजी डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी कहते हैं। जीन को एक जीव से दूसरे तक ले जाने वाला रोग वाहक (Vector) भी डी.एन.ए. होता है। इसलिए इस प्रक्रिया में स्थानांतरित किए जानेवाले जीन और सहयोजी (Covalent) वाहक के अणु को रासायनिक प्रक्रिया द्वारा जोड़ा जाता है और रूपांतरण के बाद जीन प्राप्त करनेवाले उस जीन को छाँटा जाता है जिसने नई सूचना ग्रहण कर ली है। इसके लिए कोई एक विधि नहीं है, लेकिन पिछले दो दशकों में इन प्रक्रियाओं में आश्चर्यजनक तकनीकी प्रगति हुई है। महत्त्वपूर्ण जैव अणुओं (Biomolecules) के बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए अब अनेक रोगवाहक और विभिन्न प्रकार के जीव या कोशिकाओं (जीवाणु, खमीर, स्तनपायी या कीटाणुओं की कोशिकाओं

के संवर्धन) तथा पशुओं का इस्तेमाल किया जा सकता है।

वंशानुगत गुण की विशिष्ट इकाई के प्रतिरोपण अर्थात् जीन के एक जीव से दूसरे में स्थानांतरण की प्रक्रिया दो अमेरिकी वैज्ञानिक स्टेनले कोहन और हरबर्ट बीयर द्वारा सन् 1973 में विकसित रणनीति पर आधारित थी। उन्हें तथा अन्य वैज्ञानिकों को डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी की दूरगामी संभावनाओं के विषय में कोई संदेह नहीं था। उसी समय कोहन ने देखा कि ई.कोली जीवाणु में ऐसे जीनों का प्रवेश संभव है जिनमें 'प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis)या 'प्रातिजैविक (Antibiotics) उत्पादन जैसी विशिष्ट चयापचयी क्रियाओं की क्षमता होती है, जो जीवों के अन्य वर्गों में अंतर्निहित होती है। कोहन और बोयर द्वारा विकसित जीन क्लोनीकरण अवधारणा की जानकारी जब अन्य वैज्ञानिकों को मिली तो उन्होंने जीन क्लोनीकरण क्षमता के महत्त्व को समझा। परिणामस्वरूप इस विषय में अनेक प्रयोग किए गए जिनसे अनेक विधियाँ विकसित की गईं, जिनकी सहायता से जीन की पहचान, पृथक्करण और उनके अभिलक्षण ज्ञात करना अधिक कुशलतापूर्वक और अपेक्षाकृत अधिक सरलता से किया जाने लगा। प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई प्रगति के कारण व्यवहार, विकासात्मक जीव-विज्ञान, आणविक उद्विकास (Molcular Evolution) कोशिका जीव विज्ञान और मानव आनुवंशिकी सहित जीव विज्ञान की लगभग सभी शाखाओं के संबंध में नई जानकारी प्राप्त करने में सहायता मिली।

आर्थिक प्रभाव

जैव प्रौद्योगिकी का अंतिम उद्देश्य व्यापारिक उत्पादों का विकास है। विशेष रूप से ऐसे उत्पादों का विकास जैव चिकित्सा के लिए काफी उपयोगी सिद्ध हो सकता है। पुनर्योजी डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी के कारण जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अत्यंत महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आए। वास्तव में इंसुलिन ऐसी पहली औषधि है जिसे आनुवंशिक अभियांत्रिकी की सहायता से पुनर्योजन प्रौद्योगिकी द्वारा तैयार किया गया। आइए, इसके आर्थिक और व्यापारिक प्रभाव पर एक दृष्टि डालें। 15 अक्तूबर 1980 को न्यूयॉर्क स्टॉक एक्सचेंज खुलने के 20 मिनट के अंदर ही 'जीनेनटेक' नाम की कंपनी के शेयरों के भाव 35 से बढ़कर 89 हो गए। स्टॉक एक्सजेंज के इतिहास में किसी उत्पाद के भाव में इतनी जल्दी तेजी पहले कभी नहीं आई। 'जीनेनटेक' कंपनी के 6,00,000 शेयरों के लिए इतनी ऊँची बोली लगाई गई कि कुछ निवेशकों को तो एक शेयर भी खरीदने का मौका नहीं मिला। यह कितनी महान् प्रौद्योगिक क्रांति थी जिसने स्टॉक एक्सचेंज का रूख ही बदल दिया! इससे

दो साल पहले 'जीनेनटेक' कंपनी के वैज्ञानिकों ने जीन के उस भाग को अलग कर, जिसमें मानव इंसुलिन संबंधी सूचना रहती है, ऐसे क्लोनकारी रोग वाहक में प्रतिरोपित किया, जिसे ई. कोली जीवाणु में जीवित रखा जा सकता था। आणविक जीव विज्ञानी प्रयोगशाला में अनुसंधान के लिए आमतौर पर इसी जीवाणु का उपयोग किया जाता है। इन परपोषी जीवाणुओं की कोशिकाओं ने मानव इंसुलिन की दो पेप्टाइड शृंखलाओं के उत्पादन के लिए जीव वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं का कार्य किया। इन शृंखलाओं को आपस में जोड़ने के बाद शुद्ध किया जा सकता था और मधुमेह के ऐसे रोगियों द्वारा औषधि के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता था, जो बाजार में उपलब्ध सुअर से प्राप्त इंसुलिन के प्रति अति संवेदनशील थे। दस साल पहले यह काम बिल्कुल असंभव समझा जाता था, लेकिन आज इस प्रकार की आनुवंशिक अभियांत्रिकी आम बात हो गई है। पुनर्योजी डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी में तीव्र गीत से हुई प्रगति के कारण यह सब संभव हो सका।

मानव जीवन के सभी क्षेत्रों से सीधा संबंध होने के कारण आनुवंशिक अभियांत्रिकी को इतना महत्त्व एवं मान्यता मिली। स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग एवं पर्यावरण से संबंधित सभी क्षेत्रों में आनुवंशिक अभियांत्रिकी का उपयोग हो रहा है।

विगत् 200 वर्षों में विज्ञान जगत् में आई असाधारण प्रगति के कारण आनुवंशिकता की प्रक्रिया को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। आनुवंशिकता की समस्या का समाधान एक रोचक और व्यापक विषय बन गया है। वैज्ञानिकों ने पाया कि आनुवंशिकता के अनुदेश कोशिका के केंद्रक में पाए जानेवाले गुणसूत्र में डी.एन.ए. के रूप में रहते हैं तथा संचरण के विशिष्ट नियमों का पालन करते हैं। डी.एन.ए. की घटक इकाइयों के अनुक्रम में लिखित संक्षिप्त आनुवंशिकी कोड का अध्ययन कर जीव के आकार, संरचना एवं शरीर के विभिन्न अंगों की कार्यप्रणाली की व्याख्या की जा सकती है।

वैज्ञानिकों द्वारा वायु के साथ-साथ जीवों के शरीर में होनेवाले शारीरिक परिवर्तनों को जीन के स्तर पर समझने के प्रयास जारी हैं। कोलाराडो और कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने फूलों वाली मक्खी व केंचुए की प्रजाति के जीवधारियों में ऐसे जींस की पहचान कर ली है, जो इन साधारण जीवधारियों का जीवनकाल बढ़ा सकते हैं। उन्होंने इन्हें एज-1, एज-2, व डेफ-2 नाम दिया है। ये जींस संभवत: कोशिका के अंदर ऑक्सीकरण की गति को प्रभावित करते हैं। मानव में इस प्रकार के 70 जींस की पहचान कर ली गई है। ऐसा माना जा रहा है कि हमारी आने वाली पीढ़ियों की औसल आयु 100 वर्ष से भी अधिक हो जाएगी।

जैव प्रौद्योगिकीविदों ने हर कोशिका के अंदर एक जैव-घड़ी की परिकल्पना की है। इसके अनुसार यह निश्चित होता है कि कितने विभाजन के पश्चात् कोई कोशिका अंतत: मर जाएगी। उदाहरण के लिए मानव त्वचा की कोशिकाएँ 50 विभाजनों के पश्चात् मर जाती हैं। कैलिफोर्निया के जेरोन कॉरपोरेशन के वैज्ञानिकों ने 'टेलोमरेज' नामक एंजाइम का प्रयोग करके मानव की इन कोशिकाओं का जीवनकाल 1000 विभाजन से अधिक तक बढ़ाने में सफलता प्राप्त कर ली है।

आनुवंशिकता की गुत्थी को सुलझाना जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण सफलता है। विगत 200 वर्षों में विज्ञान जगत् में आई असाधारण प्रगति के कारण आनुवंशिकता की प्रक्रिया को बेहतर ढंग से समझा जा सका है। वैज्ञानिकों ने पाया कि आनुवंशिकता के अनुदेश कोशिका के केंद्रक में पाए जानेवाले गुणसूत्र में डी.एन.ए. की घटक इकाइयों के अनुक्रम में लिखित संक्षिप्त आनुवंशिकी कोड का अध्ययन कर जीव के आकार संरचना एवं शरीर के विभिन्न अंगों की कार्यप्रणाली की व्याख्या की जा सकती है।

मानव जीनोम अनुक्रमण के साथ कई अन्य जीवों के जीनोम का भी अनुक्रमण किया जा चुका है, और कुछ अन्य प्राणियों के संदर्भ में यह कार्य अभी जारी है, जिनसे विविध जीनों के प्रकार्य को समझने में सहायता मिलेगी। कई नई तकनीकों के प्रादुर्भाव से भी जीव विज्ञान के शोधकार्य में तेजी आई है। निश्चित रूप से इन सबकी वजह से विविध रोगों के लिए नई औषधियों की खोज में सहायता मिलेगी।

मानव जीनोम अनुक्रमण से मिली सूचना नए लक्ष्यों को खोज करने तथा नई औषधियों को तैयार करने में उपयोगी होगी। एक बार लक्ष्यों का निर्धारण हो जाए, तो लक्षित अणुओं के प्रकार्य को अवरोधित करने वाले अपेक्षित अणुओं की पहचान करना संभव हो जाएगा। माइक्रोएरे तकनीक एक ही बार में हजारों जीनों की अभिव्यक्ति को विश्लेषित करते हुए स्वास्थ्य तथा रोग के लिए बाध्य जीन विशेष या जीन वर्ग की पहचान करने के लिए उपयोगों में लाई जा सकती है। इससे अणुओं के छोटे संयोजनों की, जो औषधियों के रूप में कार्य कर सकती हैं, पहचान में सहायता मिल सकती है। भविष्य में स्वास्थ्य संरक्षण का स्वरूप पूर्णत: बदल जाएगा। भूमंडल के मानव समुदायों में हजारों विभिन्नताएँ होती हैं। चूँकि भविष्य में आनुवंशिक रूप से निर्धारित रोगियों की श्रेणियाँ उपलब्ध होंगी, इस कारण उपचार-प्रधान तथा जीन-आधारित निदान अनिवार्य हो जाएगा। व्यक्ति के संदर्भ में भिन्नता की पहचानकर औषधि के लिए विशेष तर्क परख तथा अपेक्षित मात्रा में तय की जा सकती है, जिसके परिणामस्वरूप रोग से निपटने की प्रणाली

अद्‌भुत होगी। आनुवंशिक रूप से अभियांत्रित पौधे तथा खाद्य पदार्थों के क्षेत्र में परिवर्तन के कारण बीमारी के बजाय स्वस्थ रहने पर अधिक ध्यान केंद्रित किया जाएगा। झुर्रियाँ, स्थूलता, गंजापन, नीरसता जैसी आधुनिक जीवन-शैली जन्य बीमारियों के लिए उपचार संभव हो जाएगा।

जैव आतंकवाद का सामना करने में जैव-प्रौद्योगिकी की सहायता ली जा रही है। टीकाकरण और जैव प्रतिरोधियों के द्वारा इस चुनौती का मुकाबला किया जा रहा है। इसका एक उदाहरण एंथ्रेक्स टीकाकरण है, जिसे सैनिकों को खतरे के क्षेत्र में प्रवेश करने के पहले दिया जाता है। प्रारंभ में इसको आनुवंशिक रूप से पशुओं के लिए तैयार किया गया, बाद में जीनों की समानता के आधार पर मानव में भी प्रयोग में लाया जा सका। अब इसे वायु में प्रयुक्त करने के प्रयास जारी हैं, ताकि अधिक-से-अधिक लोगों तक कम-से-कम समय में इसे पहुँचाया जा सके।

जैव-आतंकवाद या युद्ध से प्रभावित लोगों के उपचार में जैव प्रतिरोधक दवाइयों का उपयोग किया जा रहा है। जैव प्रौद्योगिकी का एक और उपयोग जैव हथियारों के प्रयोग के तुरंत बाद उसकी पहचान करने में है। जैव हथियारों की तुरंत पहचान करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। इस प्रकार के कार्य निष्पादन के लिए अब कई उपकरण बनाए गए हैं, जो प्रभावी रूप से कार्य कर सकते हैं। वैज्ञानिक जैव हथियारों के संभावित खतरों के समाधान के लिए आवश्यक उपकरण को जैव प्रौद्योगिकी की सहायता से तैयार कर रहे हैं।

कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि जैव प्रौद्योगिकी के दुरुपयोग से नवनिर्मित रोगाणुओं द्वारा उत्पन्न संक्रामक रोग, पारिस्थितिक असंतुलन तथा कुछ लोगों की कुत्सित मनोवृत्ति की पूर्ति भी संभव है। बहुत संभव है कि सैन्य उद्‌देश्यों की पूर्ति के लिए जीवाणु बम या विषाणु बम भी बनाए जाएँ। जैव प्रौद्योगिकी का इस प्रकार दुरुपयोग विध्वंसकारी हो सकता है।

वैज्ञानिकों का आह्वान करते हुए तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंद्रिरा गांधी ने कहा था—''विज्ञान का उपयोग शांति और मानव कल्याण के लिए होना चाहिए। आज वैज्ञानिक इस उत्तरदायित्व के प्रति उदासीन नहीं रह सकते।''

संयुक्त राज्य अमेरिका के नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक डॉ. बी.बाल्टीमोर ने आशा प्रकट की थी—''आज वैज्ञानिकों के हाथ में विभिन्न आनुवंशिक तकनीकों के रूप में जो महान् शक्ति आ गई है, वे उसका उपयोग विध्वंसकारी कार्यों में नहीं करेंगे।''

हमें कोई अधिकार नहीं कि हम केवल कुछ लोगों की महत्त्वाकांक्षा एवं

जिज्ञासा को संतुष्ट करने के लिए करोड़ों वर्षों के जैव-विकास की सूझ-बूझ को अनुक्रमणीय रूप से प्रभावहीन कर दें।

अत: जैव प्रौद्योगिकी का उपयोग मानवता के कल्याण में ही किया जाना चाहिए। मानव निर्माण जीन को नियंत्रित करने के समुचित सुरक्षात्मक कदम उठाए जाने चाहिए।

हमारे देश में सी.सी.एम.बी. हैदराबाद में अत्याधुनिक डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी का उपयोग कर मानव जीनोम, जीन उपचार तथा औषधि अंतरण तंत्र जैसे शोध के नए क्षेत्रों पर कार्य आरंभ किया गया है। भविष्य में डी.एन.ए. चिप प्रौद्योगिकी एवं एन.एम.आर. चित्रण के नवीन संस्करण को प्राप्त करने की योजना है, ताकि प्रायोगिक जीवों को मारे बिना उनका चित्रण किया जा सके।

जीनोम चित्रण से हम सामान्य एवं असामान्य मानव जैविकी को समझने में सफल हो सकेंगे एवं डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग से जीन उपचार द्वारा मानवीय रोगों की भविष्यवाणी, रोकथाम, परामर्श एवं संभवत: उनके उपचार में भी सफल हो सकेंगे। जीन चिप प्रौद्योगिकी इस सहस्राब्दि की एक और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इसकी सहायता से जीन में विकास को सूक्ष्मतम परिवर्तन द्वारा अल्प व्यय में किया जा सकता है तथा उसके विकास प्रभाव को समाप्त किया जा सकता है।

बीसवीं सदी में जैव प्रौद्योगिकी द्वारा कई क्षेत्रों में अपार सफलता प्राप्त की गई। 21वीं सदी में इसके द्वारा संपूर्ण जैव प्रणालियों के अध्ययन पर अधिक-से-अधिक दृष्टि केंद्रीकृत होने की संभावना है। वैज्ञानिक यह समझने में लगे हैं कि किस तरह अलग घटक के भाग एक-दूसरे के सहयोग से एक संपूर्णत्व का सृजन कर पाते हैं!

मानव जीनोम अनुक्रमण से मिली सूचना नए लक्ष्यों की खोज करने तथा नई औषधियों को तैयार करने में उपयोगी होगी। एक बार लक्ष्यों का निर्धारण हो जाए, तो लक्षित अणुओं के प्रकार्य को अवरोधित करने वाले अपेक्षित अणुओं की पहचान करना संभव हो जाएगा। माइक्रोएरे तकनीक एक ही बार में हजारों जीनों की अभिव्यक्ति को विश्लेषित करते हुए स्वास्थ्य तथा रोग के लिए बाध्य जीन-विशेष या जीन-वर्ग की पहचान करने के लिए उपयोगों में लाए जा सकते हैं। इससे अणुओं के छोटे संयोजनों की, जो औषधियों के रूप में कार्य कर सकती हैं, पहचान में सहायता मिल सकती है।

ऐसा विश्वास किया जा रहा है कि भविष्य में जैव-प्रौद्योगिकी की सहायता से स्वास्थ्य संरक्षण का स्वरूप पूर्णत: बदल जाएगा। भूमंडल के मानव समुदायों में

हजारों की संख्या में भिन्नता होती है। चूँकि भविष्य में आनुवंशिक रूप से निर्धारित रोगियों की श्रेणियाँ उपलब्ध होंगी, इस कारण उपचार प्रधान तथा जीन-आधारित निदान अनिवार्य हो जाएगा। व्यक्ति के संदर्भ में भिन्नता की पहचान कर औषधि के लिए विशेष तर्क परख तथा अपेक्षित मात्रा तय की जा सकती है।

हमारे पास नवीनतम डी.एन.ए. सीक्वेंसर उपलब्ध है, जो एक संपूर्ण मानव जीनोम का अनुक्रमण करने में सक्षम है। सामान्य रूप से इसे करने में कई साल लग जाते थे। इससे पूर्व होनेवाले मानव जीनोम के अनुक्रमण पर कई बिलियन डॉलर खर्च हो जाते थे। वर्तमान पीढ़ी की तकनीक द्वारा लगभग मात्र एक मिलियन डॉलर के खर्च पर ही किसी व्यक्ति के जीनोम का पुनः अनुक्रमण किया जा सकता है। नवीनतम तकनीकों की विकास प्रक्रिया अभी भी जारी है। यदि इन्हें सफलतापूर्वक विकसित कर लिया जाता है, तो इनके द्वारा मानव जीनोम का पुनः अनुक्रमण 2 से 3 दिनों में पूरा किया जाना संभव है। उसकी लागत भी 10 हजार डॉलर से ज्यादा नहीं होगी। जब यह संभव होगा, तब डी.एन.ए. चिप तकनीक एवं माइक्रोएरे पुरानी हो चुकी होंगी और अपराधस्थल से जब्त किए गए संदिग्ध व्यक्ति से प्राप्त नमूनों के संपूर्ण डी.एन.ए. को प्रत्यक्ष रूप से किए गए अनुक्रमण को सीधे तौर पर प्रयोग में लाया जा सकेगा। वर्तमान में जीवविज्ञान एक बेहद रोचक दौर से गुजर रहा है। तकनीकों के विकास की दिशा में सफल प्रयास किए गए हैं, जिनमें जीवन विज्ञान के क्षेत्र में शोधकार्यों को एक ऐसे स्तर पर किया जाना मुमकिन हुआ है जिसकी पूर्व में कल्पना भी नहीं की गई थी। ऐसे सफल प्रयास तकनीकी विकास के क्षेत्र में हर समय किए जाते रहे हैं। अतएव इसका अनुमान लगाना बड़ा मुश्किल है कि आगामी पाँच वर्षों में क्या होनेवाला है? वर्तमान में वैज्ञानिकों के सामने सबसे बड़ा तथा इस समय असंभव सा लगने वाला प्रश्न यह है कि क्या हम अपराध के स्थल पर पाए गए खून के धब्बे या शुक्राणु से डी.एन.ए. निकालकर उसकी पूरी अनुक्रमण द्वारा संदिग्ध अपराधी के चेहरे का चित्र बना सकेंगे? यदि संभव हो गया तो यह अपराध विज्ञान के जगत् में अभी तक की महाउपलब्धि होगी।

□

9

जीनोमिकी और डॉ. खुराना

जीनोमिकी आनुवंशिकी का वह क्षेत्र है जिसमें हम जीवों के संपूर्ण जीनोम का अध्ययन करते हैं। इसमें जीवों के संपूर्ण डी.एन.ए. अनुक्रम और आनुवंशिक मानचित्रण करने का प्रयास किया जाता है। किसी भी प्रकार के आणविक जीव विज्ञान, आनुवंशिकी या जैविक और चिकित्सकीय अनुसंधान की प्राथमिकता, जीन के कार्य और उसकी भूमिकाओं का विश्लेषण करना ही होता है। केवल एक जीन का शोध करना जीनोमिकी की परिभाषा में नहीं आता, जब तक कि उस जीन की कार्यविधि का संपूर्ण जीनोम नेटवर्क पर क्या प्रभाव पड़ रहा है, इसका अध्ययन न कर लिया जाए। जीनोमिकी के अंतर्गत किसी कोशिका या ऊतक के सभी जीन का अध्ययन डी.एन.ए., एम.आर.एन.ए. और प्रोटीन स्तर पर होता है।

जीनोमिक औषधियों द्वारा व्यक्तिगत स्तर पर जीव की जीनोमिक जानकारियों के उपयोग से इलाज करना, बेहतर स्वास्थ्य लाभ का एक शक्तिशाली तरीका है, आनुवंशिक बीमारियों के साथ जुड़े कारकों की पहचान करके अब यह संभव है कि उस बीमारी के लिए अधिक प्रभावशाली औषधियों का निर्माण हो सके, रोगी का सबसे बेहतर इलाज संभव हो सके, व्यक्ति को जटिल आनुवंशिक बीमारियाँ होने से पहले ही बचाया जा सके और शरीर में दवाओं की प्रतिक्रियाओं के प्रतिकूल प्रभाव से व्यक्ति को बचाया जा सके।

पूर्ण जीनोम के ज्ञान ने जीनोमिकी के क्षेत्र में नई संभावनाएँ विकसित की हैं, जिनसे हम मुख्य रूप से विभिन्न स्थितियों के दौरान जीन अभिव्यक्ति के विषय में सूचना प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार की सूचनाएँ उपलब्ध करवाने से कारगर तकनीकों में प्रमुख है माइक्रोएरे सुविधाएँ एवं जैव सूचना प्रणाली।

डी.एन.ए. माइक्रोएरे प्रौद्योगिकी, संक्रामक रोगों तथा रोग विज्ञान से संबंधित

प्रक्रियाओं की जटिलता को समझने के लिए एक सशक्त व्यवस्था उपलब्ध कराती है। यह सुविधा रोगमूलक जीवों में जीनों के लिए विभिन्न स्थितियों में जीन एक्सप्रेशन प्रोफाइलों की तुलना करने तथा रोग की स्थिति एवं सामान्य स्थिति में निष्पीड़ित जीनों की तुलना करने के लिए लाभदायक है। यह सुविधा मूलभूत कोशिकीय प्रक्रियाओं को समझने में तथा जीनों में उत्परिवर्तनों को रेखांकित करने में भी लाभदायक है।

चूँकि तंत्रिका रोग भी काफी चिंता के विषय रहे हैं, इसलिए तंत्रिका रोगों में जीन की प्रतिक्रिया/सक्रियता/निष्क्रियता को समझने के लिए आधार को समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है, ताकि ऐसे मामलों में भविष्यवाणी, निदान/बेहतर प्रबंधन के लिए बेहतर पद्धति का विकास किया जा सके। पर्यावरणीय घटक, जैसे जीव–विष, पोषण संबंधी कमी विभिन्न जीवों के विभेदी निष्पीड़न पर प्रभाव डालती है, जो बदले में प्रभावित व्यक्ति के ज्ञानात्मक क्रियाओं के साथ पूरी तरह से समझौता कर सकती है। बेहतर औषध लक्ष्यों की पहचान करने के लिए तंत्रिका विज्ञान संबंधी विकृतियों में शामिल विभिन्न जीनों की गतिविधियों की अन्यान्य क्रियाओं/अंतरनिर्भरता को पहचानना लाभदायक होगा, जोकि जीनोमिक माइक्रोएरे की उपयोगिता के जरिए ही संभव है। इसके अतिरिक्त पर्यावरणीय/पोषकता संबंधी दबाव के तहत विभिन्न जीनों के समन्वय को समझने के लिए भी माइक्रोएरे प्रौद्योगिकी की उपयोगिता आवश्यक है।

जीनोमिकी के बढ़ते हुए ज्ञान को हम मानव जाति के बेहतर स्वास्थ्य से जोड़कर देख सकते हैं। इस प्रौद्योगिकी का एक उद्देश्य जीनोमिक औषधियों को चिकित्सा विज्ञान की मुख्यधारा से जोड़ना भी है। जीनोमिक औषधियों द्वारा, व्यक्तिगत स्तर पर, मरीज की जीनोमिक जानकारियों के उपयोग से इलाज करना, बेहतर स्वास्थ्य लाभ का एक शक्तिशाली तरीका है। आनुवंशिक बीमारियों के साथ जुड़े कारकों की पहचान करके अब यह संभव है कि उस बीमारी के लिए अधिक प्रभावशाली औषधियों का निर्माण हो सके, रोगी का सबसे बेहतर इलाज संभव हो सके, व्यक्ति को जटिल आनुवंशिक बीमारियों के होने से पहले ही बचाया जा सके और शरीर में दवाओं की प्रतिक्रियाओं के प्रतिकूल प्रभाव से व्यक्ति को बचाया जा सके। आज जीनोमिकी चिकित्सा विज्ञान के लिए वरदान साबित हो रहा है। आशा की जाती है कि निकट भविष्य में जीनोमिकी सभी प्रकार के जीवनरूपों के रहस्यों को उजागर करने में कारगर सिद्ध हो सकती है।

जीनोमिकी के क्षेत्र में निरंतर हो रही प्रगति को देखते हुए यह अनुमान

लगाया जा रहा है कि जीनोमिकी से प्राप्त सूचना नए लक्ष्यों की खोज करने तथा नई औषधियों को तैयार करने में काफी उपयोगी सिद्ध होगी। एक बार लक्ष्यों का निर्धारण हो जाए, तो लक्षित अणुओं के प्रकार्य को अवरोधित करनेवाले अपेक्षित अणुओं की पहचान करना संभव हो जाएगा।

वास्तव में जीनोमिकी विज्ञान की वह शाखा है जिसमें प्राणियों (चाहे मनुष्य हो या जीवाणु) के समग्र डी.एन.ए. अनुक्रमण का अध्ययन किया जाता है एवं उसकी उपयोगिता को प्राथमिकता दी जाती है।

जीनोमिकी में किसी जीव विशेष के संपूर्ण जीनोम अनुक्रमों का अध्ययन किया जाता है। जीनोम किसी कोशिका में पाए जानेवाले वंशाणुओं का संपूर्ण पुँज है। जीनोमिक्स एवं कंप्यूटर के उपयोग से निर्मित विज्ञान की शाखा बायोइंफार्मेटिक्स नाम से जानी जाती है। इस शाखा के द्वारा जीन मैपिंग एवं गुणसूत्रों के सूक्ष्मतम अध्ययन एवं कूट कोड के बारे में सूचनाएँ ज्ञात की जा सकती हैं।

किसी भी कोशिका या जीव के गुणधर्म एवं क्षमताएँ मूल रूप से उसके जीन के कारण होती हैं। जीन गुणसूत्रों में स्थित होते हैं। जीन डी.एन.ए. का वह खंड है जो किसी लक्षण का निर्धारण करता है। प्रत्येक जीन का एक निर्धारण पालीपेप्टाइड या केवल आर.एन.ए. उत्पादित करता है अथवा वह नियामक प्रोटीनों का बंधन स्थल हो सकता है।

जीन संप्रेषण

डी.एन.ए. प्रतिकृति के अत्यंत तदनुरूप होने के कारण जीन पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपरिवर्तित रूप में संप्रेषित होते रहते हैं। किंतु प्रत्येक पीढ़ी में 10^{-4} से 10^{-7} प्रति जीन की दर से स्वत: उत्परिवर्तन होता रहता है। जब किसी जीव के किसी लक्षण में आकस्मिक एवं वंशागत परिवर्तन होता है तो उसे उत्परिवर्तन कहते हैं। किसी जीव में उपस्थित आनुवंशिक विविधता के मूल स्रोत उत्परिवर्तन ही होते हैं, विभेद सुधार में इसी विविधता का दोहन किया जाता है। आनुवंशिक विविधता का उत्पादन पुनर्योजन द्वारा भी होता है।

जीन संप्रेषण की प्राकृतिक विधियों की कुछ सीमाएँ होती हैं, जो इस प्रकार हैं—

1. ये बहुत कम परिशुद्ध होती हैं, जिससे वांछित जीन संयोजन को प्राप्त करना कठिन एवं दक्ष वरण पद्धतियों पर निर्भर होता है।

2. इन विधियों से बहुत कम स्पीशीज में आपस में जीन स्थानांतरण हो

सकता है। अत: प्राकृतिक जीन स्थानांतरण/प्रेषण विधियों से दूरस्थ वर्गकों में जीन स्थानांतरित नहीं किए जा सकते। इसके लिए पुनर्योजन डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी का विकास किया गया है।

आनुवंशिक बीमारियों को समझने हेतु किसी व्यक्ति की जीन क्रिया, जीनोम संरचना, जीन अभिव्यक्ति इत्यादि का यथावत् आकलन आवश्यक है। इन सभी के अध्ययन हेतु मूलत: जीनोम अनुक्रमण को समझना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। जैव प्रौद्योगिकी के विभिन्न क्षेत्रों में हाल में हुए विकास के परिणामस्वरूप जीवों के आनुवंशकीय अंशों को, उनके डी.एन.ए. की आधार इकाई के रूप में जानना संभव हो गया है।

जीनोमिकी के प्रकार

जैसे-जैसे अधिक-से-अधिक जीवों के विस्तृत मानचित्रण और जीनोम अनुक्रम का निर्धारण होता जा रहा है, जीनोमिकी के क्षेत्र में संभावनाएँ बढ़ती जा रही हैं और अब जीनोमिकी का अध्ययन विभिन्न पहलुओं पर भी किया जा रहा है, जैसे—

संरचनात्मक जीनोमिकी : जिसके अंतर्गत जीनोम संरचना का अध्ययन होता है।

क्रियात्मक जीनोमिकी : जिसके अंतर्गत जीन की कार्यविधि एवं उसकी भूमिकाओं का अध्ययन किया जाता है।

तुलनात्मक जीनोमिकी : जिसके अंतर्गत जीनोम के विकास का अध्ययन किया जाता है।

क्रियात्मक जीनोमिकी ने विज्ञान को एक नई दिशा प्रदान की है। इसके तहत किसी जीनोम द्वारा संश्लेषित संपूर्ण आर.एन.ए. (जिसे ट्रांसक्रिप्टोम) कहते हैं एवं उस जीनोम द्वारा संश्लेषित संपूर्ण प्रोटीन (जिसे प्रोटियोम कहते हैं), का अध्ययन होता है। वास्तव में क्रियात्मक जीनोमिकी ने एक नवीन क्षेत्र प्रोटियोमिक्स को जन्म दिया है, जिसका उद्देश्य किसी जीव के संपूर्ण प्रोटीन सेट की संरचना और उसकी क्रियाओं का निर्धारण करना है।

जैव प्रौद्योगिकी विभाग (डीबीटी) भारत सरकार द्वारा क्रियात्मक जीनोमिकी की परियोजना पर काम चल रहा है। वास्तव में डीबीटी ने 'मानव आनुवंशिकी और जीनोम विश्लेषण' का अनुसंधान कार्यक्रम 1994 में ही शुरू कर दिया था। बेंगलुरु के इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस के मानव आनुवंशिकीविद् प्रो. एम.शरद

चंद्र ने जैव प्रौद्योगिकी विभाग की सहायता से मानव आनुवंशिकी पर अनुसंधान की एक स्वायत्त संस्था का पंजीकरण कराया है। इसमें मानव जीनोम परियोजना से प्राप्त जानकारी के सदुपयोग की संभावनाओं का पता लगाया जाएगा। क्रियात्मक जीनोमिकी की परियोजना सेंटर फॉर बायोकेमिकल टेक्नोलॉजी में पहले से ही चल रही है। यहाँ पर आनुवंशिक अस्थिरता, ट्राइन्यूक्लियोटाइड पुनरावृत्ति विस्तार तथा तंत्रिका क्षरण जैसी आनुवंशिक विषमताओं पर अनुसंधान किया जा रहा है।

क्रियात्मक जीनोमिकी पर अनुसंधान के लिए चार स्थल विकसित किए गए हैं। यहाँ जीनोमिक डाटाबेस बनाए जाएँगे। जीनोमिकी संबंधी अनुसंधान के लिए यहाँ मानव वंशाणु संबंधी आँकड़े निरंतर एकत्र किए जा रहे हैं। ये दर्पण-स्थल जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली; इंस्टीट्यूट ऑफ माइक्रोबियल टेक्नोलॉजी, चंडीगढ़; इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, बेंगलुरु तथा इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ केमिकल बायोलॉजी, कोलकाता में स्थापित किए गए हैं। इनमें वंशाणुकी, प्रोटीनिकी, अणुजैविकी तथा जैव सूचना विज्ञान के विशेषज्ञों को एक ही मंच पर एकत्र करके परस्पर सहयोग से अनुसंधान किए जा रहे हैं। यहाँ डी.एन.ए. आधारित निदान किट और टीके तथा उपचार प्रणालियाँ विकसित की जा रही हैं। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में जीन अनुक्रम पैकेज तैयार किया गया है।

जीवन के विकासकाल में अंततः वे ही जीव बच सके, जो अस्तित्व के कठिन संघर्ष में विजयी रहे। इनमें भी मनुष्य जाति ने अपने प्रादुर्भाव के साथ ही वर्चस्व स्थापित करने में सफलता पाई। इसका एक कारण शायद यह हो सकता है कि किसी भी अन्य जीव स्वरूप का मस्तिष्क मानव की बुद्धिमत्ता में बराबरी नहीं कर सकता। पर ऐसा क्यों है कि मनुष्य और पशु ही नहीं, बुद्धिमत्ता या अन्य गुणों में दो मनुष्य भी समान नहीं होते हैं? ऐसा समझा गया था कि हर मनुष्य का जीनोम अनुक्रम दूसरे से भिन्न होगा। पर ठीक उसी तरह जैसे हर कोशिका की मूल संरचना एक जैसी होती है, जीनोम अनुक्रम भी सभी मनुष्यों में लगभग एक जैसा होता है। मानव जीनोम अनुक्रम परियोजना का एक उद्देश्य यही पता लगाना था कि जीनोम कैसे दो व्यक्तियों को भिन्न बनाता है? दूसरा उद्देश्य यह भी देखना था कि क्या इस अनुक्रम में ही समस्त स्वास्थ्य संबंधित समस्याओं का निदान/उपचार भी मिल सकता है?

इस तकनीक ने मानव को विभिन्न प्राकृतिक एवं संश्लोषित डी.एन.ए. खंडों को मनचाहे संयोजन एवं क्रम में जोड़कर विशिष्ट प्रकार्य वाले जीनों के निर्माण की

क्षमता प्रदान की है। इसके साथ ही इन जीनों का किसी भी जीव की कोशिकाओं में प्रवेश तथा उस जीव के जीनोम में उनका समाकलन किया जा सकता है। इन पराजीनों की अभिव्यक्ति ठीक उसी प्रकार होती है, जैसे कि उस जीव के अपने स्वयं के जीनों की होती है। अत: अब किसी भी जीव के जीन को उपयुक्त तकनीकों द्वारा किसी भी अन्य जीव में स्थानांतरित एवं अभिव्यक्त कर सकते हैं। इसके कारण उपयोगी उत्पादकों की प्राप्ति की संभावनाएँ वस्तुत: असीम हो गई हैं।

जीनोमी लाइब्रेरी

जीनोमी लाइब्रेरी वास्तव में प्लाज्मिड क्लोनों या फाज लायसेट (lysates) का एक संग्रह होता है जिसमें डी.एन.ए. निवेश्यों के रूप में भिन्न डी.एन.ए. खंडों का संपूर्ण योग संबंधित जीव के पूरे जीनोम का प्रतिनिधित्व करता है। बहुधा जीनोमी लाइब्रेरियों में कुछ खंड प्राकृतिक दशा की तुलना में काफी कम आवृत्ति में उपस्थित हो सकते हैं, अथवा अनुपस्थित भी हो सकते हैं। इसके संभावित कारण निम्न हो सकते हैं: 1. कुछ खंडों द्वारा आविषालु उत्पादों (प्रोटीनों) का कोडन, 2. धीमी प्रतिकृति दर, 3. पुनर्योजन के कारण परिवर्तित खंडों का उत्पादन, अथवा 4. प्रतिबंधित एंजाइमों द्वारा आंशिक पाचन में इन खंडों का क्लोनन के लिए सही आमाप का न बन पाना।

जीनोमी लाइब्रेरी का निर्माण

इसके लिए संबंधित जीव का संपूर्ण जीनोम डी.एन.ए. निष्कर्षित किया जाता है। इस डी.एन.ए. को (1) यांत्रिक (2) ध्वनिक या एंजाइमी (प्रतिबंध एंजाइम) विधियों से उपयुक्त आमाप के खंडों में काट लेते हैं। प्रतिबंधित एंजाइमों द्वारा केवल आंशिक पाचन किया जाता है। इस काम के लिए 4 वीपी के अभिज्ञान स्थलों वाले एंजाइमों का उपयोग अधिक लाभकारी होता है, क्योंकि इन एंजाइमों द्वारा आंशिक पाचन से प्राप्त खंडों के उपयुक्त आमाप का होने की सर्वाधिक संभावना होती है। अधिकतर Alui (AG/CT), Hae II (GG/CC) तथा Sau3A(/GATC) के अकेले या मिश्रित पाचनों का जीनोमी लाइब्रेरी बनाने के लिए उपयोग किया गया है। जीनोमी लाइब्रेरी निर्माण के लिए प्रतिबंधित एंजाइमों के उपयोग के निम्न दो लाभ हैं—(1) एक ही एंजाइम का उपयोग करने पर प्रत्येक बार वही डी.एन.ए. खंड प्राप्त होंगे, और (2) इन डी.एन.ए. खंडों के छोर समंजक होते हैं।

जीनोमिकी डी.एन.ए. के उपरोक्त विधि से प्राप्त खंडों के मिश्रण का ऐगरोस

जेल इलेक्ट्रीफोरेसिस या शुक्रोस प्रवण अपकेंद्रण करते हैं, और इस प्रकार उपयुक्त आमाप के खंडों को क्लोनन करते हैं। इस विधि को 'शाट गन विधि' कहते हैं। जीनोमी लाइब्रेरी निर्माण में वाहकों एवं प्लाज्मिडों का व्यापक उपयोग हुआ है। इसका प्रमुख कारण इन वाहकों में 23–25 केबी (किलो बेस पेयर्स, हजार क्षारक युग्म) आमाप के खंडों को सुविधापूर्वक क्लोन किया जा सकता है। डी.एन.ए. निवेश्यों सहित वाहकों को उपयुक्त बैक्टीरिया परपोषी में क्लोन करते हैं।

जीनोमी लाइब्रेरी में कुल क्लोनों की संख्या मुख्य रूप से निम्न दो बातों पर निर्भर होगी : (1) जीनोम की जटिलता–जीनोम जितना ही अधिक जटिल होगा, लाइब्रेरी का आमाप उतना ही बड़ा होगा, निवेश्य आमाप 20 केबी एवं जीनोम के सभी खंडों के उपस्थित होने की प्रायिकता 99% होने पर ई. कोली की जीनोमी लाइब्रेरी का आमाप 1,157 क्लोन (जीनोम आमाप 3.70×10^3 केबी), खमीर के लिए 3,462 क्लोन (जीनोम आमाप 1.5×10^4 केबी), ड्रोसोफिला के लिए 38,000 क्लोन (जीनोम आमाप 1.65×10^5 केबी) एवं मानव के लिए 6,90,819 क्लोन (जीनोम आमाप 3×10^6 केबी होगा।)

वांछित क्लोन की पहचान

जीनोमी लाइब्रेरी के क्लोनों में से वांछित जीन डी.एन.ए. खंड वाले क्लोन की पहचान कालोनी संकरण द्वारा की जाती है। कालोनी संकरण के लिए चिह्नित साधारणतया रेडियोधर्मी समस्थानिक से चिह्नित प्रोब का उपयोग किया जाता है। यह प्रोब—(1) संबंधित जीन का आर.एन.ए. (2) उसके आर.एन.ए. का डी.एन.ए., (3) किसी अन्य जीव का समजात जीन, अथवा (4) उस जीन या डी.एन.ए. खंड के क्षारक क्रम वाला संश्लेषित ओलिगोन्यूक्लियोटाइड हो सकता है।

जीनोमी लाइब्रेरी में वांछित जीन डी.एन.ए. खंड वाले क्लोनों की आवृत्ति निम्न विधि से बढ़ा सकते हैं—क्लोनन के लिए विलग किए गए डी.एन.ए. खंडों का इलेक्ट्रोफोरेसिस या उच्च निष्पादन व्युत्क्रम कला द्रव क्रोमेटोग्राफी करते हैं। इन विधियों से डी.एन.ए. खंडों का मुख्य रूप से आमाप एवं क्षारक संघटन के आधार पर विलगन होता है। इलेक्ट्रोफोरेसिस के बाद जेल का वांछित जीन डी.एन.ए. खंड के लिए प्रोब के साथ सदर्न संकरण करते हैं। इससे जेल में वांछित जीन वाले क्षेत्र को विलग करके उनमें से डी.एन.ए. खंडों को निक्षालित कर लेते हैं, और इनका क्लोनन करते हैं।

इसी प्रकार क्रोमेटोग्राफी कालम से विभिन्न प्रभावों को एकत्रित करके उनका

डाट ब्लाट परीक्षण करते हैं। इस परीक्षण के लिए भी वांछित जीन के लिए प्रोब का उपयोग किया जाता है, जिससे वांछित जीन वाले प्रभाज की पहचान की जाती है। इस प्रभाज में उपस्थित डी.एन.ए. खंडों का क्लोनन किया जाता है।

लेकिन उपरोक्त दोनों ही विधियों से प्राप्त डी.एन.ए. खंडों में वांछित जीन डी.एन.ए. खंड के अलावा भी कुछ-न-कुछ अन्य खंड भी प्रभावित होते हैं। ऐसा विशेष रूप से जटिल जीनोमों वाले जीवों के डी.एन.ए. में होता है। अत: इन विधियों से प्राप्त कालोनी संकरण करते हैं जिससे वांछित जीन वाले क्लोनों की त्रुटिहीन पहचान की जा सके।

एक कोशिका/जीव की वृद्धि प्रजनन, जीवन के लिए आवश्यक सभी निर्देशों/सूचनाओं की सूक्ति जीनोम अनुक्रम में पाई जा सकती है। कोशिका का आनुवंशिक पदार्थ गुणसूत्रों में समाहित डी.एन.ए. से बनता है और गुणसूत्र का वह भाग जिसके अनुक्रम में एक सार्थक कूट निहित है, जीन कहलाता है। किसी भी कोशिका के सामान्य कार्य के लिए सभी जीनों का एक समय में कार्यरत रहना आवश्यक नहीं। विभिन्न जीन भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में, जीवन-चक्र का अलग स्थितियों में, असामान्य स्वास्थ्य दशाओं में और शरीर के विभिन्न अंगों में अलग-अलग समय पर कार्यरत हो सकती है। यथा एक समय में सभी कार्यरत जीनों की जानकारी किसी भी कोशिका की विशिष्ट कार्यदशा की सूचक हो सकती है। किसी भी जीन की कार्यदशा को उसमें बनने वाले आर.एन.ए. अणु द्वारा मापा जा सकता है। आर.एन.ए. पॉलीमरेज नामक एंजाइम किसी डी.एन.ए. अनुक्रम की एक प्रतिलिपि आर.एन.ए. के रूप में अनुलिखित कर सकते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा तीन विभिन्न एंजाइम एक ही प्रकार के डी.एन.ए. से तीन प्रकार के आर.एन.ए. अनुलेख, जिनके भिन्न-भिन्न कार्य होते हैं, बना सकते हैं। ट्रांसक्रिप्टोम कोशिका में यह अनुलेखन प्रक्रिया बड़ी बारीकी के साथ नियंत्रित होती है। इस नियंत्रण द्वारा एक समय में सिर्फ वांछित डी.एन.ए. अनुक्रमों का अनुलेखन किया जा सकता है, जिससे अंत में, किसी एक अवस्था में समस्त आर.एन.ए. अणुओं (अनुलेखों) की विविधता विशिष्ट होती है, इस एक समय में पाए जानेवाले अनुलेखों के आर.एन.ए. समूह को उस कोशिका का ट्रांसक्रिप्टोम (अनुलेख समूह) कहते हैं।

ट्रांसक्रिप्टोम कोशिका की दृश्य गतिविधियों और उसके जीनोम में अदृश्य कूट निर्देशों के बीच की गतिमान कड़ी बनाता है। कोई भी प्राणी बदलती परिस्थितियों के साथ कैसे और कितना सामंजस्य स्थापित कर पाता है, इसका पूरा कच्चा चिट्ठा उसके ट्रांसक्रिप्टोम में मिल सकता है। नई आधुनिक तकनीकों और विधियों के

विकास के साथ व्यापक स्तर पर कोशिका के समस्त अनुलेखों का आकलन किया जा सकता है।

जीनोमिकी और समवेत जीव विज्ञान संस्थान (आई.जी.आई.बी.) नई दिल्ली, सी.एस.आई.आर. के वैज्ञानिकों ने भारत में पहला भारतीय जीनोम अनुक्रमण पूरा कर जीनोमिक्स में भारत के प्रवेश की भूमिका बना दी है, जिससे रोग नैदानिकी और उपचार में नवीन संभावनाओं के द्वार खुलेंगे। अनुक्रमित जीनोम झारखंड के एक अनजान स्वस्थ व्यक्ति का है। जबकि पहले मानव जीनोम अनुक्रमण में एक दशक का समय लगा था और इस काम पर 30 अरब अमेरिकी डॉलर खर्च हुए थे, सी.एस.आई.आर. को यह काम केवल 45 दिनों में और 15 लाख रुपए 30,000 अमेरिकी डॉलर के खर्च में पूरा करने का श्रेय जाता है। आई.जी.आई.बी. के वैज्ञानिकों ने अत्यंत परिष्कृत अनुक्रमण तकनीक का प्रयोग कर सफलतापूर्वक डेटा के 51 गीगाबेस बनाए, जिससे केवल 76 क्षारक युग्मों से बने, आनुवंशिक पदार्थ के छोटे-से-छोटे लाखों टुकड़ों का समानांतर अनुक्रमण संभव हुआ।

एक बार अनुक्रमित डी.एन.ए. के छोटे टुकड़ों को फिर से संदर्भ जीनोम में मैप किया गया। 30 अरब क्षारक युग्मों से बने मानव के संपूर्ण आनुवंशिक पदार्थ के अनुक्रम को ढूँढ़ने का यह विशाल काम आई.जी.आई.बी. में उपलब्ध सी.एस.आई.आर. सुपर कंप्यूटिंग सुविधा के कारण संभव हुआ। इस उपलब्धि के साथ, भारत अमेरिकी, चीन, कोरिया, कनाडा और इंग्लैंड के बाद संपूर्ण मानव जीनोम के अनुक्रमण और संयोजन को क्षमता प्रदार्शित करने वाला छठा देश बन गया है।

स्पष्ट है कि मानव जीनोम के अनुक्रमण में परिष्कृत मशीनों के रख-रखाव और डेटा की विशाल मात्रा के विश्लेषण के लिए उच्च कंप्यूटेशनल क्षमता और तकनीकी जानकारी की जरूरत होती है। मानव जीनोम के अनुक्रमण का प्रारंभ 1989 में हुआ था। अमेरिका के साथ-साथ इंटरनेशनल ह्यूमन जीनोम प्रोजेक्ट कन्सोरशियम में यूनाइटेड किंगडम, फ्रांस, जर्मनी, जापान और चीन के आनुवंशिकविद् शामिल थे। औपचारिक रूप से अंतरराष्ट्रीय ह्यूमन जीनोम परियोजना 1990 में शुरू हुई और 2003 में क्रेग वेंटर, जेम्स वोंटसन और एक अनजान चीनी के जीनोम अनुक्रमण के साथ पूरी हुई। अब तक विश्व भर में केवल 14 लोगों के जीनोमों का अनुक्रमण हुआ है। सी.एस.आई.आर. ने यह उपलब्धि वैश्लेषिक क्षमताओं वाले प्रभावी रूप से समाकालित जटिल सूचना प्रौद्योगिकी टूल्स और नवीन प्रौद्योगिकी को अपनाकर प्राप्त की है।

मानव जीनोम के अनुक्रमण से हमें आनुवंशिक स्तर पर परिवर्तनों (जो दो लोगों को भिन्न बनाते हैं) को समझने में सहायता मिलेगी। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है, चूँकि आनुवंशिक परिवर्तनों और रोगों की पूर्वप्रवणता में एक संबंध होता है, मानव जीनोम अनुक्रमण अतिशय रूप से कैंसर सहित अनेक रोगों के निदान और प्रबंधन में महत्त्वपूर्ण होगा। भारतीय जीनोम के अनुक्रमण से अब तक बड़ी संख्या में हमारे आनुवंशिक पदार्थ में अज्ञात परिवर्तनों, जिसमें एकल न्यूक्लियोटाइड बहुरूपता (एसएनपी) के साथ-साथ अनेक निवेशन/विलोपन शामिल है, का पता लगा है। निश्चित रूप से इन परिवर्तनों की क्रियात्मक भूमिका से विशिष्ट रोगों से संबंधित मार्करों की पहचान पर प्रकाश पड़ेगा, जिनकी पहचान बीमारियों का पूर्वानुमान लगाने के लिए की जाती है, इससे पहले कि वे अनर्थ कर सकें। सी.एस.आई.आर. वैज्ञानिकों ने मानव रोगों को निर्देशित करने के लिए प्रयोग किए जानेवाले एक लोकप्रिय जीव-जेबराफिश के जीनोम का अनुक्रमण पूरा किया है, जो मानव जीनोम का आधा होता है। इस कदम के साथ, भारत जेबराफिश के स्वजात प्रकार के विभेद का अनुक्रमण करनेवाला पहला देश बन गया है।

जीनोमिकी के क्षेत्र में आशातीत प्रगति को देखते हुए यह आशा की जा रही है कि आनेवाले समय में तेज असर वाली, किफायती, निजीकृत तथा रोगों का पूर्वानुमान करते हुए पहले से ही सक्रिय हो जाने वाली चिकित्सा प्रणाली अपनाई जाएगी। रोग के लिए बाह्य जीन-विशेष या जीन-वर्ग की पहचान करने में जीनोमिकी से काफी सहायता मिलेगी।

□

10

मानव जीनोम परियोजना और डॉ. खुराना का शोधकार्य

डॉ. खुराना एवं अन्य जैव-प्रौद्योगिकीविदों के शोधकार्यों द्वारा जीनोम अनुक्रमण की पृष्ठभूमि तैयार हो जाने के पश्चात् मानव जीनोम परियोजना के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई, जिसके परिणामस्वरूप जैव-चिकित्सा के नए आयाम उद्घाटित हुए।

मानव शरीर जैवरासायनिक प्रक्रियाओं का एक पिटारा है। इसकी सारी क्रियाएँ और व्यवहार एक सूचना पद्धति पर निर्भर हैं, जो एक प्रकार की निर्देश संहिता है। मानव शरीर की तीन अरब कोशिकाओं में से प्रत्येक के केंद्रक में यह जीनोम 23 जोड़ी गुणसूत्रों में, जो मुख्यत: डी.एन.ए. द्वारा निर्मित होते हैं, बँटा होता है। कोशिका का संपूर्ण डी.एन.ए. और इसमें निहित सूचनाएँ ही जीनोम हैं। मानव जीवन का मानचित्र तैयार करना जीवविज्ञान के इतिहास में ही नहीं, मानव इतिहास में भी एक महत्त्वपूर्ण क्रांतिकारी अध्याय है। यह हमारे जीवन की पुस्तक की कुंजी है। अभी इन निर्देशों को कंप्यूटर ही पढ़ सकते हैं। लेकिन विज्ञानियों का दावा है कि आनेवाले वर्षों में हमें जीवन के सभी निर्देशों की कुंजी मिल जाएगी। एक दशक में ही जीनोम अनुक्रमण में आशातीत प्रगति हुई है और यह अभी भी जारी है।

1970 के दशक तक विज्ञानियों को जीन और डी.एन.ए. के बारे में काफी कुछ पता लग चुका था। फिर परखनली में कृत्रिम जीन के निर्माण ने एक नया विज्ञान, जीन इंजीनियरी का रास्ता खोल दिया। इसने जीवों में उपयोगी जीन संवर्द्धन और जीन उत्पाद के नए आयाम खोल दिए थे। साथ ही डी.एन.ए. के छोटे-छोटे टुकड़े करके उनमें क्षारों के क्रम को पढ़ने की विधियाँ भी ढूँढ़ ली गई थीं, लेकिन

विशाल मानव जीनोम के लिए ये विधियाँ बिल्कुल अनुपयोगी और अव्यावहारिक थीं। अत: मानव जीनोम परियोजना की सफलता के लिए अति आवश्यक था कि क्षारों को निर्धारित करने की एक ऐसी विधि को विकसित किया जाए जो तीव्रतर होने के साथ-साथ अधिक सूक्ष्मग्राही, सही और सस्ती हो। अभी डी.एन.ए. अनुक्रम निर्धारण की तकनीक में आनुवंशिक चिह्नों (मार्करों) का उपयोग किया जाता है। किसी भी संभाव्य मार्कर के लिए यह बहुत जरूरी है कि वह ऐसा वंशानुगत भौतिक या आणविक लक्षण हो, जो भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न प्रकार का हो।

मानव जीनोम परियोजना का आरंभ निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया गया था—1. मानव आनुवंशिकी और जीवविज्ञान की समझ के लिए एक नया आधार प्रदान करना और मानव जीनोम के सभी तीन अरब क्षार युगलों में निहित आनुवंशिक सूचना संहिता को जानना और समझना, 2. मानव डी.एन.ए. में सभी जीनों की पहचान 3. मनुष्य तथा कुछ अन्य आदर्श जीवों के जीनोम का मानचित्र तैयार करना, 4. परिणामों के विश्लेषण के लिए नई तकनीकें विकसित करना, 5. मानव स्वास्थ्य के विकास के लिए विज्ञानियों को उपकरण और संसाधनों के बारे में प्रशिक्षित करना, और 6. इस परियोजना से उत्पन्न नैतिक, वैधानिक और सामाजिक समस्याओं का समाधान।

हमारा देश अब मानव जीनोम उद्घाटन में विश्व के अतिविशिष्ट देशों के वैज्ञानिक समूह के साथ कंधों से कंधा मिला रहा है। जीनोमिकी और समवेत जीव-विज्ञान संस्थान (इंस्टीट्यूट) ऑफ जीनोमिक्स एंड इंटिग्रेटिव बायोलॉजी (आई. जी.आई.बी.) के विज्ञानियों ने संस्थान के निदेशक डॉ. राजेश गोखले के नेतृत्व में इसे कर दिखाया। निश्चय ही यह भारतीय जीव-विज्ञान के इतिहास में एक मील का पत्थर है। डॉ. गोखले की शोध टोली ने एक 50 वर्षीय झारखंड निवासी पुरुष के संपूर्ण जीनोम का विश्लेषण कर लिया है। भारत में मानव जीनोम अनुक्रमण की परिकल्पना वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (सी.एस.आई.आर.) के पूर्व महानिदेशक प्रोफेसर समीर के. ब्रह्मचारी ने की थी, जब वे आई.जी.आई.बी. के निदेशक थे। प्रथम मानव जीनोम अनुक्रमण में दस वर्ष लगे थे और तीन अरब डॉलर खर्च किए गए थे। स्टीफेन क्वैक की जीन मशीन द्वारा यह काम 30 दिनों के अंदर 50 हजार डॉलर की लागत से किया जा सका है। लेकिन भारतीय मानव जीनोम अनुक्रमण में लगे 45 दिन और लागत आई करीब 25-30 लाख रुपए।

जीनोम की विस्तृत जानकारी और इस जानकारी का उपयोग कर सकने वाली तकनीकों की खोजों से आज जीव-विज्ञान और स्वास्थ्य विज्ञान से संबंधित शोध

की गति और उसका कार्य क्षेत्र बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा है। इस बात को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि निकट भविष्य में इन दोनों क्षेत्रों में तेजी से विकास होगा और आशा की जाती है कि आम आदमी और समाज को इसके लाभ आने वाले कुछ वर्षों के अंदर ही मिलने लगेंगे।

मानव-जीनोम परियोजना का लक्ष्य यह है कि अंत में पूरी तरह से संपूर्ण वंशाणु चित्र या मानचित्र बना लिया जाए, जिसमें कोई स्थान रिक्त न हो और जो 99.99 प्रतिशत सही हो। हालाँकि अनेक ऐसी बातों का साफ होना बाकी है, जिन्हें फिलहाल सोचा भी नहीं गया, लेकिन मानव जीनोम का मानचित्रण मानव की जटिलताओं की हमारी समझ को बढ़ाने में एक बड़ा सार्थक कदम है और इसके आधार पर मानव को रोगी बनाने वाले अनेक विकारों का उपचार खोजा जा सकेगा।

हालाँकि अब तक प्राप्त नए ज्ञान से कई रोगों से जुड़े अनेक वंशाणु पता चल गए हैं, फिर भी अभी मानव के वंशाणुओं के मानचित्र को पूरी तरह व्यवहार में लाने में बहुत समय लगेगा। इसका कारण यह है कि मानव जीनोम का एक बड़ा हिस्सा अभी जंक डी.एन.ए. ही बताया जा रहा है, जो किसी वंशाणु के लिए कूटित नहीं करता। दूसरे, कुछ विकारों से जुड़े वंशाणु ही अभी पकड़ में आए हैं, अधिकतर रोगों को पैदा करने में शामिल विशिष्ट वंशाणुओं की पहचान करना अभी बाकी है। इस काम में अभी वर्षों लग सकते हैं और अंत में एक और मुश्किल यह है कि वे जिस रोग से जोड़े गए हैं, उसे वास्तव में पैदा करते होंगे? क्योंकि एक वंशाणु की अभिव्यक्ति पर्यावरण और अन्य कारकों से जुड़ी होती है।

जो भी हो, इतना जरूर है कि मानव जीनोम परियोजना से जिस प्रौद्योगिकी और जिन संसाधनों को बढ़ावा मिला है, वे जैव चिकित्सा अनुसंधान पर गहरा असर डाल रहे हैं और जीव-विज्ञान तथा क्लिनिकल मेडिसिन संबंधी शोधकार्य के व्यापक फलक को भी काफी हद तक प्रभावित करना शुरू किया है। इसके कारण जो नई प्रौद्योगिकियाँ बलवती हुई हैं, उनमें शामिल हैं, वंशाणु के अनुक्रम का पता लगाने वाले जीन सिक्वेंसर। ये ऐसे उपकरण हैं, जिनसे जीव रसायन संबंधी परीक्षण अब स्वचालित ढंग से किए जाने लगे हैं। इन परीक्षणों के आधार पर ही जीन प्रोब का इस्तेमाल करके आनुवंशिक अनुक्रम पता किए जाते हैं। पहले वैज्ञानिक सारे परीक्षण हाथ से करते थे, लेकिन अब कंप्यूटरीकृत मशीनों के आ जाने से डी.एन.ए. में अनुक्रम मालूम करने के काम में हजारों गुनी तेजी आ गई है। इन मशीनों के बिना मानव जीनोम का मानचित्रण लक्षित समय से पाँच वर्ष पहले करना असंभव था।

मानव जीनोम परियोजना ने एक और नवाचारी प्रौद्योगिकी को जन्म दिया है।

वह है तथाकथित डी.एन.ए. चिप। इसे डी.एन.ए. माइक्रोएरे भी कहते हैं। इसमें डी.एन.ए. सूत्रों के पूरक जोड़ों का उपयोग करके हजारों वंशाणुओं को एक बार में ही पहचाना जा सकता है। इसके लिए डी.एन.ए. के एकल सूत्रों से बनाए गए प्रोब का उपयोग किया जाता है और इन खंडों में जो अनुक्रम है, वह पहले से ज्ञात होता है। जब डी.एन.ए. चिप बनाया जाता है तो पूर्वज्ञात डी.एन.ए. सूत्रों को लेकर परंपरागत तकनीकों से उनका शुद्धीकरण किया जाता है। जैसे कि पॉलीमरेस चेन रिएक्शन (पी सी आर) और जैवरासायनिक संश्लेषण की विधि से। इन एकल सूत्री डी.एन.ए. के छोटे-छोटे (5 से 25 समाधार युग्म वाले) खंडों को लेते हैं और उनमें समाधारों का क्रम पहले से पता होता है। उन्हें फिर सावधानी से काँच के या सिलीकन के वेफर पर जमा दिया जाता है। फिर फोटोलीथोग्राफी की तकनीक से 300,000 तक बड़ी संख्या में भिन्न-भिन्न अनुक्रम 1.3 से.मी.x 1.3 से.मी. आकार के डी.एन.ए. चिप पर जमा देते हैं। ये लगभग 6,000 वंशाणुओं को कूटित करते हैं। जब अजनबी डी.एन.ए. या आर.एन.ए. के खंडों के मिश्रण इस तरह के डी.एन.ए. चिप के संपर्क में लाए जाते हैं, तो मिश्रण के केवल वे ही सूत्र एकल सूत्री डी.एन.ए. के पूर्व ज्ञात अनुक्रम से जोड़ी बनाते हैं, जिनके न्यूक्लियोटाइड अनुक्रम चिप पर मौजूद खंडों के पूरक होते हैं। इस तरह के युग्मित न्यूक्लियोटाइडों को विशेष रसायनों से पहचाना जा सकता है, क्योंकि वे खास जोड़ों से ही बंध बनाते हैं। ऐसे अधिकतर रसायन चमक पैदा करते हैं, अत: उन्हें आसानी से पहचानकर उनसे बंधित वंशाणुओं को भी पहचाना जा सकता है। इसके साथ ही एक लेसर स्कैनिंग युक्ति होती है, जिसकी सहायता से चिप की सतह को स्कैन करके विशिष्ट वंशाणुओं की अभिव्यक्ति का स्तर भी मापा जा सकता है। चिप पर प्रत्येक स्थान में प्रतिदीप्ति, यानी चमक की तीव्रता को मापकर-वंशाणु अभिव्यक्ति का स्तर मालूम किया जाता है। मानव जीनोम के मानचित्रण में तो इस डी.एन.ए. चिप प्रौद्योगिकी से सहायता मिली ही, साथ ही उसके बाद जीनोमिकी संबंधी खोजों में भी यह बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई। इस प्रौद्योगिकी के उपयोग से दवाओं की खोज और विषविज्ञान संबंधी शोध जैसे अनेक क्षेत्रों के मार्ग प्रशस्त होने की आशा है।

अब विस्तृत जीनोम मानचित्र की उपलब्धता बढ़ती जा रही है, अत: शोधकर्ता दर्जनों आनुवंशिक दशाओं से जुड़े वंशाणुओं का पता लगाने में जुट गए हैं, जैसे कि मस्क्यूलर डिस्ट्रोफी, बड़ी आँत का वंशागत कैंसर, अल्जाइमर रोग और वंशागत स्तन कैंसर आदि। इन दिनों जैसे रूधिर शर्करा की जाँच डॉक्टर ही नहीं, बल्कि खुद रोगी भी कर सकते हैं। वैसी ही जाँच डी.एन.ए.

चिप का इस्तेमाल करके एड्स, अल्जाइमर रोग सिस्टिक फाइब्रोसिस, कुछ किस्म के कैंसर आदि आनुवंशिक रोगों की भी की जा सकेगी।

आणविक चिकित्सा का एकदम नया क्षेत्र उभर रहा है, जिसमें लक्षणों का इलाज करने की बजाय रोग के बुनियादी कारणों का उपचार किया जाएगा। अनेक विकारों का शीघ्र निदान होने से उनका इलाज भी जल्दी किया जा सकेगा। इसी प्रकार आयुर्विज्ञान के शोधकर्ता नई-नई चिकित्सा प्रणालियाँ प्रवर्तित कर सकेंगे, जिनमें नए वर्गों की औषधियाँ और प्रतिरक्षात्मक चिकित्सा प्रणालियों का उपयोग किया जाएगा। जीन थेरेपी, यानी वंशाणु चिकित्सा से दोषी वंशाणुओं को निकालना या उन्हें दोषमुक्त करना भी संभव हो जाएगा।

मानव वंशाणुओं के तमाम उत्पाद पता चलने से नई-नई औषधियों के निर्माण की संभावनाओं का पिटारा ही खुल जाएगा। सन् 2000 में 500 के करीब दवाएँ इस्तेमाल की जा रही थीं, जबकि नई तकनीकों से सन् 2020 तक इनसे कम-से-कम छह गुनी नई दवाएँ पहचानकर, परीक्षणों के बाद बाजार में आ सकती हैं। इस बात की भी बहुत संभावना है कि ये सब-की-सब पुनर्संयोजी डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी से निर्मित की जाएँगी। इस प्रकार वे दवाएँ मानव-इंसुलिन और मानव वृद्धि हार्मोन की तरह 'अभिकर्मक, श्रेणी की शुद्धता' वाली होंगी।

मानव-जीनोम परियोजना के बाद एक नया वैज्ञानिक क्षेत्र जीनोमिक्स अर्थात् जीनोमिकी तो अभी से बन चुका है, जिसमें आनुवंशिक सामग्री का बड़े स्तर पर अध्ययन किया जाता है। मानव-स्वास्थ्य में आनुवंशिक योगदान के बारे में चिकित्सा-उद्योग मानव-जीनोम से प्राप्त ज्ञान, संसाधनों और प्रौद्योगिकियों के आधार पर गहरे अनुसंधान में लग गया है, ताकि इस बारे में और भी ज्यादा जानकारी मिल सके। इस तरह मानव-स्वास्थ्य में जीनोमिकी के अनुप्रयोग से आयुर्विज्ञान में एक नई शाखा 'जीनोमिक मेडीसिन' का जन्म हुआ है। रोगों के निदान, निगरानी और उपचार के क्षेत्र में आनुवंशिकी की भूमिका दिनोंदिन महत्त्वपूर्ण होती जा रही है।

चाहे वंशागत हुई हों या फिर विषाणु, जीव-विषयों, जैसे पर्यावरणगत दबावों से पैदा हुई हों, सभी बीमारियों का एक आनुवंशिक पहलू जरूर होता है। अत: मानव-जीनोम परियोजना की सफलता के बाद शोधकर्ता वंशागति की सबसे छोटी इकाई, यानी वंशाणु में हुई उस त्रुटि को सीधे-सीधे पकड़ सकते हैं, जिसके कारण रोग पैदा हुआ या रोग पनपने के रास्ते खुले। इस प्रकार के शोधकार्य का अंतिम लक्ष्य यह है कि इस जानकारी का लाभ उठाकर मानव को त्रस्त करनेवाले हजारों रोगों की रोकथाम की जा सके, इलाज किया जा सके और उनसे मुक्ति दिलाई जा सके।

भविष्य में जीनोमिकी की समझ से हमें मानव-विकास और उस जैविकी का रहस्य जानने में भी सहायता मिलेगी, जो हम संपूर्ण चेतन जगत् के साथ बाँटते हैं। मानव और चूहे जैसे अन्य जीवों की तुलनात्मक जीनोमिकी से इस तरह की खोजें होने लगी हैं, जिनमें रोगों और अन्य विशेषकों के जुड़े एक से वंशाणु चूहे और मानव दोनों में पता लग रहे हैं। आगे चलकर इस प्रकार के तुलनात्मक अनुसंधान से उन हजारों वंशाणुओं के कार्यकलापों का भेद खुलेगा, जो अभी अज्ञात हैं।

लेकिन वंशाणुओं की पहचान से शुरू करके उनके आधार पर कारगर उपचार करने के रास्ते में अभी बहुत सी चुनौतियाँ हैं, जिनका सामना करना पड़ेगा। इसी बीच किसी खास संदिग्ध रोग वाले या उस रोग के होने के जोखिम से ग्रस्त व्यक्तियों में रोग का निश्चित रूप से निदान करने वाले किटों के विकास के लिए जैव प्रौद्योगिक कंपनियों के बीच होड़ लगी है। इस तरह के अनेक जीन-टेस्ट अब बाजार में दिनोदिन अधिक संख्या में उपलब्ध होते हैं, हालाँकि वैज्ञानिक समुदाय में इस बात पर बहस भी चल रही है कि जो डॉक्टर और रोगी इस तकनीक से अनभिज्ञ हैं, उनके बीच इसके वैज्ञानिक और सामाजिक पक्ष को स्पष्ट किए बिना इन बायोटेक-उत्पादों को कैसे पहुँचाया जाए? इनमें से अनेक परीक्षण, हालत सुधारने में ही नहीं, बल्कि रोगमुक्त करने में भी बड़े कामयाब रहे हैं, फिर भी वैज्ञानिकों में इनकी वैज्ञानिक व्याख्या के बारे में मतभेद हैं।

मानव-जीनोम परियोजना का भी एक दूसरा पहलू है। इस नव विकसित ज्ञान का दुरुपयोग होने की आशंका को पूरी तरह से नकारा नहीं जा सकता। उदाहरण के लिए जब तक आनुवंशिक परीक्षणों को पूरी तरह गोपनीय रखना अनिवार्य नहीं किया जाएगा, तब तक जो रोगी इन परीक्षणों से गुजर रहे हैं, उनकी नौकरी छिन जाने या बीमा करने से इनकार किए जाने की आकांशाएँ बनी रहेंगी। अगर इन व्यक्तिगत आनुवंशिक पहलुओं को सार्वजनिक किया जाता रहा, तो रोगियों के परिवारवालों को भी इस तरह के जोखिम उठाने पड़ सकते हैं। एक और खतरा यह पैदा हो गया है कि यह नया ज्ञान एक प्रकार का आनुवंशिक अलगाववाद पैदा कर सकता है। मानव-व्यवहार के अनेक पहलू वंशाणुओं से जोड़े जा सके हैं, जैसे कि बुद्धिमत्ता या आपराधिक व्यवहार। इस तरह जातीय भेदभाव को बल मिलेगा।

नया विकास यह हुआ है कि हजारों वंशाणुओं की सूची उपलब्ध हो जाने से एक नई वैज्ञानिक शाखा का जन्म हुआ है, जिसे प्रोटियोमिक्स, यानी प्रोटियोमिकी कहते हैं। इसमें प्रोटीनों की संरचना और कार्य का बड़े पैमाने पर अध्ययन किया जाता है। यह विषय जरूरी हो चला था, क्योंकि डी.एन.ए. आनुवंशिक सूचना पारेषित तो

करता है, लेकिन कोशिका में इसकी भूमिका बुनियादी तौर पर एक तरह से निष्क्रिय ही होती है। डी.एन.ए. द्वारा कूटित प्रोटीन ही हैं, जोकि वास्तव में कोशिका में असंख्य रासायनिक अभिक्रियाओं को अंजाम देते हैं, जो कि अंत में जिसे हम 'जीवन' कहते हैं, उसका द्योतक हैं। इसलिए अब वैज्ञानिक यह पता लगाने में जुट गए हैं कि जीन जिन प्रोटीनों को बनाते हैं, वे प्रोटीन वास्तव में करते क्या हैं? इसके लिए वैज्ञानिक नए-नए तरीके इस्तेमाल कर रहे हैं। चूहे में 99 प्रतिशत वंशाणु मानव के समान ही होते हैं, इसलिए वैज्ञानिक चूहों में यह पता लगा रहे हैं कि उत्परिवर्तित वंशाणु (म्यूटेंट जीन) चूहों में किस तरह का व्यवहार करते हैं? उनका विचार है कि इस तरह की खोजों में से मानव-जीनोम परियोजना में खोजे गए हजारों वंशाणुओं की वास्तविकता मालूम की जा सकेगी।

जीवन की किताब को समझने में मानव-जीनोम का मानचित्रण असल में एक छोटा-सा कदम ही माना जाएगा। बड़ी छलाँग लगाना तो अभी दूर है। अक्षर जरूर पढ़ लिये गए हैं, लेकिन अधिकतर शब्द और वाक्य और उनके अर्थ अभी पूरी तरह समझने बाकी हैं। जब तक यह नहीं किया जाता, जीवन की यह किताब एक शानदार कंप्यूटर डेटाबेस ही बनी रहेगी। फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं है कि मानव-जीनोम का सफल मानचित्रण इसका संकेत अवश्य देता है कि कोई पचास साल पहले वॉटसन और क्रिक ने सर्वव्यापी डी.एन.ए. की जो दुहरी कुंडली वाली संरचना का भेद खोला था, तब से आज तक इस क्षेत्र में बड़ी विशाल प्रगति हुई है। इससे जीवन की किताब के पन्ने तो पढ़े ही गए, उस अरबों डॉलर के उद्योग की भी नींव रख दी गई, जो विश्व की ऐसी उपलब्धि बन चुका है, जिसके हाथ में मानव के भविष्य की कुंजी है।

वंशाणुओं की क्रिया के अध्ययन में एक नई दिशा का सूत्रपात जॉर्ज स्नैल, जीन दॉसेत और बारूज बेनासिराफ के शोधकार्य से हुआ। इन तीनों ने कुछ रोगप्रतिरक्षक अभिक्रियाओं के लिए उत्तरदायी आनुवंशिक कारकों का पता लगाया। जब बाहरी ऊतक या अंग किसी की देह में प्रत्यारोपित किए जाते हैं, तो देह की प्रतिरक्षक प्रणाली उसे अंगीकार नहीं करती, यानी प्रतिरक्षा की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में विशिष्ट है। इन तीनों वैज्ञानिकों के शोधकार्य से यह पता चला कि प्रत्येक व्यक्ति का अनूठापन उन वंशाणुओं से निर्धारित होता है, जो विशिष्ट प्रोटीन-कार्बोहाइड्रेट सम्मिश्रों के निर्माण का नियमन करते हैं। इन सम्मिश्रों को ऊतक संयोज्यता प्रतिजन (हिस्टोकंपेटिबिलिटी एंटीजन) कहा गया। संक्षेप में इन्हें एच-एंटीजन कहते हैं। ये देह की प्रतिरक्षक अभिक्रियाओं के लिए उत्तरदायी भिन्न-भिन्न कोशिकाओं के पुंजों

के बीच की अंत:क्रिया का निर्धारण करते हैं। एच-एंटीजनों का ज्ञान अनेक प्रकार से बड़े व्यावहारिक महत्त्व का है, जैसे कि ऊतकों के प्रत्यारोपण में।

संक्रामण कारकों के विरुद्ध देह की प्रतिरक्षात्मक अभिक्रिया का आनुवंशिक नियंत्रण, इस अभिक्रिया में निर्णायक भूमिका निभाता है। संक्रमणों की प्रतिरोधिता की क्षमता भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न होती है और काफी हद तक यह क्षमता ऐसी लगती है कि आनुवंशिक रूप से निर्धारित होती है। जॉर्ज स्नैल ने हमारे उस ज्ञान की बुनियाद रखी, जिसमें वे नियम खोजे गए, जो 'स्व' को 'पर' से अलग पहचानने की देह की क्षमता पर लागू होते हैं। उन्होंने यह खोज चूहों के विभेदों पर अध्ययन से की। इन चूहों की संतानों में बार-बार समागम कराया गया और इस तरह आनुवंशिक दृष्टि से एकयुग्मजी जुड़वा पैदा किए गए। उन्होंने अपनी खोज से यह सिद्ध किया कि किसी का ऊतक दूसरी देह में प्रत्योरोपित किया जा सके, यह बात कुछ विशेष संरचनाओं की मौजूदगी से निर्धारित होती है। ये संरचनाएँ 'हिस्टोकंपेटिबिलिटी एंटीजन' कही जाती हैं। उन्होंने आगे दिखाया कि एक खास गुणसूत्र के सीमित क्षेत्र में मौजूद वंशाणु, जिन्हें एच-जीन कहा गया, इन एंटीजनों के निर्माण का नियंत्रण करते हैं। इस क्षेत्र में वंशाणुओं की काफी बड़ी संख्या होती है और इसे ऊतक संगति सम्मिश्र या संक्षेप में 'एम.एच.सी.' कहते हैं। स्नैल की ये बुनियादी खोजें ही प्रत्यारोपण प्रतिरक्षा विज्ञान (ट्रांसप्लांटेशन इम्यूनोलॉजी) की जन्मदाता बनीं।

दॉसेत ने मानव के एच-वंशाणुओं के समकक्ष वंशाणु, चूहों में क्या खोज डाले, मानव में अंग-प्रत्यारोपण के नियम खोजने का मानो पिटारा ही खुल गया। अनेक बच्चों को जन्म देनेवाली माताओं की प्रतिरक्षी क्षमता पर अनुसंधान करते हुए दॉसेत ने यह सिद्ध कर दिया कि एक अकेले गुणसूत्र पर स्थित एकल आनुवंशिक प्रणाली ही प्रतिरक्षी पैदा करनेवाले एंटीजनों को निर्धारित करती है। इन एंटीजनों को ह्यूमन ल्यूकोसाइट एंटीजन (एच.एल.ए.) कहा गया। जो वंशाणु इनका निर्धारण करते हैं, उन्हें एच.एल.ए. वंशाणु नाम दिया गया। इस प्रकार दॉसेत ने चूहों में मानव के एच-वंशाणुओं के तुल्य वंशाणु खोज लिये। इस खोज के कारण गुर्दों का प्रत्यारोपण करते समय दोनों प्रदाता और प्राप्तकर्ता के ऊतक का प्रतिरूपण संभव हो सका और प्रत्यारोपण की सफलता की संभावनाएँ बढ़ गईं।

बारूज बेनासिराफ ने गिनीपिगों पर काम करते हुए एक और महत्त्वपूर्ण वंशाणु-समूह का पता लगाया, जो गुणसूत्र पर स्थित प्रमुख ऊतकसंयोज्य संश्लिष्ट में शामिल होता है। उन्होंने यह सिद्ध किया कि गुणसूत्र का यह भाग मानव-शरीर की अनेक रोग प्रतिरक्षात्मक अभिक्रियाओं के नियमन के लिए कई प्रकार के प्रमुख कार्य

करता है। यही कारण है कि एम.एच.सी. को 'सुपरजीन' कहा गया। बेनासिराफ द्वारा उद्घटित इस शोध-क्षेत्र से भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में संक्रमण के प्रति रोग प्रतिरक्षा संबंधी अनुक्रिया को संचालित करने की भिन्न-भिन्न क्षमताओं का विश्लेषण कर पाना संभव हुआ। कोशिका की सतह पर रोग प्रतिरक्षण की अभिक्रियाओं का नियमन करनेवाली आनुवंशिक रूप से निर्धारित संरचनाओं से संबंधित खोजों में अपने उत्कृष्ट योगदान के लिए स्नैल, दॉसते और बेनासिराफ को संयुक्त रूप से सन् 1980 के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

जीनोम हर प्राणी का अभिन्न अंग होता है, जो उसके शारीरक, मानसिक और व्यावहारिक गुणों को नियंत्रित करता है, जीनोम जीनों से बनता है और डी.एन.ए. से ही प्रोटीन की उत्पत्ति होती है, जो किसी भी प्राणी की कोशिका में महत्त्वपूर्ण कार्य संपादित करते हैं। भिन्न-भिन्न प्राणियों के जीनोम पढ़ने का कार्य जीनोम परियोजना के अंतर्गत संपन्न किया जाता है। वास्तव में यह एक बहुत बड़े स्तर का कार्य है, जहाँ सैकड़ों वैज्ञानिक और मशीन मिलकर किसी भी प्राणी के जीनोम को पढ़ते हैं और उस प्राणी विशेष के अलग-अलग जीनों को पहचानकर इस तरह सजाया जाता है, जैसे कि वे वास्तविक रूप में कोशिकाओं में होते हैं। इस प्रक्रिया को टिप्पण (Annotation) कहते हैं।

जीन और जीनोम

सन् 1960 से 1970 के दौरान डॉ. हरगोविंद खुराना, मार्शल नीरनबर्ग और अन्य वैज्ञानिकों ने जीव-विज्ञान की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया डी.एन.ए. के आर.एन.ए. और आर.एन.ए. से प्रोटीन के माध्यम से आनुवंशिक गुणों के प्रवाह की दिशा का पता लगाया। डी.एन.ए. के एक अंश को, जो किसी एक प्रोटीन को बनाने की सूचना रखता है, 'जीन' कहते हैं। वायरस से बैक्टीरिया और मनुष्य तक की आनुवंशिकता का यही आधार है, और किसी भी जीव के समस्त आनुवंशिक गुणों का भंडार उसका जीनोम ही है।

मान लीजिए कि संपूर्ण मानव जीनोम एक वृहत पुस्तक है। इस पुस्तक में कुछ 23 अध्याय हैं, जिन्हें गुणसूत्र या क्रोमोजोम कहा जाता है। प्रत्येक अध्याय में कई हजार कहानियाँ लिखी होती हैं, जिन्हें जीन कहते हैं। प्रत्येक कहानी में असंख्य अनुच्छेद हैं। अनुच्छेद दो प्रकार के होते हैं, सार्थक अनुच्छेदों को एक्सॉन कहा जाता है। ये आनुवंशिक सूचनाओं से लैस होते हैं। एक्सॉन में आनुवंशिक शब्दों का निर्माण त्रयकों (ट्रिप्लेट्स) द्वारा होता है। निरर्थक अनुच्छेदों, जिन्हें इंट्रॉन

कहा जाता है, में आनुवंशिक सूचनाएँ नहीं होतीं। इन्हें हम विज्ञापन कह सकते हैं। पूरी कहानी इन्हीं असंख्य विज्ञापनों द्वारा बाधित रहती है।

एक त्रयक तीन न्यूक्लियोटाइडों का समूह है। प्रत्येक न्यूक्लियोटाइड में शक्कर, फॉस्फेट और क्षार के एक-एक अणु होते हैं। क्षार ही इस पुस्तक के अक्षर हैं। क्षार चार प्रकार के होते हैं—एडिनीन, थायमीन, गुआनीन और साइटोसीन और ये जोड़ियों में रहते हैं। एडिनीन थायमीन के साथ जोड़ी बनाता है और साइटोसीन गुआनीन के साथ। मानव जीनोम में क्षार युगलों की संख्या तीन अरब और जीनों की संख्या 25-30 हजार के लगभग है। जीन प्रोटीन संश्लेषण के लिए उत्तरदायी होता है। विशिष्ट जीन विशिष्ट प्रोटीन का निर्माण करता है। प्रोटीन अमीनो अम्लों की लड़ी है। एक त्रयक में एक ही अमीनो अम्ल के लिए सूचना होती है। कभी-कभी एक प्रोटीन का निर्माण एक से अधिक जीन भी करते हैं। जीन की कार्यपद्धति अत्यंत जटिल है।

आज हम जीन क्रांति के महान् युग के द्वार पर खड़े हैं। विज्ञान अभी से ही बड़े-बड़े दावे कर रहा है। शायद निकट भविष्य में ही हमारे पास पैन या एटीएम कार्ड की तरह एक जीनोम कार्ड भी होगा, जो हमें बताएगा कि आणविक स्तर पर हम क्या हैं, हमारी बौद्धिक और मानसिक क्षमताएँ क्या हैं, हम किन भावी रोगों से ग्रसित हैं और अभी से उनके इलाज के लिए क्या किया जा सकता है, हमारी व्यवहारगत विशिष्टताएँ क्या हैं, आदि आदि। चिकित्सा की एक नई विधा जीन थेरैपी, जो जीनोम और जीन पर आधारित है, का जन्म अभी हो ही चुका है। इस चिकित्सा पद्धति द्वारा वंशानुगत रोगों के निदान में न केवल सहायता मिलेगी, बल्कि जीन की भाषा को पढ़कर आनुवंशिक विकृतियों और विकृत जीन को संशोधित भी किया जा सकेगा। एक अनुमान के अनुसार निकट भविष्य में कृत्रिम हृदय, गुरदा आदि बनाकर उसे व्यक्ति में प्रतिरोपित भी किया जा सकेगा। एक आम व्यक्ति की औसत उम्र 100 को पार कर जाएगी और कुछ जीवों का औद्योगीकरण हो जाएगा। आशा की जाती है कि वृद्धावस्था पर अंकुश लगा लिया जाएगा। इतना ही नहीं, जीन को काट-छाँटकर व्यक्ति को नया जीवन देना शायद संभव हो जाएगा। अब वह दिन दूर नहीं कि जब बड़े-बड़े अस्पतालों में जीन देना शायद संभव हो जाएगा। मरम्मत केंद्र खुल जाएँगे। बहुत से असाध्य रोगों के जीनों की पहचान तो कर ही ली गई है और ऐसे जीनों को पहचानने का कार्य विज्ञानी युद्ध स्तर पर कर रहे हैं।

ऐसा माना जा रहा है कि अब मनुष्य स्वयं अपने जीवन की कुंडली लिखेगा और प्राकृतिक विकास की प्रक्रिया बेमानी हो जाएगी। लगता है जीनोमिकी का वह स्वप्नलोक आ गया है और अब प्रजनन और अनुकूलन के आधुनिक केंद्रों में हमारी

आनुवंशिकता के निर्णायक अभयदान देने की स्थिति में आ गए हैं।

वैज्ञानिकों का मानना है कि जीवन की जटिलताओं के बारे में महज जीनोम अनुक्रमण पर आधारित हमारी समझ अभी भी बहुत कम है। जीनोम जीवन की पुस्तक नहीं, जीवन के बारे में पुस्तक है। जीनोम ही सबकुछ नहीं है। ट्रांसक्रिप्टोम, प्राटियोम और मेटाबोलोम के बारे में अभी भी हमारा ज्ञान बहुत कम है। जीन की विभिन्न भूमिकाओं को नियंत्रित करना शायद कभी भी संभव नहीं हो सकेगा। जीन महत्त्वपूर्ण तो हैं, लेकिन वे सबकुछ तय नहीं कर सकते। जीन क्षमता को परिभाषित करते हैं, लेकिन पर्यावरण तय करता है कि उस क्षमता का उपयोग कितना, कब और कैसे हो?

सभी जीनों के कार्य का पता लगने के बाद इस जानकारी का उपयोग मनुष्य को बीमारियों से छुटकारा दिलाने के लिए किया जा सकता है। नई दवाइयों की खोज हो सके, इसके लिए हमें मनुष्य की बीमारियों के ट्रांसजेनिक एनिमल नमूने (मॉडल) बनाने होंगे। ये मॉडल चूहे के या फलकीट के हो सकते हैं। इसके अलावा भविष्य में हमें संक्रामक बीमारियों से छुटकारा पाने के लिए भी मानव जीनोम अनुक्रमण तथा संक्रामक जीवाणुओं के जीनोम अनुक्रमण से नई दवाइयों की खोज, में मदद मिलेगी। इसके लिए हमें उपयुक्त (अति संरक्षित) प्रयोगशाला की आवश्यकता होगी, जोकि अपने देश में अभी तक उपलब्ध नहीं है। उपरोक्त तकनीकों में से लगभग सारी सुविधाएँ सी.सी.एम.बी. हैदराबाद में मौजूद हैं। संरचनात्मक जैविकी की सुविधा के लिए भी प्रयास जारी है, जोकि शीघ्र उपलब्ध हो जाएगा। संक्रामक जीवाणुओं के साथ प्रयोग करने के लिए जो सुविधा आवश्यक है, वह अभी सी.सी.एम.बी. में नहीं है, इसके लिए भी प्रयास जारी है और संभवत: निकट भविष्य में यह भी उपलब्ध हो जाएगी।

हाल ही की तकनीकी उपलब्धियों के आधार पर जीनोम का विश्लेषण इतने बड़े पैमाने पर संभव हुआ है, जोकि इससे पहले संभव नहीं था। बायोइनफॉरमेटिक्स, फंक्शनल जीनोमिक्स, डी.एन.ए. चिप/माइक्रोएरे व प्रोटियोमिक्स आदि जैव तकनीकें भविष्य में शोध के तरीकों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाने जा रही हैं। दुर्भाग्यवश, यह सभी तकनीकें बहुत खर्चीली हैं। इन्हें सभी विश्वविद्यालायों, शोधकेंद्रों और प्रयोगशालाओं को उपलब्ध कराना भारत जैसे विकासशील देश के लिए संभव नहीं है। इसलिए हमें आवश्यकता है—

- संसाधन केंद्र बनाने की।
- सभी केंद्रों के बीच सहयोग के लिए नेटवर्क स्थापित करने की।

- इन तकनीकों की जानकारी देने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण देने की।
- उपयुक्त बीमारियों के लिए नई दवाइयों की खोज करने की।
- चिकित्सकों और वैज्ञानिकों के बीच परस्पर सहयोग की, तथा।
- जनता की भागीदारी की।

मानव जीनोम अनुक्रमण के आधार पर कुछ वर्षों में, शिशु का जन्म होते ही, उसे भविष्य में होने वाले संभावित रोगों का पता लगाया जा सकेगा। इसके आधार पर चिकित्सक उसके जीवन यापन व रहन-सहन के तरीकों और उसके पालन करने के नियमों के बारे में बता सकेंगे, जिससे वह उन बीमारियों से बच सकेगा। इसके अतिरिक्त, भविष्य मे दवाइयाँ हर व्यक्ति की आनुवंशिक संरचना के आधार पर ही दी जाएँगी; क्योंकि एक ही बीमारी से ग्रसित सभी लोगों के लिए एक ही दवा उपयोगी सिद्ध नहीं होती है। इसका कारण उनकी आनुवंशिक संरचना में भिन्नता है। इसलिए भविष्य में चिकित्सक उस व्यक्ति की आनुवंशिक संरचना के अध्ययन करने के बाद ही दवा देगा। इस प्रकार मानव जीनोम अनुक्रमण का सबसे बड़ा प्रभाव हमारे स्वास्थ्य के क्षेत्र में होगा।

जनसंख्या के स्तर पर जीनोम की जानकारी से यह निर्धारित किया जा सकता है कि क्यों कुछ लोगों में खास बीमारी होती है और कुछ को नहीं। हम यह भी मालूम कर सकते हैं कि क्यों कोई दवा कुछ लोगों पर असर करती है और अन्य को नहीं, या उसका हानिकारक असर होता है। हम यह अकसर देखते हैं कि संक्रामक रोगों का कुछ ही लोगों पर प्रभाव पड़ता है। जनसंख्या के स्तर पर जीनोम की जानकारी होने पर हम इन विविधताओं के पीछे छिपे कारणों का पता लगा सकते हैं और व्यक्ति विशेष के स्वास्थ्य के बारे में केंद्रित सलाह दी जा सकती है। ऐसे में व्यक्ति विशेष के लिए खास दवाओं की निश्चित मात्रा के बारे में जानकारी उपलब्ध होगी। इस प्रकार की व्यवस्था से खर्च बहुत कम होगा और मरीज को भी अनावश्यक परेशानी नहीं झेलनी पड़ेगी। सबसे अच्छी बात यह है कि थोड़ी-सी सावधानी द्वारा तमाम बीमारियों से बचा जा सकेगा।

जीनोम : आनुवंशिकता का भौतिक आधार

सभी प्राणियों और पेड़-पौधों के जीवन का आनुवंशिक आधार डी.एन.ए. के लंबे धागों में होता है, जिन्हें जीनोम कहते हैं। जीनोम के अंदर हजारों की संख्या में जीन और फिर उनके समुचित उपयोग के लिए नियंत्रक डी.एन.ए. होते हैं। जिन जीवों के शरीर की रचना सिर्फ एक कोशिका मात्र से होती है, उनमें अधिकतर जीन

हमेशा काम करते हैं। परंतु कुछ जीन ऐसे होते हैं, जो परिस्थितियों के अनुरूप सक्रिय या निष्क्रिय होते रहते हैं। विकसित प्राणियों के शरीर में अनेक प्रकार की कोशिकाएँ होती हैं। कोशिका का प्रकार प्राय: इस बात पर निर्भर करता है कि उसमें कौन-कौन से जीन काम कर रहे हैं और कौन से जीन निष्क्रिय हैं। जीनों की इस जटिल प्रणाली से प्राणियों के शरीर के विभिन्न अंगों में ताल-मेल बना रहता है, जिससे वह एक सक्षम इकाई के रूप में काम कर सकता है।

इस संदर्भ में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जीन स्तर पर शरीर की कोशिकाओं का वातावरण से सीधा संबंध रहता है। उदाहरण के तौर पर पेड़-पौधों की वृद्धि, पतझड़, फूल निकलना, फल और बीज बनना, सभी कार्य मौसम के अनुसार एक नियंत्रित व निर्धारित ढंग से होते हैं। सरल प्राणियों से विकसित प्राणियों के विकास के दौरान प्राणियों के जीनोम में वातावरण से इस तरह ताल-मेल रखने की क्षमता संकलित होती रही है। आमतौर पर एक निश्चित और निर्धारित प्रदेश में एक तरह के प्राणियों के अंदर जीनोम पूर्णत: एक जैसा नहीं होता है। उत्परिवर्तन के कारण इस प्राणी समूह में जीनोम या डी.एन.ए. अनुक्रम के स्तर पर विभिन्नता उत्पन्न होती है। जब भी परिस्थितियाँ बदलती हैं या वातावरण में कोई स्थायी परिवर्तन आता है तो इस बात की संभावना रहती है कि जो आनुवंशिक भिन्नताएँ प्राणी समूह के अंदर मौजूद हैं, उनमें से एक या कई इस नई स्थिति में उस जीव के लिए लाभदायक साबित हों। अगर ऐसा हुआ तो इस आनुवंशिक भिन्नता को प्रकृति द्वारा चुन लिया जाता है और बाकी भिन्नताएँ धीरे-धीरे समाप्त हो जाती हैं। इस तरह से विकास की लंबी प्रक्रिया के दौरान सभी प्राणियों के अंदर उस तरह के जीनोम को सफलता मिलती है, जो वातावरण के अनुकूल या उसका लाभ उठाने में अधिक सक्षम होता है।

भ्रूण के विकास के दौरान एक कोशिका से शुरू होकर समूचे शरीर और विभिन्न तरह के व्यवहारों का निर्माण होता है। यह प्रक्रिया लगभग पूरी तरह से कोशिकाओं के अंदर स्थित जीनोम में निहित आनुवंशिक कार्य प्रणाली के अनुसार होती है और इसमें वातावरण का अधिक योगदान नहीं होता है। लेकिन इस भ्रूण विकास प्रक्रिया के दौरान अकसर ऐसे मौके भी आते हैं, जब वातावरण का आनुवंशिक कार्य-प्रणाली के ऊपर प्रभाव देखा जा सकता है। कीट समूह की कुछ प्रजातियों (जैसे मक्खी, तितली आदि) में अंडे में लार्वा निकलता है, जो स्वतंत्र रूप से कई दिनों तक उसी रूप में जीवित रहता है। लार्वा देखने में किसी और कीट की ही तरह पूर्ण विकसित-सा लगता है। लेकिन लार्वा वास्तव में एक मध्यस्थ अवस्था है, जिसमें लार्वा के अंदर ही कीट के विभिन्न अंगों के बनने की प्रक्रिया चलती रहती है। लार्वा

अधिक-से-अधिक खाना खाते हुए इस प्रक्रिया को समुचित रूप से चलाता रहता है। जब ठीक वक्त आता है तो लार्वा (कैटरपिलर) पेड़ की किसी टहनी पर जाकर प्यूपा में परिवर्तित हो जाता है। जिसमें से थोड़े दिनों के बाद पूर्ण विकसित कीट निकलता है। इस पूरी प्रक्रिया के दौरान, एक तरह से देखा जाए तो अंडे के अंदर का जीनोम पहले कैटरपिलर और फिर पूर्ण विकसित कीट के रूप में वातावरण से ताल-मेल निभाता है। इस प्रक्रिया में जीव का उचित स्थान पर अंडे देना, आहार की तरफ जाना दूसरे खतरनाक जीवों से बचना, आदि सभी व्यवहार इस बात की पुष्टि करते हैं कि जीनोम किस तरह वातावरण से संपर्क रखता है।

जीव-जंतुओं की और पेड़-पौधों की यह एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि एक निषेचित युग्मज, कोशिकीय विभाजनों और कोशिकीय विभेदन के द्वारा पूर्ण विकसित रूप धारण करता है। जैसाकि ऊपर स्पष्ट किया गया है, भ्रूण विकास क्रम के रास्ते में आने वाले विविध आरंभिक आकार केवल आंशिक रूप से बने हुए जीव नहीं हैं। इस प्रकार के आरंभिक आकार पूरी तरह से एक पूर्ण विकसित जीव की तरह ही वातावरण के संपर्क में रहते हैं और बहुत तरह के व्यवहार और प्रतिक्रियाएँ दिखाते हैं, जोकि उनके समुचित रूप से विकसित होने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती हैं।

हम जब भी जानवरों या उनके बच्चों को ध्यान से देखते हैं तो जो बात सबसे पहले स्पष्ट होती है, वह है, इनका वातावरण के साथ सामंजस्य। जानवर भी गलतियाँ करते हैं, खासकर एकदम से नए या अप्राकृतिक वातावरण में नौसिखिये जैसा व्यवहार करते हैं। किंतु अधिकतर वे अपने वातावरण से समुचित सामंजस्य रखते हुए अपना पालन-पोषण, रहने का स्थान, अपनी सुरक्षा, प्रजनन आदि सफलता पूर्वक करते हैं।

इनमें यह व्यवहार कैसे इतनी दक्षता और सफलतापूर्वक विकसित होता है ? यह सवाल मनुष्य के मस्तिष्क में उभरता रहा है। इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि जीवों के व्यवहार कुछ तो जन्मजात होते हैं और कुछ सीखने से आते हैं। यद्यपि इन सभी व्यवहारों का आखिरी स्रोत उनका जीनोम ही होता है। सहज व्यवहार लगभग पूरी तरह से पूर्वनिर्धारित होता है, जबकि सीखे हुए व्यवहारों में वातावरण का प्रभाव एकदम साफ देखा जा सकता है। हम यह कह सकते हैं कि जीनोम में पूर्वनिर्धारित व्यवहारों के साथ-साथ ऐसी क्षमता भी होती है कि इन पूर्वनिर्धारित व्यवहारों के संदर्भ में जीव वातावरण से सीखते हुए संपूर्ण व्यवहार को प्राप्त करता है।

सहज व्यवहार, जिसमें सीखने का योगदान नहीं होता है, ऐसे जीवों के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण होता है, जिनका जीवनकाल बहुत छोटा होता है और जिनको जनकीय संरक्षण नहीं मिलता है। जिन जीवों की उम्र लंबी होती है और खासतौर

पर जिनको जनकीय संरक्षण मिलता है, उनमें जन्मजात व्यवहार का मुख्य काम होता है, जनकों और वातावरण से लगातार सीख लेकर बड़ा होना और परिपक्व होना। यह कहा जा सकता है कि ऐसे जीवों में अंत:प्रेरणा के आधार पर सीखने का महत्त्वपूर्ण गुण होता है।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए हम इस बात पर भी कुछ निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि मनुष्य के व्यवहार, व्यक्तित्व आदि के बारे में भी जीनोम का किस तरह से योगदान रहता है ? ज्यादातर शिशु सीखने की अनोखी और अत्यंत तीव्र प्रवृत्ति और क्षमता के साथ पैदा होते हैं। यह गुण उनमें मस्तिष्क के अंदर की संरचना और उसके रासायनिक तत्त्वों और उनके गुणों के कारण होता है। मस्तिष्क की इस क्षमता की वजह होती है, जीनोम और उसके अंदर स्थित जीन। अकसर हमारे सामने ये सवाल उठते हैं कि जिस तरह हमारा रंग-रूप पूरी तरह से आनुवंशिकता के नियमों के आधार पर हमारे माता और पिता से प्राप्त जीनोम से होता है, क्या उसी तरह हमारा व्यक्तित्व भी ऐसे ही आनुवंशिक नियमों पर निर्भर होता है ? एक कदम और आगे जाकर हम यह पूछ सकते हैं कि क्या अपराध करने की आदत, बौद्धिक शक्ति, भावुकता, महत्त्वाकांक्षा जैसे व्यावहारिक गुण भी पूरी तरह से हमारे अंदर के जीनोम पर निर्भर करते हैं ? दूसरे शब्दों में, क्या अपराधी, वैज्ञानिक, कलाकार पैदा होते हैं या बनाए जाते हैं ?

जीनोम के अंदर की जानकारी के साथ-साथ तमाम वैज्ञानिक अध्ययनों और प्रयोगों से यह स्पष्ट हो चला है कि जीनों के माध्यम से और इंद्रियों के माध्यम से भी वातावरण के प्रति मस्तिष्क की संवेदनशीलता पैदा होते समय ही रहती है और प्राय: पूरी तरह से आनुवंशिक सूचना या आनुवंशिक नियमों पर निर्भर करती है। इस तरह से कुछ विशेष चीजों की तरफ कोई व्यक्ति कम या अधिक संवेदनशील हो सकता है और इसी वजह से अलग-अलग व्यक्तित्व का विकास होता है। यह प्रक्रिया अत्यंत जटिल होती है। अनगिनत तथ्य इस पर प्रभाव डालते हैं। इसी तरह बौद्धिकता, भावुकता आदि बहुत जटिल गुण हैं और जहाँ एक तरफ इन गुणों के विकसित होने में बहुत सारी जीनों का योगदान होता है, वहीं दूसरी तरफ बहुत सारे वातावरण के तथ्य इनके विकास में प्रभाव डालते हैं। यही वजह है कि व्यक्ति की पैतृक पृष्ठभूमि को देखकर उसके व्यक्तित्व के बारे में कुछ भी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। अत: अपराधी की संतान अपराधी भी हो सकती है या कलाकार या खिलाड़ी भी। अनुभव के आधार पर यह देखने में आता है कि मनुष्य के गुणों और व्यक्तित्व के विकास में जहाँ जीनों का कुछ योगदान है, वहीं वातावरण, पालन-पोषण

और संगति का बहुत प्रभाव पड़ता है। ज्यादातर बच्चे तमाम और तुलनीय क्षमताओं और संभावनाओं के साथ पैदा होते हैं और वातावरण के संपर्क में अलग-अलग व्यक्ति बन जाते हैं। यानी कि जीनोम के माध्यम से हम में बहुत कुछ सीखने और बनने की संभावनाएँ होती हैं। हम अंत में बनते क्या हैं और सीखते क्या हैं, यह हमारे वातावरण पर काफी कुछ निर्भर करता है।

पहले यह अनुमान लगाया जा रहा था कि हमारे जीनोम में एक लाख या उससे भी ज्यादा जीन हैं। जीनोम अनुक्रमण के बाद यह संख्या 25 हजार के आसपास पाई गई है। इस तथ्य से हमें यह पता चलता है कि जीवों की संख्या मात्र ही जीव की विकासशीलता या जटिलता का निर्धारण नहीं करती। मनुष्य की जटिल संरचना और उसके मस्तिष्क की जटिल प्रक्रियाएँ जीनों की संख्या पर नहीं बल्कि एक जीन के दूसरे से तालमेल पर निर्भर करती हैं। एक ही जीन के वैकल्पिक प्रारूपों से कई तरह के प्रोटीन बन सकते हैं और एक प्रोटीन में रासायनिक संशोधन के माध्यम से विभिन्न गुणों को जोड़ा जा सकता है। जीनोम के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि जैव विकास में इन क्रियाविधियों का काफी योगदान रहा है।

जीनोम अनुक्रमण के निहितार्थ

जीनोम अनुक्रमण संबंधी नवीनतम अनुसंधानों के फलस्वरूप यह आशा की जा रही है कि आनेवाले वर्षों में हम अपने जीनोम में फेरबदल करने में इतने समर्थ हो जाएँगे कि मानव का विकासक्रम बहुत सारे ऐसे नए नियमों के अनुरूप निर्धारित होगा कि जिनका अनुमान डार्विन को भी नहीं रहा होगा।

हमारा देश न केवल जातिगत रूप से भिन्न है, वरन् इस देश के लोग एक पीढ़ी में जानेवाले वंशानुगत पदार्थ जीनों के स्तर पर भी भिन्न हैं। इसका श्रेय भारतीयों और अमेरिकी वैज्ञानिकों की संयुक्त टीम, जिसमें कोशिकीय और आणविक जीव-विज्ञान केंद्र (सी.सी.एम.बी.), हैदराबाद के वैज्ञानिकों की मुख्य भूमिका थी, की नवीन खोजों को जाता है। अमेरिकी शोधकर्ता हार्वर्ड मेडिकल स्कूल, हार्वर्ड स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ और ब्रॉड इंस्टीट्यूट ऑफ हार्वर्ड और एम.आई.टी. से हैं।

यदि हम जैव रासायनिक रूप से डी.एन.ए. अणु से बने अपने आनुवंशिक पदार्थ को देखें तो कोई भी दो असंबंधित व्यक्ति आश्चर्यजनक रूप से केवल 0.1 प्रतिशत ही भिन्न होते हैं, शेष 99.9 प्रतिशत डी.एन.ए. पूरी तरह समान होता है। क्या विडंबना है कि जीनों के स्तर पर सारी अद्‌भुत मानव विविधता, केवल इस परिवर्ती में निवास करती है, हमारे डी.एन.ए. के इस अतिसूक्ष्म भाग में! डी.एन.ए. का यही

भाग लगभग तीस लाख क्षारक युग्मों का बना होता है, जो सूचनाओं के प्रचुर स्रोत के संकेतों का भंडार होता है और आज भारत में मानवजाति के ऐतिहासिक उद्‌गम के पुनर्निर्माण में सहायक है। यह हमारे आनुवंशिक पदार्थ का ही भाग है, जो मानव में अनेक आनुवंशिक परिवर्तनों को स्पष्ट रूप से बताता है और जो अन्य लोगों की अपेक्षा कुछ लोगों में विशिष्ट रोगों के भारी खतरे को दिखाता है।

किसी भी प्राणी का जीन सहित संपूर्ण डी.एन.ए. जीनोम कहलाता है। जीन डी.एन.ए. का एक छोटा हिस्सा है, जो आनुवंशिकता की मूलभूत इकाई है। प्रत्येक जीन में प्रोटीनों के निर्माण के लिए कोडबद्ध निर्देश होते हैं। ये प्रोटीन ही प्राणी के विशिष्ट गुणों, जैसे त्वचा का रंग, बालों की बनावट या फिर भोजन के उपापचय की क्षमता आदि का निर्धारण करते हैं। आनुवंशिक सूचना जीनों में एडेनिन (A), थायमीन (T), साइटोसिन (C) और ग्वानिन (G) नामक बेसों के रैखिक क्रम में निहित होती है। बेसों के प्रत्येक ट्रिप्लेट जैसे ACG में एक विशिष्ट अमीनो अम्ल का संकेत होता है, जो एक प्रोटीन का निर्माण करता है।

डी.एन.ए. में न्यूक्लियोटाइडों के क्रम और प्रोटीनों में अमीनो अम्लों के क्रम के संबंध को आनुवंशिक कोड कहा जाता है। डी.एन.ए. के एक टुकड़े में ऐसे बेस युग्मों के वास्तविक क्रम का निर्धारण अनुक्रमण अर्थात् सीक्वेंसिंग कहलाता है।

डी.एन.ए. में एक-दूसरे से लिपटी दो लड़िया होती हैं, जिन्हें न्यूक्लियोटाइड कहा जाता है। इसका ढाँचा शर्कराओं और फॉस्फेट समूहों का बना होता है, जो ईस्टर बांड से जुड़ा होता है। दोनों लड़ियाँ एक-दूसरे की विपरीत दिशा में बँधी होती हैं। न्यूक्लियोटाइड बेस इस प्रकार है—एडेनीन (Adenine) यानी A ग्वानिन (Guanine) यानी G, साइटोसिन (Cytosine) यानी C और थायमीन (Thiamine) यानी T। डी.एन.ए. अणु की लड़ी में इन चार बेसों के अनुक्रम में ही आनुवंशिक कोड निहित होता है।

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि A केवल T से और C केवल G से जुड़ता है। इसे पूरक बेस मंथन (कंप्लीमेंटरी बेसगाइडिंग) कहते हैं। प्रत्येक मानव जीनोम में करीब 3 अरब बेस युग्म होता है। लेकिन हमें विभिन्न व्यक्तियों के जीनोम के कोड सुलझने की क्या आवश्यकता है एकमात्र एक ही व्यक्ति के जीनोम को डीकोड करके उसे मानक जीनोम घोषित क्यों नहीं कर लेते? समस्या यह है कि पूरी दुनिया में ऐसा कोई एक सार्वभौम प्रोटोटाइप जीनोम मानक (यूनिवर्सल प्रोटोटाइप जीनोम स्टैंडर्ड) नहीं है, जो दुनिया के हर व्यक्ति पर लागू हो सके। जैसे, पूरी दुनिया में धातु का बना एक जैसा अंतरराष्ट्रीय मानक किलोग्राम चलता है। समरूप जुड़वाँ बच्चों को

छोड़कर पूरी दुनिया में कोई एक व्यक्ति दूसरे की समरूप प्रतिलिपि नहीं होता। हममें से प्रत्येक का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है। प्राय: औसतन 200 बेस युग्मों के बाद, किन्हीं दो व्यक्तियों का ही एन ए अनुक्रम (सीक्वेंस) बदलता है। जिनके बीच कोई संबंध नहीं है, ऐसे किन्हीं दो व्यक्तियों में मूलभूत आनुवंशिक स्तर पर करीब 60 लाख अंतर होते हैं। विविधता में एकता का यह शानदार उदाहरण है। हम सभी का आनुवंशिक डी.एन.ए. ब्लू प्रिंट समान है, फिर भी हममें से हर व्यक्ति अनूठा है। इस धरती में मौजूद अरबों लोगों में से प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में अनूठा और अलग है।

विभिन्न भारतीयों में आनुवंशिक परिवर्तनशीलता को सिद्ध करने के लिए किए गए इस अध्ययन में 132 लोगों के जीनोमों के लगभग 5-6 लाख आनुवंशिकीकरण मार्करों का विश्लेषण किया गया। इन लोगों को भारत के 13 राज्यों के 25 भिन्न वर्गों से चुना गया था, जिनमें सभी छ: भाषा परिवारों, पारंपरिक रूप से ऊपरी और निचली जातियों के साथ-साथ जनजातियों के लोग शामिल थे। 'नेचर' के 24 सितंबर, 2009 के अंक में प्रकाशित, लालजी सिंह और डेविड रीच के नेतृत्व में किए गए अध्ययन से एक महत्त्वपूर्ण रहस्योद्घाटन यह हुआ है कि विभिन्न भारतीय वर्गों में दो भिन्न पैतृक जनसमुदायों का आनुवंशिक पदार्थ होता है—पैतृक उत्तरी भारतीय (एंसेस्ट्रल नॉर्थ इंडियंस, ए.एन.आई.) जो पश्चिमी यूरेशियाइयों से संबंधित है, जिनसे भारतीयों ने अपनी 40-80 प्रतिशत पैतृकता प्राप्त की और शेष ने पैतृक दक्षिण भारतीयों (एंसेस्ट्रल साउथ इंडियंस, ए.एस.आई.) से, जो भारत के बाहर किसी भी वर्ग से संबंधित नहीं हैं। ए.एन.आई. पैतृकता द्रविड़ भाषियों की अपेक्षा इंडो यूरोपियन में काफी अधिक पाई गई, जिससे पता चलता है कि संभवत: ए.एस.आई. की आनेवाली संतानें, ए.एन.आई. की आनेवाली संतानों के साथ मिलने से पहले शायद द्रविड़ भाषा बोलती थीं।

आनुवंशिक मार्करों के विश्लेषण के लिए, जो एकल न्यूक्लियोटाइड बहुरूपों के रूप में मिलने वाले आनुवंशिक विभेदों के हिस्से होते हैं, भारत के 25 भिन्न वर्गों के चुने गए लोगों के रक्त के नमूने एकत्रित किए गए। इन नमूनों से डी.एन.ए. के निष्कर्षण के बाद डी.एन.ए. के सभी नमूनों को एफीमैट्रिक्स 6.0 क्रम या डी.एन.ए. चिप पर वंशप्ररूपित किया गया और 560, 123 एस.एन.पी. में आनुवंशिक परिवर्तनों के लिए विश्लेषित किया गया। इसके बाद वैज्ञानिकों ने भिन्न वर्गों के इन लोगों में आनुवंशिक परिवर्तनों के अध्ययन के लिए नवीन सांख्यिकी अभिगमों का प्रयोग किया। परिष्कृत सॉफ्टवेयर का प्रयोग कर प्रत्येक वर्ग में ऐलील आवृत्ति विभेदन के साथ-साथ अंत:प्रजनन का निर्धारण किया गया। समष्टि वर्गों के बीच संबंधों को

समझने के लिए वैज्ञानिकों ने एक नवीन टूल किट भी विकसित की और इस प्रकार उनके उद्‌भव के इतिहास का पता लगाया।

आधुनिक जीनोमिक तकनीक के द्वारा इस नए काम से यह पता लगा कि सभी भारतीय वर्ग, पारंपरिक जनजातियों के साथ-साथ वर्गों सहित, ए.एन.आई. और ए.एस.आई. पैतृक समष्टियों के मिश्रण से जनमे हैं। मध्य/निम्न वर्ण वर्गों की अपेक्षा पारंपरिक रूप से उच्च वर्गों में एक स्पष्ट उच्च ए एन आई पैतृकता पाई गई। सी.सी.एम.बी. के एक वरिष्ठ शोध वैज्ञानिक कुमारासामी थंगराज के अनुसार डेटा का प्रयोग करके जनजातियों से वर्णों की पहचान करना असंभव है, जिससे इस विचार को बल मिलता है कि भारतीय समाज के निर्माण के दौरान वर्ण सीधे ही जनजाति जैसे संघटनों से जन्मे।

नए अध्ययन से यह भी पता लगा कि अंडमान द्वीपसूह के स्वदेशी लोगों का एक छोटा जनसमुदाय अंडमानी, विशिष्ट रूप से पैतृक दक्षिण भारतीय वंशावली से संबंधित लगते हैं और उनमें उत्तर भारतीय पैतृकता का सर्वथा अभाव है। इससे निश्चित रूप से पैतृक दक्षिण भारतीयों के इतिहास का झरोखा खुला है, जो संभवत: सैकड़ों-हजारों साल पहले यूरेशियाइयों से भिन्न हो गए थे। जनजातीय समुदाय, जो आधुनिक विश्व से दूर कहीं जकड़े हुए थे, के आनुवंशिक परिवर्तनों के अध्ययन से न केवल हमारे अपने उद्‌भाव के रहस्य खोलने की बारी हैं बल्कि यह जटिल रोगों के आनुवंशिक आधार को समझने के लिए भी महत्त्वपूर्ण हैं। पर्यावरणीय संवेदनशील कारणों में से अनेक आधुनिक जीवनशैली से संबंधित हैं, जैसे कि अस्वास्थ्यकर आहार लेना, शारीरिक व्यायाम का अभाव, जो अनेक जटिल रोगों को जन्म देता है, जनजातियों में आमतौर पर ऐसा नहीं है। इसीलिए असभ्य, वियुक्त जनजातियों में आमतौर पर ऐसा नहीं है। इसीलिए असभ्य, वियुक्त जनजातीय समुदायों के अध्ययन से इन बीमारियों के पर्यावरणीय संवेदनशील कारकों से आनुवंशिक कारकों में अंतर करना संभव होगा। इस संबंध में, सी.सी.एम.बी. ने भारतीय नृविज्ञानीय सर्वेक्षण के सहयोग से भारत के जनजातीय और वर्ण समुदायों में मानव आनुवंशिक विविधता के अध्ययन के लिए एक विशाल परियोजना आरंभ की है।

यह भी प्रकाश में आया है कि आधुनिक भारत में अनेक वर्गों की पैतृकता को अल्पसंख्यक लोगों में भी खोजा जा सकता है, जिससे पता चलता है कि वर्षों ये वर्ग अन्य वर्गों से सजातीय या वर्ग के भीतर ही विवाह के कारण सीमित जीन प्रवाह सहित हजारों वर्षों तक आनुवंशिक रूप से अलग रहे। ऐसी प्रवर्तक घटनाएँ ही, जैसाकि प्रचलित रूप में कहा जाता है, केवल भारतीयों में पाए जाने वाले कुछ

आनुवंशिक रोगों के अपवादी रूप से उच्च आपात का मूल कारण है। सी.सी.एम. बी. के पूर्व निदेशक लाल जी सिंह के अनुसार, जिनके इस क्षेत्र में प्रारंभिक प्रयास प्रसंशनीय रहे हैं, आनुवंशिक रूप से भारत एक विशाल जनसमुदाय नहीं है, बल्कि अनेक प्रवर्तक घटनाओं से जन्मे अनेक छोटे वियुक्त जनसमुदायों से बना है। जैसे कि फिनलैंडवासी और अशकीनाजी यहूदियों जैसे अन्य मानव समुदायों में अप्रबल आनुवंशिक बीमारियों का आपात बढ़ाने के लिए प्रवर्तक घटनाओं को जाना जाता है, ऐसा ही अनेक वर्गों के लिए भारत में भी है, जहाँ अंतर्जातीय विवाह एक वर्जना है। अनुसंधानकर्ताओं के अनुसार, प्रवर्तक प्रभाव समरक्तता की अपेक्षा भारत में अप्रबल बीमारियों के एक बड़े बोझ के लिए उत्तरदायी हैं। इसे सिद्ध करने के लिए शोधकर्ताओं के अनुसार अगला कदम होगा, प्रबल प्रवर्तक घटनाओं से जनमे समुदायों की पहचान करने के लिए भारतीय वर्गों का बाकायदा सर्वेक्षण करना। इससे अनेक सर्वनाशी आनुवंशिक रोगों के लिए उत्तरदायी दोषी जीनों की पहचान करने में सहायता मिलेगी और इस प्रकार प्रभावित और संभावित लोगों को उपयुक्त नैदानिक देखभाल प्रदान करना और प्रभावी उपचार ढूँढ़ना संभव होगा।

इसलिए भारत में सामुदायिक संरचना के इतिहास का मूल दो पैतृक समुदायों ए.एन.आई. और ए.एस.आई. में है और इन समुदायों का प्रबल मिश्रण ही है जो विभिन्न भारतीय वर्गों में भारी आश्चर्यजनक आनुवंशिक परिवर्तनीयता का प्रमाण चिह्न है। पैतृक जीनोमिक अंश की संकल्पनाएँ और समूचे भारत में अनेक मिश्रण और प्रवर्तक घटनाओं के महत्त्व ने सार्थकता प्राप्त कर ली है, क्योंकि भारतीयों के स्वास्थ्य पर उनका गंभीर प्रभाव है। इस क्षेत्र में आगे अनुसंधान की संभावना, उस दिन का अनुमान लगाना है, जब इन समुदायों का सम्मिश्रण हुआ होगा। इसके लिए, भारतीय नमूनों में ए.एन.आई. पैतृकता के आनुवंशिक विस्तार की लंबाई का विस्तृत अध्ययन करना होगा। एक अन्य क्षेत्र, जिसके अत्यंत विस्तार में अन्वेषण की जरूरत है, वह है ए.एन.आई. और ए.एस.आई. समुदायों के आपस में मिलने से पहले के इतिहास का अध्ययन करना।

विश्व का दूसरा सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश भारत अपनी परिवर्ती विविधता के लिए अद्वितीय रूप से सुविख्यात है। चाहे वह भौगोलिक या जलवायविक विविधता हो, चाहे वह यहाँ के लोगों की भाषा, धर्म और संस्कृतियों की विविधता हो, या चाहे वह आनुवंशिक विविधता हो, जैसाकि आज स्पष्ट है, जो भी हो, हमारी यही विविधता ही है जो हमारी एकता को प्रबलता देती है।

मानव जीनोम की सीक्वेंसिंग करने के लिए उच्च स्तर की गणन क्षमता और अति आधुनिक मशीनों पर काम करने तथा बड़ी मात्रा में आँकड़ों के विश्लेषण का

प्रौद्योगिकीय ज्ञान होना चाहिए। इस काम में बहुत अधिक संसाधन चाहिए और कुछ समय पहले तक इसमें समय भी बहुत अधिक लगता था। इसीलिए दुनिया के ज्यादातर देश अब तक यह काम नहीं कर सके। वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (सी.एस.आई.आर.) के तहत दिल्ली के इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ जीनोमिक्स एंड इंटीग्रेटिव बायोलॉजी (आई.जी.आई.बी.) में कार्यरत भारतीय वैज्ञानिकों ने पिछले दिनों यह कार्य कर दिखाया है।

मानव जीनोम परियोजना अक्तूबर 1990 में शुरू हुई और इस योजना के उद्देश्यों में मानव के डी.एन.ए. के सभी जीनों की पहचान करना और करीब 3 अरब बेस युग्मों का अनुक्रमण (सीक्वेंसिंग) निर्धारित करना था। प्रारंभ में अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी और जापान ने अंतरराष्ट्रीय मानव जीनोम परियोजना कंसोर्टियम गठित किया। सन् 1990 के दशक के उत्तरार्ध में चीन भी इसमें शामिल हो गया और उसने 1% जीनोम की पहचान कर ली। संसाधनों की कभी की वजह से भारत उस समय इस परियोजना में शामिल नहीं हो सका, लेकिन बाद में भारत ने सार्वजनिक रूप से उपलब्ध जीनोम संबंधी जानकारी के आधार पर द्वितीयक जानकारी (सेकेंडरी इनफॉरमेशन) का विश्लेषण शुरू कर दिया।

अंतरराष्ट्रीय मानव जीनोम सीक्वेंसिंग परियोजना संघ ने मानव जीनोम अनुक्रमण का पहला कच्चा प्रारूप (रफ ड्राफ्ट) 26 जून, 2000 को प्रस्तुत किया। इस प्रारूप में 90 प्रतिशत जीनोम शामिल था और इसमें 1000 बेस युग्मों में एक त्रुटि की संभावना आँकी गई थी। इस प्रारूप में जीनों के 1,50,000 से ज्यादा गैप थे और केवल 28 प्रतिशत जीनोम का ही संपूर्ण रूप से आकलन हो सका था। यह प्रत्येक क्रोमोसोम पर स्थित 90 प्रतिशत जीनों के एक मार्गदर्शक चित्र के समान था। इसके करीब 3 साल बाद (अप्रैल 2003 में) मानव जीन अनुक्रमण (सीक्वेंसिंग) का ज्यादा बारीकी से तैयार प्रारूप प्रस्तुत किया गया। इसके जीनों में 400 से भी कम गैप थे और 90 प्रतिशत जीनोम का संपूर्ण आकलन कर लिया गया था। इस सीक्वेंसिंग में 10,000 बेस युग्मों में केवल एक त्रुटि की संभावना थी। मानव जीनोम का पहला अनुक्रम तथा विश्लेषण पहली बार सन् 2001 में 'साइंस' पत्रिका सेलेरा जीनोमिक्स के डॉ. क्रेग वेंटर और उनके सहयोगियों ने प्रकाशित कराया। सार्वजनिक धन से चलाई गई जीनोम परियोजना की ओर से भी उसी दौरान 'नेचर' पत्रिका में अपने अनुसंधान का विवरण प्रकाशित कराया गया।

जैव-प्रौद्योगिकी की ऐतिहासिकी में 9 दिसंबर, 2009 का दिन एक महत्त्वपूर्ण दिवस के रूप में स्मरण किया जाएगा। इस दिन भारत उस वैज्ञानिक क्लब का सदस्य

बन गया, जिसमें अब तक केवल अमेरिका, ब्रिटेन, चीन, जापान और दक्षिण कोरिया ही सदस्य थे। अब तक केवल ये ही देश संपूर्ण मानव जीन प्रारूप (जीनोम) का आकलन कर सके थे। अब भारत को भी इस उपलब्धि का गौरव हासिल हो गया है।

भारतीय जीनोम विविधता परियोजना के अंतर्गत भारतीय जनसमुदायों की जीन विविधता का ब्योरा सफलतापूर्वक तैयार कर लिया गया है और भारत अपनी जीन विविधता का संपूर्ण ब्योरा रखनेवाला पहला देश बन गया है। यह बात अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि दुनिया की जनसंख्या का छठवाँ हिस्सा भारत में रहता है और यहाँ की जनसंख्या में अनेक नस्लों के गुण घुले-मिले हैं, क्योंकि यहाँ समय-समय पर अनेक नस्लों के लोग आए और एक-दूसरे से उनका निरंतर संपर्क होता रहा। इस परियोजना से हमें अनेक प्रश्नों के उत्तर मिल सकते हैं, जैसे—कौन-सी जीन संरचना किस विशिष्ट आनुवंशिक बीमारी/विकृति का कारक है अथवा किस जीन विकृति की वजह से किसी व्यक्ति को किसी रोग का ज्यादा खतरा हो सकता है? किसी जन समूह पर किसी नशीले पदार्थ का कैसा असर पड़ता है? अब तक विशिष्ट जीन विकृतियों से जिन रोगों के संबंधों में जानकारी है, इस परियोजना में इसी उपलब्ध जानकारी पर अनुसंधान केंद्रित किया गया। उदाहरण के लिए, आँखों की कुछ बीमारियों, पेशियों से जुड़ी तकलीफों, मधुमेह तथा औषधि उपापचय/शारीरिक प्रतिक्रिया आदि।

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि मानव को विशिष्ट बनाने का राज प्रत्येक कोशिका में पाए जाने वाले संपूर्ण डी.एन.ए. में निहित होता है, न कि हमारे जीनों में, जिनकी संख्या 20 से 25 हजार है। वैज्ञानिक 98.8% मानव जीनोम को अब तक 'जंक' या अक्रिय कहते आए हैं। यह कहा जा सकता है कि मानव अपने जीनोम में पाए जानेवाले जंक डी.एन.ए. की वजह से ही मानव है।

विकसित प्राणियों में जीनोम का वह हिस्सा जोकि पुनरावृत्त नहीं होता है, उसमें भी अधिकांश भाग की अभिव्यक्ति नहीं होती है। हालाँकि जैसे-जैसे हम साधारण से विकसित प्राणियों की ओर बढ़ते हैं, जीनों की संख्या भी बढ़ती है, लेकिन यह वृद्धि उतनी नहीं है जितनी कि जीनोम के आकार की।

मनुष्य के जीनोम की और कई अन्य शोध कार्यों के लिए उपयोगी जीवों के जीनोम की जानकारी के रूप में, आज जैव-वैज्ञानिकों के पास एक बहुत महत्त्वपूर्ण एवं अपूर्व साधन हाथ में आ गया है। इसके माध्यम से वे जीवन के उन रहस्यों को समझने की कोशिश कर सकते हैं जिसके लिए पहले कोई तरीका ही नहीं था। अब हम यह देख सकते हैं कि जीनोम में जीनों के पाए जाने का क्रम और जीनों के आसपास के अकोडित डी.एन.ए. का क्या महत्त्व है। दरअसल, हमें अब यह आभास

हो चला है कि बिना इस जानकारी के जीनों के नियंत्रण की प्रक्रिया को समझना असंभव है। जीनों का नियंत्रण ही जीवन के संचालन का सबसे महत्त्वपूर्ण अंश है।

व्यक्तिगत जीनोम अनुक्रम की सीमाएँ

मानव द्विगुणित (डिप्लाइड) जीनोम का आकार इतना बड़ा है कि अनुक्रमण के सामान्य तरीके अपनाकर किसी व्यक्ति के संपूर्ण जीनोम का विकोडन (डीकोड) करना बहुत कठिन है। इस दिशा में शोध के प्रारंभिक वर्षों में तो इस पर आनेवाला खर्च बूते से बाहर था। करीब छह साल पहले तक एक जीनोम की सीक्वेंसिंग का खर्च करीब एक अरब डॉलर आता था। अगस्त 2009 में स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय के स्टीफेन आर. कोक ने डी.एन.ए. कोड की पहेली को सुलझाने के लिए एक नई टेक्नोलॉजी हेलिस्कोप सिंगल मालिक्यूल सीक्वेंसर का आविष्कार किया और इससे अपने ही जीनोम कोड का विकोडन कर लिया। उनके इस काम में 50,000 डॉलर से भी कम खर्च आया। उसने इसके परिणाम 'नेचर बायोटेक्नोलॉजी' पत्रिका में प्रकाशित कराए। भारतीय जीनोम के कोड का विकोडन करने में मात्र 15 लाख रुपए (30,000 डॉलर) ही लगे, जो 50,000 डॉलर की तुलना में काफी कम है। लेकिन इसमें मूलभूत सुविधाओं तथा इस काम में लगे लोगों पर हुआ खर्च शामिल नहीं है।

'साइंस' पत्रिका में इसी रिपोर्ट के अनुसार कुछ अमेरिकी कंपनियाँ 300,000 से 3,50,000 डॉलर में लोगों को उनकी निजी जीनोम संरचना का विवरण बेचने की योजना बना रही हैं। कई लोगों का मानना है कि अगर यह खर्च 10,000 डॉलर या उससे कम हो जाए तो किसी रोगी की जीनोम संरचना जानकर रोग का उपचार करने में मदद मिलेगी। कुछ तकनीकी विशेषज्ञों का मानना है कि आगामी कुछ वर्षों में 10,000 डॉलर में निजी जीनोम अनुक्रम की जानकारी उपलब्ध हो जाएगी। अब तो यह सपना देखा जा रहा है कि इस खर्च को इतना घटा दिया जाए कि विश्व में हर व्यक्ति वाजिब कीमत पर अपना जीनोम अनुक्रम जान सके। इसके लिए वैज्ञानिकों का लक्ष्य है कि खर्च को 1000 डॉलर तक नीचे ले आया जाए, ताकि यह हर व्यक्ति की सामर्थ्य में हो। मीडिया में तो यह भी चर्चा है कि भविष्य में डॉक्टरों के कक्ष में जीन स्कैन करने की मशीन उपलब्ध हो जाएगी।

भारतीय जीनोम

भारत में जब जीनोम परियोजना शुरू हुई तो अनुमान लगाया गया था कि इसमें 3 अरब बेस युग्मों के अनुक्रमण और सभी जीनों की पहचान में करीब 15 साल

लगेंगे। बेहतर प्रौद्योगिकी के कारण इस काम में मात्र 13 साल लगे और भारतीय जीनोम के कोड का विकोडन मात्र 45 दिनों में कर लिया गया।

आनुवंशिक सामग्री एक स्वस्थ भारतीय नागरिक के शरीर से ली गई और इसका कोड सुलझाकर पहला पूर्ण तथा पूरी तरह भारतीय जीनोम तैयार कर लिया गया। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् द्वारा निर्धारित आचार संहिता का अनुपालन करते हुए जिस भारतीय नागरिक के शरीर से आनुवंशिक सामग्री ली गई, उसकी पहचान गुप्त रखी गई। लेकिन इस अज्ञात भारतीय व्यक्ति के बारे में कुछ जानकारी जारी की गई है। झारखंड राज्य के इस व्यक्ति की उम्र 52 वर्ष, कद 167 सेंटीमीटर तथा वजन 52 किलोग्राम है।

भारतीय जीनोम का कोड सुलझाने का विचार वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (सी.एस.आई.आर.) के वर्तमान महानिदेशक प्रोफेसर समीर के. ब्रह्मचारी ने रखा, जो उस समय आई.जी.आई.बी. के निदेशक के पद पर कार्यरत थे। यह काम राजेश एस.गोखले (आई.जी.आई.बी. के वर्तमान निदेशक) के नेतृत्त्व में हुआ। आई.जी.आई.बी. के वैज्ञानिक श्रीधर सिवशुब्बू और विनोद रकेरिया ने प्रारंभिक दिशा-निर्देश दिए और इस सीक्वेंसिंग को अंजाम देने वाली टीम में आई.जी.आई.बी. के 6 युवा वैज्ञानिक भी शामिल थे। आई जी आई बी में स्थित सी.एस.आई.आर. की सुपर कंप्यूटिंग प्रणाली की वजह से यह कार्य संभव हो सका। इस कंप्यूटर समूह की अविश्वसनीय सी लगने वाली प्रोसेसिंग क्षमता एक टेराफ्लॉप (एक सेकेंड में एक ट्रिलियन फ्लोटिंग-पाइंट ऑपरेशंस) की है, जो सामान्य डेस्कटॉप कंप्यूटर से करीब 10,000 गुना ज्यादा है।

अति आधुनिक टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल करके बरीब 51 गीगा बेस आँकड़े जुटाए गए। वैज्ञानिक इतने आँकड़ों के आधार पर 76 बेस युग्म बनाने लायक करोड़ों जीन खंड तैयार कर सकते हैं। इनका मूल संदर्भ जीनोम के साथ मानचित्रण किया गया।

यह गर्व की बात है कि भारतीय वैज्ञानिकों ने भारत में ही स्थित शोध प्रतिभा के जरिए, भारतीय आनुवंशिक सामग्री का इस्तेमाल कर यह कर दिखाया। इससे रोग नैदानिकी तथा उपचार में नवीन युग का सूत्रपात हुआ है और पूर्वानुमान जीनोमिक्स के क्षेत्र में भारत का प्रवेश हुआ।

मानव जीनोम और संबंधित शोध : कानूनी और सामाजिक समस्याएँ

जीवन क्या है ? एक जीव अपने जैसे जीवों को किस तरह जन्म देता है ? माता-पिता और संतान में इतनी अधिक समानता क्यों होती है ? माता-पिता या नर-मादा

की विशेषताएँ किस चीज के जरिए संतान में पहुँचती हैं ? हजारों साल से मनुष्य इन सवालों के बारे में सोचता आ रहा है, परंतु इनके कुछ संतोषजनक उत्तर हमें आज ही पहली बार मिल रहे हैं। ये उत्तर हमें मिल रहे हैं, कोशिका के केंद्रक में मौजूद डी.एन.ए. अणु की कुंडली, जैसी बनावट में।

वैज्ञानिकों ने अब मानव की असली 'जन्म कुंडली' को जान लिया है। इसका नक्शा तैयार कर लिया है, इसका अनुक्रम, यानी क्रमिक सिलसिला प्रस्तुत कर दिया है। समूची मानव जाति का अतीत, वर्तमान और भविष्य इस कुंडली की आणविक संरचना में सूत्रबद्ध है और वैज्ञानिक अब मानव जीवन की इस कुंडली के घटकों (जीनों) में परिवर्तन करने में समर्थ हो रहे हैं। इसके लिए जैव तकनीकी की विविध विधियाँ विकसित कर रहे हैं। आनुवंशिकी और विकास के एक नए युग की शुरुआत हो गई है।

वैज्ञानिक अब मानव जीनोम (जीनों के अनुक्रम) को उसी तरह से पढ़ सकते हैं, जैसे किसी विश्वकोश को। जीवन का सृजन, संयोजन और नियोजन करनेवाले महाअणु (डी.एन.ए.) के रहस्य खुलने लगे हैं। जीवन की कुंडली, यानी डी.एन.ए. की एक जीन में परिवर्तन करने का मतलब है, जीव की एक विशेषता में परिवर्तन करना। वैज्ञानिक अब पहचानने लगे हैं कि कौन-सा जीन या जीन समूह क्या कार्य करता है, किस चीज को जन्म देता है। प्रयोगशालाओं में जिन तकनीकों से जीव के जीनों का अध्ययन किया जाता है, उन्हीं से उन्हें बदला भी जा सकता है। अब हम किसी बैक्टीरिया, पौधे, चूहे, यहाँ तक कि मानव की भी आनुवंशिकीय संरचना में सोद्देश्य परिवर्तन करने में समर्थ हैं। मनुष्य ने अब क्रम-विकास की आणविक प्रक्रिया में जैव तकनीकी के हथियार के साथ हस्तक्षेप करना आरंभ कर दिया है।

परंतु परमाणु ऊर्जा की तरह जैव तकनीकी के भी दो पहलू हैं—कल्याणकारी और महाविनाशकारी भी। जीनोम की जानकारी और जैव तकनीकी के तरीकों से एक तरफ वंशानुगत व्याधियों से मुक्ति पाई जा सकती है, नई-नई दवाएँ, रसायन, प्रोटीन आदि पैदा किए जा सकते हैं। समस्त मानवजाति को सुख-समृद्धि और दीर्घायु प्रदान की जा सकती है। दूसरी तरफ, इस मानव कुंडली या जीनोम का उद्घाटन समूची मानव जाति के लिए परमाणु बमों से भी कहीं अधिक प्रलयंकारी सिद्ध हो सकता है। वैज्ञानिकों ने प्रकृति प्रदत्त इस जीवन कुंडली को छेड़ना, इसमें परिवर्तन करना शुरू कर दिया है। मनुष्य अब प्रकृति की दूसरी प्रजातियों में ही नहीं, स्वयं अपनी मानव प्रजाति में भी आमूल परिवर्तन करने में समर्थ बनता जा रहा है। जीवन कुंडली का उपयोग करके न केवल दूसरी प्रजातियों के क्लोन (हू-ब-हू प्रतिरूप) तैयार किए जा रहे हैं, बल्कि कुछ वैज्ञानिकों ने मानव का भी क्लोन बनाने के प्रयास शुरू कर दिए हैं।

परमाणु ऊर्जा का सही मायने में परमाणु बम का विकास करते समय सरकारों और वैज्ञानिकों ने मिलकर सारी दुनिया की जनता को अँधेरे में रखा था। जैव तकनीकी का जन्म सारे जीव जगत् को जानने और परिवर्तित करने के लिए हुआ है। मानव जीनोम की जानकारी पर आधारित नई तकनीकी दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित करने में समर्थ होगी। तब इससे अनजान रहकर कैसे काम चल सकता है? हमें जैव तकनीकी के फायदों के साथ-साथ इसके खतरों को भी समझना होगा। हमें जानना होगा कि यह नया क्रांतिकारी विज्ञान किस तरह की नैतिक, कानूनी और सामाजिक समस्याओं को जन्म देने जा रहा है।

प्रत्येक जीव के जीनोम (डी.एन.ए. में मौजूद समस्त जीनों का अनुक्रम) में उसके जीवन से संबंधित सारी जानकारी सूत्रबद्ध रहती है। हर जीव का जीनोम उसका प्रामाणिक पहचान-पत्र होता है। मानव जीनोम के उद्घाटन के अनगिनत लाभ हैं, मगर इससे पैदा होने वाली समस्याएँ भी अनेक हैं। इससे हमें सैकड़ों आनुवंशिक रोगों, मधुमेह, हंर्टिंग्टन, पार्किन्सन, सिस्टिक फाइब्रोसिस, अनेक प्रकार के कैंसर आदि के बुनियादी कारणों को समझने और किसी व्यक्ति में इनके पनपने की संभावना को निर्धारित करने में मदद मिल सकती है। अधिकांश विशेषज्ञों का मत है कि जीनोम की व्यक्तिगत जानकारी सबके लिए उपयोगी हो सकती है। सही निदान के रास्ते खोल सकती है, रोकथाम के बेहतर उपाय बता सकती है, जीवन शैली में बदलाव ला सकती है तथा शीघ्र और प्रभावकारी इलाज प्रस्तुत कर सकती है।

परंतु जीनोम की जानकारी का दूसरा पहलू भी है। यह जानकारी हमारी चिंताओं को बढ़ाएगी, व्यक्तिगत संबंधों में अप्रिय बदलाव लाएगी, यह हमारे जीवन को कलंकित भी कर सकती है। उदाहरण के लिए विचार कीजिए कि किसी को कोई गंभीर बीमारी होने के बारे में अधूरी और संदिग्ध जानकारी मिलती है (जैसे कैंसर होने की संभावना में 20 प्रतिशत की वृद्धि) तो उसका उस व्यक्ति के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा? जीन परीक्षण का विस्तार होने पर नौकरी प्राप्त करने में या जीवन बीमा सेवा में जीन आधारित भेदभाव शुरू हो सकते हैं।

जीनोम की जानकारी से परंपरागत चिकित्सा पद्धति में परिवर्तन हो रहा है, अपराधों के मामले सुलझाए जा रहे हैं और जीवन की गुत्थी को समझने में मदद मिल रही है। दूसरी ओर जीनोम की जानकारी इतनी शक्तिशाली है कि यह उन वैज्ञानिकों को भी भयावह प्रतीत होती है, जो इसके अच्छे जानकार हैं। सन् 1953 में डी.एन.ए. की संरचना की खोज करनेवाले एक वैज्ञानिक जेम्स वाट्सन (दूसरे वैज्ञानिक थे—फ्रांसिस क्रिक) का कथन है कि सबसे बड़ी और आश्चर्यजनक बात यह है कि उस समय डी.एन.ए. हमें बहुत सरल प्रतीत होता था। आरंभ में यह

महाअणु सभी को बड़ा लुभावना लगा था। यह बात नहीं है कि अब इसे हम नापसंद करते हैं, परंतु इसकी समूची पेचीदगियों से पैदा की जा सकने वाली चीजों के बारे में सोचते हैं, तो भय लगता है। मेरा दिमाग चकरा जाता है।

मानव जीनोम का उद्‌घाटन और भी अनेक चिंतनीय सवालों को जन्म देता है। हमारे जीनोम में विद्यमान कूट सूचनाओं को जानने का अधिकार किसे होना चाहिए? हमें अपने बारे में अधिक-से-अधिक कितना जानना चाहिए? यह भी एक अहम सवाल है कि विधिवेत्ताओं, चिकित्सकों और शिक्षाविदों को ही नहीं, बल्कि आम जनता को भी जैव तकनीकी और इसके परिमाणों के बारे में सही ढंग से किस तरह शिक्षित किया जाए? अब वह समय आ गया है कि हम सबको अपने जीनोम की और इसमें अंतर्निहित अपार संभावनाओं की सही जानकारी अवश्य होनी चाहिए। साथ ही हमें यह भी देखना होगा कि मानव जीनोम और जैव तकनीकी के जरिए जिस नई दुनिया का उद्‌घाटन होने जा रहा है, उसे किस तरह की नैतिक, सामाजिक और कानूनी समस्याओं का सामना करना पड़ेगा?

एक ओर तो ऐसा लगता है कि मनुष्य के जीनोम के अनुक्रमण की जानकारी तथा उसका अध्ययन मनुष्य की शारीरिक पीड़ाओं को दूर करने में बहुत सहायक सिद्ध हो सकता है, वहीं दूसरी ओर इस जानकारी के खतरे भी दिखाई देते हैं। ज्ञान आखिर ज्ञान होता है, बिना सदुपयोग के उसका लाभ नहीं मिल पाता, बल्कि नुकसान ही होता है, यह अब मनुष्य पर निर्भर है कि उस ज्ञान से होनेवाले लाभ पर पूर्ण ध्यान देकर उसे बढ़ाए तथा खतरे को हटा दे। वैज्ञानिक खोज से मनुष्य के बढ़ते ज्ञान और ताकत के साथ-साथ अपने और भविष्य की पीढ़ियों के भविष्य की जिम्मेदारी का भी एहसास होना जरूरी है। हमारा जीनोम हमारे पूर्वजों की धरोहर है, जो लाखों वर्षों से सुरक्षित चला आ रहा है। इसे भविष्य की पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखने हेतु अपने पर्यावरण को प्रदूषण से बचाना होगा तथा प्रकृति के साथ नाता मजबूत करके ताल-मेल के साथ जीना सीखना होगा।

जीनोम परियोजना और जीव विज्ञान का भविष्य

सदियों से मनुष्य को जीवन के रहस्यों को समझने की प्रबल इच्छा रही है। प्रकृति के प्रति इसी सहज जिज्ञासा के कारण वह अपने आस-पास के जीव-जंतुओं और पेड़-पौधों का अध्ययन करता आ रहा है। इस जीव विज्ञान की महत्त्वपूर्ण घड़ी तब आई, जब सन् 1928 में फेजग्रिफिथ ने खोज की कि किसी भी जैविक इकाई के गुणों को प्रयोग के तौर पर बदला जा सकता है। इसके बाद सन् 1944

में ओसवाल्ड एवरी, कोलिन मैकलियोज और मैकलिन मैकार्टी ने पता लगाया कि जीवन के पैतृक गुणों का आधार डी.एन.ए. है, प्रोटीन नहीं। यह खोज एवरी की खोज के बाद बहुत महत्त्वपूर्ण थी, क्योंकि कुछ वैज्ञानिक इसके पहले प्रोटीन को आनुवंशिकता का आधार समझते आ रहे थे। सन् 1953 में वाटसन और किक की प्रसिद्ध डी.एन.ए. की संरचना की खोज के साथ जीवविज्ञान को आणविक स्तर पर समझने की प्रक्रिया आरंभ हुई। इसी डी.एन.ए. संरचना में यह रहस्य छुपा हुआ था कि कैसे जीवन की एक इकाई से दो स्वतंत्र जीवन इकाइयाँ बन सकती हैं? सन् 1980 से 1970 के दौरान हरगोविंद खुराना, मार्शल नीरेनबर्ग और अन्य वैज्ञानिकों ने जीव-विज्ञान की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया डी.एन.ए. से आर.एन.ए. और आर.एन.ए. से प्रोटीन के माध्यम से आनुवंशिक गुणों के प्रवाह का पता लगाया। डी.एन.ए. के एक अंश को, जो एक प्रोटीन बनाने की सूचना रखता है, 'जीन' कहते हैं। वायरस से बैक्टीरिया और मनुष्य तक आनुवंशिकता का वही आधार है और किसी भी जीव के समस्त आनुवंशिक गुणों का भंडार है उसका जीनोम।

हाल ही में जीव-विज्ञान के क्षेत्र में एक और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हुई और वह है मानव के संपूर्ण आनुवंशिक गुणों के आधार पर उसके जीनोम के अनुक्रमण का काम पूरा होना। अब हमें अपने डी.एन.ए. में निहित सारे जीनों का और उनके अतिरिक्त जो डी.एन.ए. हैं, उनका ठीक-ठीक अनुक्रमण मालूम हो गया है। इस जानकारी के आधार पर हम अब अपने शरीर की कोशिकाओं में होनेवाली जटिल जैविक क्रियाओं को पूरी तरह से समझने का प्रयास कर सकते हैं। एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि इस तरह के कई और प्राणियों के जीनोम अनुक्रम की जानकारी प्राप्त की जा चुकी है। इससे हम विभिन्न प्राणियों के जीनोमों की तुलना कर सकते हैं। इस तरह के तुलनात्मक अध्ययन से बहुत सी और रोचक व आश्चर्यजनक बातें सामने आ रही है। उदाहरण के तौर पर मनुष्य चूहा, मक्खी, कीड़े और अन्य साधारण प्राणियों के जीनोम में तमाम जीन मिलते-जुलते पाते गए हैं। यह बात एक तरफ सभी प्राणियों के क्रमिक विकास के रिश्ते की पुष्टि करती है, वहीं दूसरी तरफ यह भी स्पष्ट हो रहा है कि बहुत सारी प्रक्रियाएँ और संरचनाएँ, जो हमारे शरीर को जीवित रखतीं और चलाती हैं, वे ही प्रक्रियाएँ और संरचनाएँ निम्न कोटि के जीवों में भी विद्यमान हैं। दूसरे शब्दों में मनुष्य और मक्खी में जीनोम के दृष्टिकोण से उतना फर्क नहीं है, जितना देखने में लगता है या जितना हम समझते आए हैं।

□

11

आनुवंशिक अभियांत्रिकी और डॉ. खुराना

आजकल कुछ रोगों को असाध्य रोग माना जाता है। इनमें उन रोगों का विशेष महत्त्व है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आते हैं। ये रोग शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं। जीन के कृत्रिम रूप से तैयार हो जाने के बाद आनुवंशिक बीमारियों को समझने और उनका सामना करने के लिए नए उपायों का द्वार खुल गया है।

इन रोगों में मधुमेह, रक्तक्षीणता तथा रक्त संबंधी अन्य रोग, कई प्रकार की पेशी-क्षीणता तथा वंशानुगत बधिरता एवं अंधता शामिल हैं। विषाणु-रोगों तथा कैंसर के विरुद्ध चिकित्सा अभियान के लिए नए मार्ग प्रशस्त हो सकते हैं।

इस खोज में सबसे बड़ी बात तो यह होगी कि भाग्यवाद पर मनुष्य का विश्वास बिल्कुल उठ जाएगा। मनुष्य में ऐसे जीन का प्रवेश किया जा सकेगा, जो असुंदर को सुंदर और नाटे को लंबा बना दे। बात यहीं समाप्त नहीं होती, मानव के स्वभावगत गुण-धर्म को बदलने में भी कठिनाई नहीं रहेगी। अब बहुत ही चिड़चिड़े स्वभाववाले तथा मानसिक दृष्टि से पिछड़े लोगों को जीवन-भर चिड़चिड़ा या पिछड़ा नहीं रहना पड़ेगा। कमजोर दिमाग के लोगों को तेज दिमाग दिया जा सकेगा। जीवन की इकाई 'जीन' का निर्माण आज भले ही प्रयोगशाला तक सीमित हो, पर जीव-विज्ञान के क्षेत्र में जब नए-नए क्रियाकलाप होंगे तो मनुष्य के भावी निर्माण में यह कितना लाभकर सिद्ध होगा, इसका आज अनुमान लगा सकना भी शायद कठिन है। आगे चलकर कृत्रिम जीवन का निर्माण कर लेना संभव हो सकता है। अगर ऐसा हो सका तो इस स्थिति में मनुष्य को केवल प्रकृति के बंधनों से ही महान् मुक्ति नहीं मिलेगी, बल्कि यह जीवन के एक बड़े क्रांतिकारी मोड़ पर खड़ा होगा। हो सकता है कि मृत्यु पर विजय पाने का कोई ठोस मार्ग निकल आए।

अब मनचाहे कृत्रिम जीन को क्रोमोसोम (गुणसूत्र) पर बिठाने की क्रिया खोज लेने की आवश्यकता होगी। अभी इस ओर कोई ठोस कार्य नहीं हो पाया है, क्योंकि ऐसा कर पाना कोई आसान काम नहीं है। इसका कारण यह है कि जिस कोशिका में हम जीन का प्रवेश करना चाह रहे हैं, वे जीन प्रत्येक कोशिका के केंद्रक में गुणसूत्रों पर स्थित होते हैं और आनुवंशिक गुणों को संतति में ले जाने का कार्य करते हैं। ये जीन न्यूक्लिक एसिड के बने होते हैं, जो दो प्रकार के होते हैं—डी.एन.ए. और आर.एन.ए.। आनुवंशिक सूचना डी.एन.ए. में रहती है और आर.एन.ए. इस सूचना को कोशिकाओं को यह बताने का काम करता है कि उन्हें क्या करना है। हम इस तरह भी कह सकते हैं कि जीन डी.एन.ए. के अणु होते हैं और हर मानव कोशिका के केंद्र में लगभग 1.5 लाख जीन गुणसूत्रों में फैले रहते हैं। ये जीन कोशिकाओं पर नियंत्रण करते हैं, जबकि वे अमीनो-अम्ल को प्रोटीन का रूप देते है। डी.एन.ए. में चार रसायन होते हैं, जो पीढ़ी संबंधी सूचनाएँ रखते हैं और यही हमारी शक्ल-सूरत, लिंग तथा जो भी हम बनते हैं, उसकी शक्ल छापते हैं। डॉ. खुराना के दल ने इन्हीं चार रसायनों (न्यूक्लियोटाइड) को बनाकर उन्हें एक साथ ऐसे क्रम से रख दिया कि उन्होंने आवश्यक रासायनिक क्रियाओं के साथ एक पूर्ण जीन का रूप ले लिया।

ये चार न्यूक्लियोटाइड हैं—एडीनिन, थायमीन, गुआनिन तथा साइटोसिन। न्यूक्लियोटाइडों में प्रत्येक जीन के कार्यों का लेखा भरा होता है। जीन के अंदर न्यूक्लियोटाइड मिलते समय एक विशेष क्रम अपनाते हैं। अगर एडीनिन कुंडली के एक 'सिरे' पर जुड़ेगा तो दूसरे सिरे पर केवल थियामिन ही होगा, ठीक इसी प्रकार ग्वानिन केवल साइटोसिन से मिलता है। इस प्रकार जीन जब दूसरा जीन बनाने के लिए विभाजित होता है तो प्रत्येक भाग में अपने पूरक भाग से मिलने के लिए मुख्य रूपरेखा होती है।

अब समस्या यह है कि मनुष्य की एक कोशिका में 46 गुण-सूत्र होते हैं और उन पर जो लगभग डेढ़ लाख जीन होते हैं, इनमें से किसी खास गुण वाले जीन को कैसे निकाला या रखा जा सकेगा और उसकी मरम्मत कैसे की जा सकेगी? इसके लिए अनेक विधियों पर विचार हो चुका है। एक संभव विधि यह भी हो सकेगी कि एक ऐसे विषाणु को विकसित किया जाए, जो इच्छित जीन को कोशिकाओं के अंदर ले जा सके और उन्हें वहाँ जमा कर दे। यह तो सर्वविदित है ही कि जब विषाणु कोशिका में प्रवेश कर जाते हैं तो वे कोशिकाओं के लिए अपने निजी न्यूक्लिक एसिड का निर्माण करते हैं और कोशिकाओं का सामान्य कार्य रोककर अधिक विषाणु कोशिकाओं में शीघ्र ही अन्य कोशिकाओं में फैल जाएँगे और

इच्छित गुण-रूप दे सकेंगे। लेकिन यह विधि कोई ठोस विधि नहीं है। अन्य विधियाँ भी विकसित की जा सकती हैं। इस विषाणु विधि से लाभ की बजाय हानि होने की अधिक संभावना है। घुसपैठिए तथा गुप्तचर अपना रूप-गुण बदलकर दूसरे देश या घर का भेद लाने के लिए इसे उपयोग करना चाहेंगे। इस विधि को लोग युद्ध का साधन बना सकते हैं और विषाणु द्वारा दुश्मन देश के लोगों तथा सेना में नपुंसकता आदि के आनुवंशिक गुणों के जीनों का प्रसार कर सकते हैं। ऐसी स्थिति तो सर्वाधिक मारक अस्त्रों के उपयोग से भी भयानक होगी।

आनुवंशिक अभियांत्रिकी और जैव-चिकित्सा

जीव-विज्ञान के विकास और अनेक आधुनिक तकनीकों के सम्मिश्रण से आज चिकित्सा के नए आयाम सामने आ रहे हैं। जैव-चिकित्सा का एक बड़ा भाग यह है कि हम सभी बीमारियों को जैव तकनीक या शरीर के अंदर ही स्थित व्यवस्थाओं के माध्यम से ठीक करते हैं। यह अपने आप में एक क्रांतिकारी परिवर्तन के रूप में सामने आ रहा है। निकट भविष्य में हम रासायनिक प्रक्रिया द्वारा बनी औषधियों का प्रयोग करेंगे। आनेवाले समय में कोशिकीय और आणविक स्तर पर चिकित्सा प्रणाली का रहस्योद्घाटन होगा। जीन को बदलकर या उन्हें चालू-बंद करके चिकित्सा की जाएगी। वर्तमान में फॉरवर्ड आनुवंशिकी और रिवर्स आनुवंशिकी के कारण रोगों और उनके कारकों का पता लगा सकते हैं।

आजकल बहुत से ऐसे रोग हैं, जिनका उपचार वर्तमान चिकित्सकीय पद्धति द्वारा संभव नहीं है। जीवनभर उपचार कराना एक अत्यंत महँगी एवं कष्टदायक प्रक्रिया है। वंशानुक्रम में प्राप्त रोगों के कारण मानव जाति को होने वाली हानि के बढ़ने के कारण इन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। सामान्यतया लोगों को इसका ज्ञान होता है कि अमुक रोग या गड़बड़ी का कारण आनुवंशिक या वंशानुक्रम है, लेकिन उन्हें इसकी जानकारी नहीं होती कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी ये रोग कैसे पहुँचते हैं? आनुवंशिकी एवं चिकित्सा के क्षेत्र में निरंतर हो रहे शोधों के परिणामस्वरूप आनुवंशिक गड़बड़ियों के संप्रेषण का ज्ञान तथा मानव जीनोम अनुक्रमण की सूचना उपलब्ध हो जाने से सभी प्राथमिक स्वास्थ्य संबंधित विषयों पर आनुवंशिक परामर्श देने में आसानी हो गई है। आधुनिक जैव-प्रौद्योगिकी के अंतर्गत संबंधित रोगों का इलाज ही नहीं, अपितु उनके कारण का निदान भी संभव है। इस प्रक्रिया में उन जीनों को, जिनकी खराबी के कारण रोग उत्पन्न होता है, स्वस्थ जीनों से बदला जा सकता है।

जीन प्रतिस्थापन की इस रणनीति के तहत एक स्वस्थ मनुष्य की कोशिका से स्वस्थ जीन को निकालकर रोगी के अंदर इस प्रकार से डालना होता है कि

या तो वह कोशिका के भीतर व्याधित जीन का स्थान ले ले या फिर स्वतंत्र और स्थायी रूप से कोशिका में ही रहे और उस प्रोटीन का निर्माण करे, जिसके उचित रूप से न बनने के कारण रोग होता है। इस प्रक्रिया को 'जीन उपचार' या 'जीन थेरेपी' कहते हैं। जीन थेरेपी के द्वारा रोगी को पूरा जीवन इलाज कराने की कोई आवश्यकता नहीं होगी। साथ ही इसके द्वारा उन असाध्य रोगों का इलाज भी संभव होगा, जिनका निवारण वर्तमान चिकित्सा प्रणाली द्वारा नहीं है।

हम सभी जानते हैं कि शरीर को बनाने का तथा उसे चलाने का संपूर्ण लेखा-जोखा केंद्रक में उन इकाइयों के रूप में होता है, जिन्हें 'जीन' कहते हैं। ये जीन प्रोटीन का निर्माण करते हैं, जो कोशिका का मुख्य अवयव होता है। प्रत्येक कोशिका का निर्माण, उसका भविष्य तथा उसकी कार्यशैली का निर्धारण उसमें उपस्थित जीनों के द्वारा होते है। प्रत्येक मानव कोशिका के भीतर लगभग 35,000-40,000 जीनें होती हैं। जीनों में पाए जाने वाले इन दोषों के फलस्वरूप संबंधित प्रोटीन की रचना व कार्यशैली पर भी असर पड़ता है, जिसके कारण कई प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं, जिन्हें 'जीन संबंधित व्याधियाँ' कहा जाता है। किसी परिवार में आनुवंशिक विकार के होने या उस विकार के होने की संभावना से जुड़ी समस्याओं से संबंधित सलाह देने को 'आनुवंशिक परामर्श' कहा जाता है। इसमें व्यक्ति विशेष के आनुवंशिक लक्षणों के आधार पर सलाह दी जाती है। साधारणत: सलाह पानेवालों में सिर्फ एक व्यक्ति विशेष नहीं, बल्कि उसका सारा परिवार सम्मिलित होता है। आनुवंशिक परामर्श की सहायता से चिकित्सीय तथ्यों की जानकारी प्राप्त होती है, जिसके अंतर्गत निदान के साथ-साथ उस विकार या गड़बड़ी के संभावित कारण और उनके लिए उपलब्ध प्रबंधन आदि भी रहते हैं।

आनुवंशिक परामर्श द्वारा प्राप्त जानकारी के आधार पर जीन थैरेपी की सहायता से इलाज किया जाता है। इसमें तीन तकनीकें इस्तेमाल की जाती हैं—

1. विकारग्रस्त जीन को हटाकर उसके स्थान पर सामान्य जीन लगा दिया जाता है। इसे 'जीन-प्रतिस्थापन' कहा जाता है।
2. विकारयुक्त जीन का संशोधन करके पूरक भाग को प्रविष्ट कराकर जीन-चिकित्सा की जा सकती है। इसे 'जीन-लक्ष्यीकरण' कहते हैं।
3. यदि कोई जीन पूर्णरूप से क्रियाशील न हो तो उस जीन की कुछ प्रतिलिपियों का प्रवेश कराकर विकार दूर किया जा सकता है। यह विधि 'जीन-संवर्धन' कहलाती है।

वस्तुत: जीन थेरेपी में प्रथम कठिनाई है, जीन का कोशिका में प्रवेश कराना। रासायनिक रूप से जीन डी.एन.ए. अणु का बना होता है, जो एक आवेशित अणु

है। प्रत्येक कोशिका के चारों ओर एक सुरक्षा परत होती हैं, जिसे कोशिका झिल्ली कहते हैं। यह झिल्ली किसी बाह्य अणु को कोशिका के भीतर फँसने से रोकती है। यही झिल्ली बाह्य जीन को कोशिका के भीतर नहीं जाने देती है। दूसरा, जीन यदि कोशिका के अंदर चला भी जाए तो कोशिका के भीतर उपस्थित एंजाइम इसे नष्ट कर सकते हैं। प्रोटीन निर्माण हेतु जीन का कोशिकीय केंद्रक में यथास्थिति पहुँचना आवश्यक होता है। अत: इन जीनों की एंजाइमों से सुरक्षा भी आवश्यक है। इन सबसे बढ़कर एक और समस्या होती है। प्रत्येक रोग एक विशेष अंग को प्रभावित करता है। हर अंग का अपना एक विशिष्ट कार्य होता है। इस प्रकार जीन के द्वारा किसी विशेष अंग में कार्य न किए जाने पर रोग की स्थिति उत्पन्न होती है। इस स्थिति में यह आवश्यक होता है कि रोग उत्पन्न करनेवाले जीन की स्वस्थ प्रति को उस अंग विशेष के लिए निर्धारित करके रोगी के शरीर में डाला जाए और यह जीन उस अंग विशेष में पहुँचकर व्याधि से प्रभावित जीन को प्रतिस्थापित कर उसकी कार्यशैली को सामान्य बनाए।

हाल ही में जैव-वैज्ञानिकों ने रोग उत्पन्न करनेवाले जीनरहित विषाणुओं का प्रयोग जीन थेरेपी में किया है। भिन्न प्रकार के विषाणु कुछ विशिष्ट अंगों को ही निशाना बनाते हैं। विषाणु की इसी विशेषता का लाभ उठाते हुए उचित विषाणुओं का चयन कर उनके माध्यम से जीनों को विशिष्ट अंगों तक पहुँचाया जाता है। इस कार्य के लिए जिन प्रमुख विषाणुओं का उपयोग होता है, वे हैं—रेट्रो वायरस, एडीनो वायरस, एडीनो एसोशियेटिड वायरस, एच.आई.वी., म्यूरिन ल्यूकीमिया वायरस आदि।

कुछ जैव वैज्ञानिकों ने शोधोपरांत यह ज्ञात किया है कि विषाणुओं के अतिरिक्त ऐसे और भी कणों को कोशिका के भीतर प्रवेश करवा पाना संभव है। एक बहुत ही लोकप्रिय माध्यम है, 'लाइपोसोम'। लाइपोसोम सूक्ष्म, गोलाकार, वसीय परतों से निर्मित कण होते हैं, जिनके अंदर डी.एन.ए. को आसानी से बंद किया जा सकता है। जीनों से युक्त इन लाइपोसोम को कोशिका अपनी झिल्ली द्वारा आसानी से सोख लेती है। फलस्वरूप जीन कोशिका के भीतर चला जाता है।

ऐसा माना जा रहा है कि अभी तक जीन उपचार क्षेत्र में जो भी शोध हो रहे हैं, वे मुख्य रूप से कायिक कोशिकाओं (सोमेटिक सेल्स) तक ही सीमित हैं। कायिक कोशिकाओं के किए गए जीन बदलाव के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ यह प्रभाव सिर्फ रोगी तक सीमित रहता है। इसकी अपेक्षा यदि यह उपचार जर्मलाइन कोशिकाओं में भी किया जाए तो सिर्फ रोगी ही नहीं, अपितु उसकी संतान भी उन

रोगों से बच सकती है। मानव जीनोम अनुक्रमण की सूचना उपलब्ध हो जाने से भविष्य में इस दिशा में सफलता प्राप्त होने की प्रबल संभावनाएँ हैं।

आनुवंशिक अभियांत्रिकी (Genetic Engineering) का विकास 1970 के दशक से हुआ। उस समय कुछ ऐसी वैज्ञानिक खोजें हुईं, जिससे आज की जीन तकनीक की नींव रखी गई। जीन को, जोकि डी.एन.ए. का एक घटक होता है, इच्छानुसार काटकर, फिर से जोड़ा जा सकता है। डी.एन.ए. के टुकड़ों की जोड़-तोड़ करना और उन्हें अधिक मात्रा में जीवाणु या सूक्ष्मजीवियों द्वारा बनाना जीन तकनीक का आधार है।

हमारा शरीर छोटी-छोटी इकाइयों से बना हुआ है, जिन्हें कोशिका कहते हैं। कोशिका के केंद्रक (Nucleus) में उसका जीनोम होता है, जिसमें आनुवंशिक पदार्थ अर्थात् डी.एन.ए. होता है। यह डी.एन.ए. मानव कोशिकाओं के केंद्रक में 23x2=(46) गुणसूत्र बनाता है, जो जीन के असली वाहक हैं। ऐसा अनुमान है कि लगभग एक लाख जीन मानव जीनोम में होंगे। जीन डी.एन.ए. के घटक होते हैं और डी.एन.ए. के अणु चार प्रकार के मूलांश क्षार, एडीनीन (ए), साइटोसीन (सी) गुआनीन (जी) तथा थायमीन (टी) से बने हुए होते हैं। जीन या डी.एन.ए. के टुकड़ों की क्लोनिंग जब 1970 के दशक में प्रारंभ हुई थी, तभी से आणविक जीव-विज्ञान ने एक नया मोड़ लिया है।

डी.एन.ए. की क्लोनिंग द्वारा इसके एक अणु के समरूपी कई अणु बना सकते हैं। इस क्रिया को प्राय: जीवाणु में एक प्लाविका की मदद से किया जाता है। प्लाविका, डी.एन.ए. के बने ऐसे वृत्ताकार अणु होते हैं, जोकि बैक्टीरिया में प्रतिकूल किए जा सकते हैं। डी.एन.ए. की क्लोनिंग प्राय: इन्हीं प्लाविकाओं के द्वारा की जाती है। अब ऐसी प्लाविकाएँ भी जीन तकनीक द्वारा बना ली गई हैं, जोकि मानव की कोशिकाओं में प्रतिकूल हो सकती हैं। प्लाविका के अतिरिक्त वायरस का उपयोग भी क्लोनिंग के लिए करते हैं।

डी.एन.ए. की क्लोनिंग के लिए इसके अणुओं को आवश्यकतानुसार टुकड़ों में काटना होता है। इसके लिए कुछ एंजाइमों का उपयोग करते हैं, जिन्हें रेस्ट्रिक्शन एंडोन्यूक्लिएज कहते हैं। रेस्ट्रिक्शन एंडोन्यूक्लिएज की विशेषता यह है कि वे डी.एन.ए. को एक विशेष स्थान या शृंखला पर ही काटते हैं। उदाहरण के लिए रेस्ट्रिक्शन एंजाइम डी.एन.ए. को केवल उस स्थान पर काटता है, जहाँ पर उसकी पहचान शृंखला अर्थात् GAATTC होती है। अब तक बहुत से रेस्ट्रिक्शन एंडोन्यूक्लिएज का पता लगाया जा चुका है, जोकि डी.एन.ए. के इन टुकड़ों को

जोड़ने के लिए जिस एंजाइम का प्रयोग करते हैं, उसे डी.एन.ए. लाइगेज कहते हैं। रेस्ट्रिक्शन एंडोन्यूक्लिएज उन्हें प्लाविका वेक्टर में जोड़ना ही उन टुकड़ों की क्लोनिंग करना है।

1980 के दशक में एक ऐसी तकनीक का विकास हुआ, जिसने जीन तकनीक के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया है। उसे पॉलीमरेज शृंखला प्रतिक्रिया या पी सी आर के नाम से जाना जाता है। इस तकनीक के द्वारा डी.एन.ए. के एक अणु से लाखों की संख्या में एक समान अणु, कुछ घंटों में बिना किसी जीवाणु की सहायता के एक छोटी सी परखनली में बनाए जा सकते हैं। इस (पीसीआर) क्रिया के द्वारा हम डी.एन.ए. के एक अणु में से बिना उसे टुकड़ों में काटे, अपनी आवश्यकता के अनुसार, किसी भी भाग की कई प्रतिकृतियाँ बना सकते हैं। इस क्रिया के आविष्कार के लिए डॉ. मुलिस को नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

चिकित्सा के क्षेत्र में आनुवंशिक अभियांत्रिकी

मनुष्यों को होनेवाले अधिकांश रोग या तो जीवाणु जैसे सूक्ष्मजीवों द्वारा फैलाए गए संक्रामक रोग (तपेदिक, कुष्ठ रोग, हैजा, मियादी बुखार) या विषाणुओं (पोलियो, फ्लू, खसरा, एड्स) और अन्य परोपजीवियों (मलेरिया, हाथीपाँव, आँव) द्वारा फैलाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त मनुष्य में आनुवंशिक दोषों के कारण कुछ बीमारियाँ होती हैं। रोगाणुओं द्वारा पैदा होने वाली बीमारियों पर प्रतिजैविक पदार्थों की सहायता से रसायन चिकित्सा या रोग निवारक टीकों द्वारा काबू पाया जाता है।

पुनर्योजी डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी संक्रामक रोगों के सभी पक्षों अर्थात् निदान, रोकथाम और उपचार का साधन है। प्रभावी उपचार आरंभ करने से पहले संक्रामक रोग का तुरंत सही-सही निदान आवश्यक है। मानक सूक्ष्मदर्शी विधियों की सहायता से रोग निदान की पारंपरिक विधियों द्वारा रोग का पता लगाने की अपनी सीमाएँ हैं, उनकी संवेदनशीलता सीमित है। इसके अतिरिक्त इन विधियों से संवर्धन तैयार करने और जीवों के संक्रमण तथा औषधि के प्रति उनकी संवेदनशीलता एवं रोग प्रतिरोधकता के मूल्यांकन में कई सप्ताह लग जाते हैं। पुनर्योजी डी.एन.ए. प्रौद्योगिकियों से कम समय में तथा अधिक विश्वसनीयता के साथ इन लक्षणों का पता लगाया जा सकता है। हाल ही में विकसित पॉलीमरेज शृंखला अभिक्रिया प्रौद्योगिकी के विकास से रोग निदान प्रक्रियाओं की संवेदनशीलता और परिशुद्धता में पूर्णतः क्रांति आ गई है। इसके साथ-साथ संवेदनशील और विश्वसनीय रोग निदान के आसान तरीके भी विकसित किए जा

रहे हैं। यह प्रौद्योगिकी लगभग सभी जीवाणु, विषाणु एवं परोपजीवी संक्रमणों के लिए उपयोग में लाई जा सकती है।

विषाणुमूलक रोगों की रोकथाम में टीकों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज विश्व से चेचक का सफाया हो गया है और पोलियो रोग लगभग समाप्त होने वाला है। लेकिन अभी भी विषाणुओं और जीवाणुओं से पैदा होनेवाले ऐसे अनेक रोग हैं, जिनके लिए पारंपरिक टीके पूरी तरह कारगर सिद्ध नहीं हुए हैं। एड्स जैसी बीमारियों के कारण समस्या और गंभीर हो गई है, जिनके लिए कोई पारंपरिक टीका उपलब्ध नहीं है और न कोई ऐसा टीका तैयार करना संभव प्रतीत होता है। ऐसे मामलों में पुनर्योजी डी.एन.ए. पर आधारित दूसरी और तीसरी पीढ़ी के टीकों से काफी आशा है।

पुनर्योजी डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी और आनुवंशिक अभियांत्रिकी के साथ-साथ संकरण प्रौद्योगिकी का भी रोग नियंत्रण में काफी योगदान है। संकरण प्रौद्योगिकी में चूहे की मज्जाबुर्द कोशिका को प्रतिपिंड उत्पन्न करने वाली रक्तकोशिका से जोड़ा जाता है और संयोजित कोशिका को छाँटकर प्रतिपिंड की वांछित एकल प्रजाति प्राप्त करने के लिए बढ़ने दिया जाता है। ऐसी अत्यधिक विशिष्टता वाले प्रतिपिंडों में उपचार की आश्चर्यजनक क्षमता होती है। इसके अतिरिक्त, एकल क्लोनीकरण विधि द्वारा तैयार किए गए प्रतिपिंड शरीर के विशिष्ट भाग में औषधि पहुँचाने, विशेषकर अर्बुद कोशिकाओं या संक्रायक रोगाणुओं को समाप्त करने के लिए चमत्कारी 'बुलेट' का काम कर सकते हैं। अधिक व्यापक उपयोग के लिए मानव शरीर के अनुकूल एकल क्लोनीकरण विधि द्वारा तैयार किए गए तथा वांछित उत्प्रेरक क्रियाएँ करने या प्रतिपिंड भी पैदा किए जा रहे हैं।

मनुष्य को होनेवाले ज्ञात रोगों में से काफी ज्यादा बीमारियाँ आनुवंशिक दोषों के कारण होती हैं। इन विकृतियों में किसी एक या अनेक जीनों में दोष के कारण रोग विशेष के लक्षण दिखाई देते हैं या फिर व्यक्ति पहले से ही रोग विशेष का शिकार होने के लिए तैयार हो जाता है। आज विश्व में प्रत्येक 100 शिशुओं में एक शिशु गंभीर आनुवंशिक दोष लेकर पैदा होता है। इस दोष के कारण हुई क्षति का अकसर बचपन में ही पता लग जाता है। प्राय: आनुवंशिक दोष के कारण शारीरिक या मानसिक असामान्यता पैदा हो जाती है, दर्द होता है और कम उम्र में ही मृत्यु हो जाती है। लगभग 4000 ज्ञात पैतृक रोगों में से अधिकांश रोगों का पूरी तरह कारगर इलाज संभव नहीं है। यद्यपि जीन चिकित्सा अभी शैशवावस्था में है, आनुवंशिक का मुख्य रूप से ऐसे सक्रिय अणुओं के बड़े पैमाने पर उत्पादन पर

प्रभाव पड़ा है, जो जैव-चिकित्सा में उपयोगी हैं। इन उत्पादों में प्रमुख पुनर्योजी डी.एन.ए. पर आधारित इंसुलिन, वृद्धि हार्मोन, वृद्धि कारक, इंटरफेरॉन आदि हैं, जो सभी मानव मूलक हैं।

मनुष्य 5000 से अधिक एकल जीन उत्परिवर्तनों से उत्पन्न बीमारियों, जैसे पुटीय तंतुमयता, हीमोफिलिया आदि से पीड़ित होता है। इसके अलावा दुर्दम कोशिकाओं की उत्पत्ति दो प्रकार के जीनों में उत्परिवर्तन के कारण हो सकती है—1. आंकोजीन एवं अर्बुद निरोधक जीन। जीन उपचार में किसी आनुवंशिक रोग अथवा किसी अर्जित विकार को ठीक करने के उद्देश्य से कोशिकाओं में संबंधित जीन के सामान्य प्रकार्यात्मक विकल्पी का प्रवेश कराते हैं। जीन उपचार में निम्न चरण होते हैं—1. आनुवंशिक रोग उत्पन्न करने वाले जीन की पहचान, 2. इस जीन के उत्पादन की रोग/स्वास्थ्य में भूमिका ज्ञात करना, 3. जीन का विलगन एवं क्लोनन, तथा 4. जीन उपचार की उपयुक्त युक्ति का विकास।

जीन उपचार के लिए उन रोगों को चुनते हैं, जो 1. प्राण घातक हों, 2. रोग उत्पन्न करनेवाले जीन का क्लोन किया जा चुका हो, 3. जीन का बहुत परिशुद्ध नियमन जरूरी न हो, तथा 4. जीन विमोचन की युक्ति ज्ञात हो चुकी हो।

जीन उपचार के प्रकार

जीन उपचार दो प्रकार का होता है: 1. जनन लाइन तथा 2. कायिक कोशिका जीन उपचार। जनन लाइन जीन उपचार में सामान्य जीन को जनन कोशिकाओं (शुक्राणु एवं अंड) या जाइगोट में प्रविष्ट कराते हैं, और जीन साधारणतया इनके जीनोम में समाकलित होता है। अत: उपचार के कारण उत्पन्न हुआ परिवर्तन वंशागत होता है, जोकि बहुत ही लाभकारी स्थिति है। किंतु कई तकनीकी एवं नैतिक कारणों से इस विधि का उपयोग मानव में नहीं किया जाता।

इसके विपरीत कायिक कोशिका जीन उपचार में जीन को केवल रोगी की कायिक कोशिकाओं, विशेष रूप से जिन ऊतकों में संबंधित जीन की अभिव्यक्ति स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य हो, में प्रविष्ट कराते हैं। प्रविष्ट जीन की अभिव्यक्ति से रोग के लक्षण घटते हैं, किंतु यह दशा वंशागत नहीं होती। इस विधि के उपयोग से मुख्य रूप से कैंसर एवं रूधिर विकारों के उपचार हेतु चिकित्सकीय परीक्षण चल रहे हैं। इस विधि के दो मुख्य प्रकार होते हैं: 1. संग्रह या संवर्धन जीन उपचार, एवं 2. लक्ष्यबद्ध जीन स्थानांतरण।

संवर्धन जीन उपचार

इस विधि में उपचार की गई कोशिका में संबंधित जीन के दोषयुक्त तथा सामान्य (जीन उपचार द्वारा प्रविष्ट) दोनों ही विकल्पी उपस्थित होते हैं। इसकी दो मुख्य विधियाँ हैं—

1. संबंधित जीन के सामान्य प्रकार्यात्मक विकल्पी को लक्ष्य स्तंभ कोशिकाओं में प्रविष्ट कराते हैं, उदाहरण के लिए लिफोसाइटों, अस्थि मज्जा कोशिकाओं आदि में। इन कोशिकाओं को रोगी से अथवा सुमेलित दाता से प्राप्त करते हैं। अब उपयुक्त जीन रचना से ट्रांसफेक्डिट कोशिकाओं का वरण करके उन्हें रोगी के शरीर में प्रतिरोपित करते हैं। रिट्रोवायरस वाहकों को और अधिक सुरक्षित बनाने के लिए इनसे आत्मघाती वाहक बनाए गए हैं। ये वाहक जीन स्थानांतरण के बाद प्रतिकृति नहीं कर पाते। उदाहरणार्थ, तीव्र संयुक्त प्रतिरक्षा ह्रास संलक्षण, एडिनोसीन डिएमिनेस न्यूनता के कारण उत्पन्न होता है। (1) एडीए जीन के सामान्य विकल्पी को विलग करके क्लोन किया गया, फिर 2. इसकी प्रतियों को एक त्रुटिपूर्ण रिट्रोवायरस के जीनोम में समाकलित किया गया। (रिट्रोवायरस के अधिकांश जीनों को एडीए जीन से प्रतिस्थापित कर दिया गया था।) 3. अब रोगी के लिंफोसाइट प्राप्त करके उनको (3) उपरोक्त पुनर्योगज रिट्रोवायरसों से संक्रमित किया गया। अंत में 5. एडीए जीन अभिव्य कर रही लिंफोसाइटों का वरण करके उन्हें रोगी के शरीर में पुन: प्रतिरोपित किया गया। रोगी के शरीर में एडीए जीन की अभिव्यक्ति के कारण रोगी के प्रतिरक्षा तंत्र में सुधार पाया गया।

इस विधि की अन्य समस्याएँ निम्न हैं : 1. स्तंभ कोशिकाओं का निम्न आवृत्ति में ट्रांसफेक्शन, 2. समाकलित जीन का स्थायित्व 3. जीन अभिव्यक्ति की अवधि, 4. जीन अभिव्यक्ति का उपयुक्त नियमन आदि। अत: आजकल ट्रांसफेक्शन की अन्य विधियों, जैसे फास्फेट सहअवक्षेपण, कणिका बंदूक, इलेक्ट्रोफोरेसिस आदि पर अधिक जोर है।

2. इस विधि में शुद्ध डी.एन.ए. अथवा डी.एन.ए. प्रोटीन संकुल (विशिष्ट ऊतकों में ग्राही रिसेप्टर के माध्यम से प्रवेश के लिए)को सीधे पेशी अथवा त्वचा में इंजेक्ट करते हैं। इन कोशिकाओं में डी.एन.ए. प्रवेश करता है तथा जीन अभिव्यक्त होता है। कुछ रोगों के उपचार में इससे आशातीत सफलता मिली है। इस विधि में भी ट्रांसफेक्टिव कोशिकाओं की संख्या तथा जीन अभिव्यक्ति की अवधि प्रमुख समस्याएँ हैं।

जीन उपचार पद्धति से कैंसर एवं एड्स का उपचार भी किया जा सकता है। कैंसर उपचार के लिए आविष कोडित करने वाले जीन को कैंसर कोशिकाओं

में प्रविष्ट कराते हैं। इसी प्रकार एड्स उपचार में उपयुक्त इंटरल्यूकिन जीनों को प्रविष्ट कराकर प्रतिरक्षा तंत्र को मजबूत कर सकते हैं।

लक्ष्यबद्ध जीन स्थानांतरण

लक्ष्यबद्ध जीन स्थानांतरण में संबंधित जीन के सामान्य विकल्पी को जीनोम में पूर्वनिर्धारित स्थल पर समाकलित करते हैं, आदर्श दशा में जीनोम में पहले से उपस्थित त्रुटिपूर्ण विकल्पी को इस प्रक्रिया के द्वारा हटा दिया जाता है। यह समजात पुनर्योगज के द्वारा होता है। इसके लिए निम्न दो प्रकार के वाहकों का उपयोग किया जाता है—

1. निवेशन वाहकों की त्रजु अवस्था में उनके दोनों छोरों पर उस क्रम के भाग होते हैं, जहाँ पर सामान्य विकल्पी को समाकलित करना है, जबकि स्थानांतरित किया जाने वाला सामान्य विकल्पी इन क्रमों के बीच में स्थित होता है। छोरों पर स्थित क्रम में समजात पुनर्योजन होता है, जिससे स्थानांतरित किए जा रहे जीन का द्विगुणन होता है, साधारणतया इस वाहक का निवेशन त्रुटिपूर्ण विकल्पी के स्थान पर न होकर उसके पड़ोस में होता है। इस प्रक्रिया को निवेशनी पुनर्योजन कहते हैं। इन्हीं वाहकों का जीन उपचार में उपयोग किया जाता है।

2. प्रतिस्थापन वाहकों की त्रजु अवस्था में उनके दोनों छोरों पर स्थानांतरित किए जा रहे जीन के आधे-आधे भाग उपस्थित होते हैं। छोरों पर स्थित जीन के क्रमों में समजात पुनर्योजन होता है, जिससे कोशिका के जीनोम में उपस्थित विकल्पी का एक भाग वाहक में उपस्थित भाग से प्रतिस्थापित हो जाता है। इसे प्रतिस्थापन कहा जाता है। इस विधि से संबंधित जीन विदारित हो जाता है, अत: जीन उपचार में इसका उपयोग नहीं किया जाता।

सर्वप्रथम लक्ष्यबद्ध जीन स्थानांतरण 1985 में किया गया था, जिसमें मानव-ग्लोबिन जीन का विदारण किया गया था। अब तक 100 से अधिक स्तनधारी जीनों को लक्ष्यबद्ध जीन स्थानांतरण द्वारा रूपांतरित किया गया है, किंतु अभी इसका जीन उपचार के लिए उपयोग प्रयोग की विभिन्न अवस्थाओं में ही है। बिना द्विगुणन या विदारण के लक्ष्यबद्ध जीन स्थानांतरण के लिए निम्न युक्ति का विकास किया गया है—

1. सर्वप्रथम निवेशन वाहक द्वारा स्थानांतरित किए जाने वाले जीन को कोशिका जीनोम में समाकलित करते हैं। इससे इस जीन का द्विगुणन उत्पन्न होता है।

2. अब स्थानांतरित किए गए तथा कोशिका जीनोम में पहले से उपस्थित (एक

ही क्रोमोसोम में) विकल्पियों में पुनर्योजन अथवा भगिनी क्रोमेटिडों में असमान विनिमय से उत्पन्न द्विगुणन रहित सामान्य विकल्पी वाले क्रोमोसोमों (वास्तव में कोशिकाओं) का वरण करते हैं।

इस युक्ति से मूषक भ्रूण स्तंभ कोशिका लाइनों में एच.जी.पी.आर.टी. तथा अन्य कई जीनों का सफल स्थानांतरण किया गया है। यह युक्ति जीन उपचार के लिए आदर्श है, क्योंकि इससे 1. संबंधित जीन में विशिष्ट एवं परिशुद्ध परिवर्तन होता है, 2. स्थानांतरित किया जाने वाला सामान्य विकल्पी ठीक उसी स्थल पर समाकलित होता है, जहाँ वह प्राकृतिक रूप में स्थित होता है, तथा 3. जीनोम का कोई अन्य जीन प्रभावित नहीं होता। इसकी सबसे बड़ी समस्या समजात पुनर्योजन की निम्न आवृत्ति है। इसको सुधारने की युक्तियों का विकास किया जा रहा है। निकट भविष्य में लक्ष्यबद्ध जीन स्थानांतरण के जीन उपचार में उपयोग की आशा की जा सकती है।

उर्वरता नियंत्रण

बढ़ती आबादी राष्ट्रीय संसाधनों पर असहनीय बोझ एवं पर्यावरण के क्षरण का प्रमुख कारण है। इस पर नियंत्रण के लिए ऐसी गर्भ निरोधक युक्तियों की आवश्यकता है, जो सुरक्षित, दक्ष, सस्ती, लंबी अवधि तक प्रभाववाली एवं उत्क्रमणीय प्रभाववाली हों। अभी तक किसी गर्भ निरोधक में उपरोक्त सभी गुण नहीं हैं। सी.डी.आर.आई. (सेंट्रल ड्रग रिसर्च इंस्टीट्यूट, केंद्रीय औषधि शोध संस्थान), लखनऊ द्वारा विकसित 'सहेली' में उक्त में से कई गुण हैं। इसे प्रति सप्ताह एक बार लेना पड़ता है और इसके कोई पार्श्व प्रभाव नहीं हैं।

गर्भ निरोधक टीकों का प्रयास काफी उत्साहजनक रहा है। इसकी निम्न तीन प्रमुख युक्तियाँ हैं—

1. मानव कोरियोनिक गोनैडोट्रापिन के लिए विशिष्ट टीकों से एच.सी.जी. तथा टिटनेस दोनों के लिए प्रतिरक्षी उत्पादन होता है। एच.सी.जी. की फॉलिकिल एवं अंडक विकास की अंतिम अवस्थाओं में तथा गर्भ स्थापन दोनों में ही भूमिका होती है। इस टीके के बाद स्त्रियों में मासिक-चक्र अपरिवर्तित रहता है, किंतु एच.सी.जी. का स्तर घट जाने के कारण गर्भ स्थापन नहीं हो पाता। यह टीका औषधीय परीक्षणों की अंतिम अवस्थाओं में है।

2. फॉलिकिल उद्दीपन हार्मोन के लिए विशिष्ट प्रतिरक्षियों को नर बंदरों में इंजेक्ट करने से वे बंध्य हो गए। इस चक्र उपचार के कोई पार्श्व प्रभाव नहीं पाए गए। इस विधि का आरंभिक औषधीय परीक्षण चल रहा है।

3. विटामिन वाहक प्रोटीनों के लिए विशिष्ट प्रतिरक्षियों के उपयोग से इन प्रोटीनों की मात्रा घट जाती है, जिससे तरुण भ्रूण का अस्वीकरण हो जाता है। यह विधि विकास की आरंभिक दशाओं में है।

विधि चिकित्सा

चिकित्सा विज्ञान के ज्ञान एवं तकनीकों का अपराधों, कानूनी झगड़ों आदि को सुलझाने में उपयोग 'विधि चिकित्सा' कहलाता है। विधि चिकित्सा की सहायता से अपराधियों या अपराधों के शिकार व्यक्तियों की पहचान, पैतृकता के झगड़ों में पिता की पहचान की जाती है। उपरोक्त के लिए डी.एन.ए. उँगली छापन एक अत्यंत विश्वसनीय एवं अति संवेदनशील विधि है।

आनुवंशिकी-इंजीनियरों द्वारा जीव की वंश-परंपरा में परिवर्तन संभव बना दिया गया है। इस उपलब्धि के दूरगामी परिणाम हो सकते हैं। अत: इस पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए। वंश-परंपरा को प्रभावित करने की यह प्रक्रिया यदि सफल होती है तो उस दशा में महामानवों के निर्माण से लेकर महादानवों के निर्माण तक की अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। प्रोफेसर ली.एम. सिल्वर की पुस्तक—'ईडेन का पुनर्निर्माण' (Remaking Eden) में इस विधि के प्रयोग के संभावित प्रभावों की चर्चा की गई है। अल्डुअस हक्सले के उपन्यास—'बहादुर नई दुनिया' (Brave New World) की तरह यह नई दुनिया भी अनेक विरोधाभासों से भरी होगी; परंतु व्यक्तिगत स्वतंत्रता के युग में इसके नियंत्रण की कोई उचित विधि नहीं होगी। जिन्हें यह प्रविधि उपलब्ध हो जाएगी, वे अपने व्यक्तिगत उत्कर्ष के लिए इसका उपयोग करेंगे, और हो सकता है कि सैकड़ों वर्षों के बाद मानव प्रजाति ही दो-चार भिन्न-भिन्न प्रजातियों में बँट जाए!

मानव जाति का सतत प्रवाहमान रहना, प्रगति करना, सबकुछ उसकी कल्पनाशक्ति, सृजनशीलता और विदग्धता पर निर्भर करेगा। आनुवंशिक अभियांत्रिकी भी मानव की इन शक्तियों के लिए एक चुनौती के रूप में ही उपस्थित है।

□

12

उपसंहार

डॉ. खुराना द्वारा तैयार की गई पृष्ठभूमि के आधार पर आज हम स्वास्थ्य एवं बीमारियों से जुड़ी अनेक जैविक प्रक्रियाओं को समझने में समर्थ हो गए हैं। मानव के संपूर्ण जीनोम की जानकारी हमारे हाथ में है। यहाँ तक कि एक सामान्य कोशिका की तरह ही विभक्त होनेवाली कृत्रिम कोशिका को भी बनाना संभव हो गया है।

विगत वर्षों में जीनोम और जीनोमिकी के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। इसके परिणामस्वरूप मनुष्य की बहुत-सी आनुवंशिक बीमारियों के लिए उत्तरदायी जीनों की पहचान हो पाई है। जहाँ तक मानव जीनोम की खोज के सकारात्मक मानवीय प्रभावों की बात है, स्वास्थ्य और चिकित्सा के क्षेत्र में ये प्रभाव अधिक स्पष्ट रूप से परिलक्षित होंगे। इस समय रोगी की चिकित्सा को हम रोकथाम और उपचार, इन दो हिस्सों में बाँटते हैं। अब इनमें 'पूर्वानुमान चिकित्सा' भी जुड़ जाएगी, यानी रोग के होने का इंतजार किए बिना व्यक्ति की वंशाणु कुंडली के अनुसार उसका उपचार पहले से शुरू कर दिया जाएगा। दोषपूर्ण जीनों अर्थात् वंशाणुओं का पता लगते ही चिकित्सक बता देंगे कि उसे कौन-सा रोग हो सकता है। फिर उस दोषपूर्ण वंशाणु को निकालकर सामान्य स्वस्थ वंशाणु स्थापित करने की 'जीन थेरेपी' शुरू कर दी जाएगी। दोषपूर्ण जीन की पहचान भ्रूण में ही की जा सकेगी और जन्म से पहले ही शिशु को समस्त वंशागत विकारों से मुक्त कर दिया जाएगा।

जीनोमिकी आनुवंशिकी का वह क्षेत्र है, जिसमें हम जीवों के संपूर्ण जीनोम का अध्ययन करते हैं। इसमें जीनों का संपूर्ण डी.एन.ए. अनुक्रम और आनुवंशिक मानचित्रण करने का प्रयास किया जाता है। किसी भी प्रकार के आणविक जीव-विज्ञान, आनुवंशिकी या जैविक और चिकित्सकीय अनुसंधान की प्राथमिकता, जीन

के कार्य और उसकी भूमिकाओं का विश्लेषण करना ही होता है। केवल एक जीन का शोध करना जीनोमिकी की परिभाषा में नहीं आता, जब तक कि उस जीन की कार्यविधि का संपूर्ण जीनोम नेटवर्क पर क्या प्रभाव पड़ रहा है, इसका अध्ययन न कर लिया जाए। जीनोमिकी के अंतर्गत किसी कोशिका या ऊतक के सभी जीन का अध्ययन डी.एन.ए., एम-आर.एन.ए. और प्रोटीन स्तर पर होता है।

निस्संदेह, आज जैविक एवं मानवीय विकास का वैज्ञानिक आधार तथा कोशिकीय एवं आणविक परिवर्तन एवं मानवीय विकास का वैज्ञानिक आधार तथा कोशिकीय एवं आणविक परिवर्तन एवं उत्परिवर्तन विवाद का विषय नहीं रहा है। जैसा माना जा रहा है कि अगली सहस्राब्दि तक हम अपने जीनोम में फेरबदल करने में इतने समर्थ हो जाएँगे कि मानव का विकास-क्रम बहुत सारे ऐसे नए नियमों के अनुरूप निर्धारित होगा, जिनका अनुमान डार्विन तक को भी नहीं रहा होगा। भारतीय जीनोम विविधता परियोजना के अंतर्गत भारतीय जन समुदायों की जीन विविधता का ब्योरा सफलतापूर्वक तैयार कर लिया गया है और भारत अपनी जीन-विविधता का संपूर्ण ब्योरा रखनेवाला पहला देश बन गया है।

मानव जीनोम अनुक्रमण परियोजना का पूर्ण होना जीव विज्ञान के क्षेत्र में सर्वोच्च उपलब्धि है। मानव जीनोम के अनुक्रमण से पूर्व मानव के अंदर पाए जानेवाले जीनों की कुल संख्या का अनुमान 1,50,000 के आस-पास लगाया गया था। किंतु मानव जीनोम के अनुक्रमण, पुन: अनुक्रमण तथा टिप्पण और पुन: टिप्पण के पश्चात् जीनों की कुल संख्या 20,000 और 25,000 के बीच अनुमानित की गई है।

प्रत्येक गुणसूत्र पर मौजूद डी.एन.ए. के प्रत्येक अणु पर एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक प्रत्येक बेस का अनुक्रमण निर्धारित रहता है। ह्यूमन जीनोम में 3.3 बिलियन बेस पेयर होते हैं। मानव के प्रत्येक गुणसूत्र में औसतन 130 मिलियन तक बेस पेयर पाए जाते हैं।

इस प्रश्न का उठना सहज एवं स्वाभाविक है कि आखिर वह क्या है, जो हमें मानव बनाता है? विशेष रूप से जब एक साधारण से प्राणी नैमेटोड में 19,000 के आस-पास जीन होते हैं और उनमें केवल 10,000 ही कोशिकाएँ पाई जाती हैं, तो फिर मानव जैसे जटिल प्राणी, जोकि 100 ट्रिलियन कोशिकाओं का बना है, के शारीरिक कार्यों का संचालन केवल 20-25 हजार जीनों के द्वारा कैसे होता है? मानव, चिंपैंजी, चूहा, खरगोश जैसे कई प्राणियों एवं रीढ़ विहीन प्राणियों और सूक्ष्म जीवों की हजारों प्रजातियों के जीनोम का अनुक्रमण करने के बाद वैज्ञानिक

इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मानव का जीनोम 0.5 प्रतिशत बैक्टीरिया के साथ, 48 प्रतिशत यीस्ट के साथ, 50 प्रतिशत केले के साथ, 60 प्रतिशत फलमक्खी, (ड्रोसोफिला) 75 प्रतिशत मेटोड के साथ एवं 99 प्रतिशत चिंपैंजी के साथ प्रोटीन कोडिंग जीन की समानता रखता है।

डार्विन के 'उत्परिवर्तन सिद्धांत' से संबंधित शंकाओं का समाधान भी जीनोम अनुक्रमण में निहित है। मानव की उत्पत्ति क्रमिक विकास से ही संभव हुई है। प्रोटीन के लिए कोड करने वाला 20 से 25 हजार जीन हमारी कोशिका में मौजूद कुल डी.एन.ए. के 1.2 प्रतिशत से भी कम होता है। मानव कोशिका में मौजूद कुल डी.एन.ए. 98.8 प्रतिशत नॉन कोडिंग होता है (किसी भी प्रोटीन के लिए कोड नहीं करता है) वैज्ञानिकों ने इसे 'जंक डी.एन.ए.' के रूप में परिभाषित किया था। वर्तमान में वैज्ञानिकों की इस बात पर आम सहमति बन गई है कि हमें मानव बनाने का विशिष्ट राज हमारे संपूर्ण डी.एन.ए. पर निर्भर होता है, न कि हमारे जीनों की संख्या पर। यह वैज्ञानिकों के समक्ष एक चुनौती पेश करता है कि यदि हम सचमुच यह समझना चाहते हैं कि वह क्या है जो हमें मानव बनाता है, तो हमें हमारे जीनोम में पाए जानेवाले जंक डी.एन.ए. के प्रकार्य को समझना आवश्यक हो जाता है।

वर्तमान में ऐसे नवीनतम डी.एन.ए. सीक्वेंसर उपलब्ध हैं, जो एक संपूर्ण मानव जीनोम का अनुक्रमण करने में सक्षम हैं। सामान्य रूप से इसे करने में कई वर्षों का समय लग जाता था तथा अत्यधिक खर्च (कई बिलियन डॉलर) आता था। नवीनतम तकनीक द्वारा लगभग मात्र एक मिलियन डॉलर के खर्च पर ही किसी व्यक्ति के जीनोम का पुन: अनुक्रमण किया जा सकता है। अधुनातन तकनीकों के विकास संबंधी कार्य युद्धस्तर पर किए जा रहे हैं। ऐसा माना जा रहा है कि इन तकनीकों के विकसित होने पर मानव जीनोम का पुन: अनुक्रमण दो से तीन दिनों में पूरा किया जा सकेगा तथा इसकी लागत भी 10 हजार डॉलर से अधिक नहीं होगी।

मानव जीनोम अनुक्रमण से मिली सूचना नए लक्ष्यों की खोज करने तथा नई औषधियों को तैयार करने में उपयोगी होगी। एक बार लक्ष्यों का निर्धारण हो जाए, तो लक्षित अणुओं के प्रकार्य को अवरोधित करने वाले अपेक्षित अणुओं की पहचान करना संभव हो जाएगा। माइक्रोएरे तकनीक एक ही बार में हजारों की अभिव्यक्ति को विश्लेषित करते हुए स्वास्थ्य तथा रोग के लिए बाध्य जीन-विशेष या जीन वर्ग की पहचान करने के लिए उपयोगों में लाए जा सकते हैं। इससे अणुओं के छोटे संयोजनों की, जो औषधियों के रूप में कार्य कर सकती हैं, पहचान में सहायता मिल सकती है। भविष्य में स्वास्थ्य संरक्षण का स्वरूप पूर्णत:

बदल जाएगा। भू-मंडल के मानव समुदायों में हजारों विभिन्नताएँ होती हैं। चूँकि भविष्य में आनुवंशिक रूप से निर्धारित रोगियों की श्रेणियाँ उपलब्ध होंगी, इस कारण उपचार प्रधान तथा जीन आधारित निदान अनिवार्य हो जाएगा। व्यक्ति के संदर्भ में भिन्नता की पहचान कर औषधि के लिए विशेष तर्क, परख तथा अपेक्षित मात्रा तय की जा सकती है, जिसके परिणामस्वरूप रोग से निपटने की प्रणाली अद्‌भुत होगी। आनुवंशिक रूप से अभियांत्रित पौधे तथा खाद्य पदार्थों के क्षेत्र में परिवर्तन के कारण बीमारी की बजाय स्वस्थ रहने पर अधिक ध्यान केंद्रित किया जाएगा। झुर्रियाँ, स्थूलता, गंजापन, नीरसता जैसी आधुनिक जीवन-शैली जन्य बीमारियों के लिए उपचार संभव हो जाएगा।

वैज्ञानिकों द्वारा आयु के साथ-साथ जीवों के शरीर में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों को जीन के स्तर पर समझने के प्रयास जारी हैं। कोलराडो और कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने फलोंवाली मक्खी व केंचुए की प्रजाति के जीवधारियों में ऐसे जीन की पहचान कर ली है, जो इन साधारण जीवधारियों का जीवनकाल बढ़ा सकते हैं। उन्होंने इन्हें एज-1, एज-2, व डेफ-2 नाम दिया है। ये जीन्स संभवत: कोशिका के अंदर ऑक्सीकरण की गति को प्रभावित करते हैं। मानव में इस प्रकार के 70 जीन्स की पहचान कर ली गई है। ऐसा माना जा रहा है कि हमारी आनेवाली पीढ़ियों की औसत आयु 100 वर्ष से भी अधिक हो जाएगी।

जैव-प्रौद्योगिकीविदों ने हर कोशिका के अंदर एक जैव घड़ी की परिकल्पना की है। इसके अनुसार यह निश्चित होता है कि कितने विभाजन के पश्चात् कोई कोशिका अंतत: मर जाएगी। उदाहरण के लिए मानव त्वचा की कोशिकाएँ 50 विभाजनों के पश्चात् मर जाती हैं। कैलिफोर्निया के जेरोन कॉरपोरेशन के वैज्ञानिकों ने टीलोमरेज नामक एंजाइम का प्रयोग करके मानव त्वचा की इन कोशिकाओं का जीवनकाल 1,000 विभाजन से अधिक तक बढ़ाने में सफलता प्राप्त कर ली है।

जीनोमिक औषधियों द्वारा व्यक्तिगत स्तर पर मरीज की जीनोमिक जानकारियों के उपयोग से इलाज करना, बेहतर स्वास्थ्य लाभ का एक शक्तिशाली तरीका है। आनुवंशिक बीमारियों के साथ जुड़े कारकों की पहचान करके अब यह संभव है कि उस बीमारी के लिए अधिक प्रभावशाली औषधियों का निर्माण हो सके, रोगी का सबसे बेहतर इलाज संभव हो सके, व्यक्ति को जटिल आनुवंशिक बीमारियाँ होने से पहले ही बचाया जा सके और शरीर में दवाओं की प्रतिक्रियाओं के प्रतिकूल प्रभाव से व्यक्ति को बचाया जा सके।

जैव-प्रौद्योगिकी द्वारा आनुवंशिकता की गुत्थी को सुलझाना एक महत्त्वपूर्ण

सफलता है। विगत 200 वर्षों में विज्ञान जगत् में आई असाधारण प्रगति के कारण आनुवंशिकता की प्रक्रिया को बेहतर ढंग से समझा जा सका है। वैज्ञानिकों ने पाया कि आनुवंशिकता के अनुदेश कोशिका के केंद्रक में पाए जानेवाले गुणसूत्र में डी.एन.ए. के रूप में रहते हैं तथा संचरण के विशिष्ट नियमों का पालन करते हैं। डी.एन.ए. की घटक इकाइयों के अनुक्रम में लिखित संक्षिप्त आनुवंशिकी कोड का अध्ययन कर जीव के आकार, संरचना एवं शरीर के विभिन्न अंगों की कार्यप्रणाली की व्याख्या की जा सकती है।

मानव जीनोम अनुक्रमण के साथ कई अन्य जीवों के जीनोम का भी अनुक्रमण किया जा चुका है और कुछ अन्य प्राणियों के संदर्भ में यह कार्य अभी जारी है, जिनसे विविध जीनों के प्रकार्य को समझने में सहायता मिलेगी। कई नई तकनीकों के प्रादुर्भाव से भी जीव विज्ञान के शोधकार्य में तेजी आई है। निश्चित रूप से इन सब की वजह से विविध रोगों के लिए नई औषधियों की खोज में सहायता मिलेगी।

वैज्ञानिकों का आह्वान करते हुए तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा था, ''विज्ञान का उपयोग शांति और मानव कल्याण के लिए होना चाहिए। आज वैज्ञानिक इस उत्तरदायित्त्व के प्रति उदासीन नहीं रह सकते।''

संयुक्त राज्य अमेरिका के नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक डॉ. बी. बाल्टीमोर ने आशा प्रकट की थी कि आज वैज्ञानिकों के हाथ में विभिन्न आनुवंशिक तकनीकों के रूप में जो महाशक्ति आ गई है, उसका उपयोग विध्वंसकारी कार्यों में नहीं करेंगे।

हमें कोई अधिकार नहीं कि हम केवल कुछ लोगों की महत्त्वकांक्षा एवं जिज्ञासा को संतुष्ट करने के लिए करोड़ों वर्षों के जैव विकास की सूझ-बूझ को अनुक्रमणीय रूप से प्रभावहीन कर दें।

अत: जीनोमिकी के अध्ययन से प्राप्त ज्ञान का उपयोग मानवता के कल्याण में ही किया जाना चाहिए। मानव निर्मित जीन को नियंत्रित करने के समुचित सुरक्षात्मक कदम उठाए जाने चाहिए।

मानव जीनोम और मानवीय हकों से संबंधित घोषणा-पत्र के अनुसार— ''मानव जीनोम के अंतर्गत मानव परिवार के सभी सदस्यों की मूलभूत एकता अंतर्भूत है, जो उनकी आनुवंशिक प्रतिष्ठा की पहचान है। प्रतीकात्मक रूप से यह मानवता की धरोहर है।''

वैज्ञानिकों के सामने जीनोम अनुक्रम में छुपी हुई अनेक गुत्थियों को सुलझाने का लक्ष्य है। इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए उन्हें बड़े पैमाने पर समाज को भी सहभागी बनाने की आवश्यकता है। इसके लिए अत्यंत सूझ-बूझ और विवेक

के साथ काम करने की जरूरत है, ताकि किसी प्रकार की कानूनी, सामाजिक एवं नैतिक समस्याएँ उत्पन्न न हों।

जीनोमिकी के क्षेत्र में काफी प्रगति हो चुकी है। परस्पर प्रौद्योगिकीय सहयोग बढ़ने से अब अनेक देश इस क्षेत्र में जानकारी एवं कुशलता हासिल कर रहे हैं। विशेषज्ञों का मानना है कि नई जीनोमिकी परियोजना से नए युग का सूत्रपात होगा। विभिन्न रोगों के उपचार/निदान हेतु तेज असर करनेवाली किफायती, निजीकृत तथा रोगों का पूर्वानुमान करते हुए पहले से ही सक्रिय हो जाने वाली चिकित्सा प्रणाली अपनाई जाएगी।

जैव-चिकित्सा का एक बड़ा भाग यह है कि हम सभी बीमारियों को जैव तकनीक या शरीर के अंदर स्थित व्यवस्थाओं के माध्यम से ठीक करते हैं। यह अपने आप में एक क्रांतिकारी परिवर्तन के रूप में सामने आ रहा है। निकट भविष्य में हम रासायनिक प्रक्रिया द्वारा बनी औषधियों का प्रयोग करेंगे। डॉ. खुराना एवं अन्य वैज्ञानिकों के प्रयासों की वजह से आज हम जीव-विज्ञान को इस विकसित और प्रभावशाली रूप में देख रहे हैं।

□□□